Braja aur Braja yātrā

Govinda Das
Ram Narayan Agrawala

Bharātiya Vishva Prakashan
Delhi

ब्रज और ब्रज-यात्रा

सम्पादक

गोविन्ददास

राम नारायण अग्रवाल

१९५९

प्रकाशक

भारतीय विश्व प्रकाशन

फव्वारा — दिल्ली

भूमिका

भारत की धर्म-प्राण संस्कृति में ब्रजभूमि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यहाँ के साहित्य, संस्कृति, भाषा और भक्ति-दर्शन ने संपूर्ण देश को प्रभावित किया है। यही कारण है कि ब्रज के प्रति प्रत्येक भावुक भक्त-हृदय में श्रद्धा-भाव तथा एक सहज आकर्षण सदा विद्यमान रहता है और इस भूमि से निकट का परिचय प्राप्त करने की ललक विद्यमान रहती है।

प्रतिवर्ष ब्रज-यात्रा के लिए देश के कोने-कोने से पर्यटक इसीलिए ब्रज-क्षेत्र की ओर खिंचे चले आते हैं और यहाँ के गाँव-गाँव में भ्रमण करके भगवान् श्री कृष्ण के चरण-चिन्हों से अंकित पावन रज का संस्पर्श प्राप्त कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं। परन्तु जो व्यक्ति ब्रज और भक्ति-क्षेत्र में उसकी देन के सम्बन्ध में अधिक जानकारी चाहते हैं, अब तक उनको संतुष्ट करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं हुआ था। इस की पूर्ति के लिये ही यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है।

हमारा विश्वास है कि यह ग्रन्थ एक ओर जहाँ ब्रज-क्षेत्र में आस्था रखने वाले भक्त-हृदयों को भगवान् श्री कृष्ण के लीला-क्षेत्र का परिचय करायेगा, वहाँ ब्रज और ब्रज-संस्कृति पर शोध करने वाले विद्वानों के लिये एक संदर्भ-ग्रन्थ के रूप में भी उपयोगी सिद्ध होगा।

वैदिक युग से लेकर वर्तमान समय तक के ब्रज का परिचय इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। समस्त संस्कृत वाङ्मय तथा हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य में उपलब्ध ब्रज सम्बन्धी सामग्री का मंथन करके विद्वानों और शोधकों ने पर्याप्त श्रम पूर्वक इस ग्रन्थ के लिये लेख तैयार करने की कृपा की है। यही नहीं श्री नाहटा जी ने तो बीकानेरी भाषा के जिस यात्रा ग्रन्थ को अपने लेख में उद्धृत किया है, वह जहाँ उस युग की श्री-नाथ जी की सेवा-शृंगार-प्रणाली का परिचय प्रस्तुत करता है वहाँ उस समय के सस्तेपन तथा ब्रज के कुछ देव-विग्रहों और मन्दिरों के सम्बन्ध में भी बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है। इसमें कई ऐसे देवालयों का भी उल्लेख है जो आज विद्यमान नहीं हैं। वे देवालय औरंगजेब के समय में ही नष्ट हुए या बाद में, यह एक अनुसंधान का विषय है। श्री नाथ जी की तत्कालीन सेवा-विधि की यह जानकारी पुष्टि-सम्प्रदाय के लिये महत्त्वपूर्ण है। हमें इस ग्रन्थ को साहित्य-जगत के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए इसीलिये हार्दिक प्रसन्नता है कि इस ग्रन्थ द्वारा कुछ नवीन सामग्री नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत की जा सकी है। ब्रजयात्रा की परम्परा का इतिहास इस ग्रन्थ द्वारा ही पहली बार प्रकाश में आ रहा है।

साहित्य-क्षेत्र और भक्ति-क्षेत्र के जिन प्रसिद्ध विद्वानों और शोधकों का सहयोग हमें इस ग्रन्थ के लेखन कार्य में प्राप्त हुआ है उसके लिये हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। साथ ही हम श्री राय कृष्णदास जी तथा भारतीय कला भवन, बनारस

के भी बड़े आभारी हैं, जिनके सौजन्य से हमें 'युगल छवि' का रंगीन चित्र प्रकाशनार्थ प्राप्त हुआ है।

सभी लेखक महानुभावों के प्रति आभार प्रगट करने के अनन्तर यहाँ इस ग्रंथ की सम्पादन शैली के सम्बन्ध में भी हम दो शब्द कहना उचित समझते हैं। यों तो ब्रज के यात्रा-स्थलों का परिचय कराने के लिए धार्मिक दृष्टि से लिखी गई कई छोटी-छोटी पुस्तकें मथुरा वृन्दावन के बाजारों में मिल जाती हैं, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से प्रामाणिक आधारों पर वैज्ञानिक रूप से ब्रज-क्षेत्र का यह परिचय-ग्रंथ पहली बार ही प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रंथ में हमने आरम्भ से अन्त तक यह प्रयत्न किया है कि भक्ति-पक्ष के (जिसका कि ब्रज से घनिष्ट सम्बन्ध है) न्यायोचित प्रतिपादन के लिये उसे अवैज्ञानिक व्याख्याओं से बचाया जाय और तटस्थ भाव से ही तथ्यों को उपस्थित किया जाय।

इस ग्रंथ के लिये प्राप्त समस्त सामग्री का उपयोग भी हम नहीं कर पाये इसका हमें खेद है, क्योंकि हम इस ग्रंथ का आकार इतना बड़ा भी नहीं करना चाहते थे जिससे वह सर्व सुलभ न रह कर केवल पुस्तकालयों की शोभा ही बन जाय। साथ ही वह उल्लेख भी ग्रंथ में से निकाल देने पड़े हैं जो विभिन्न लेखों में समान थे। फिर भी लेख के क्रम में एक सूत्रता बनाये रखने के कारण यह सर्वत्र संभव नहीं हो सका है। हमने विवादास्पद प्रसंगों को भी बचाने की चेष्टा की है और इस कारण से भी कुछ सामग्री का उपयोग नहीं हो सका है। ऐसी दशा में जिन महानुभावों के लेख हमें लौटाने पड़े हैं, हम उन सबसे क्षमा प्रार्थी हैं।

इस ग्रंथ के सम्पादन में सबसे प्रमुख समस्या दृष्टिकोण सम्बन्धी विभिन्नताओं के समन्वय की थी ; क्योंकि हमें जहाँ धार्मिक मान्यताओं के आधार पर अपने विश्वासों का प्रतिपादन करने वाले विद्वानों के लेख प्राप्त हुए वहाँ विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखने वाले विद्वानों ने भी हमारा पूरा सहयोग किया। अतः हमारी यह चेष्टा रही कि लेखकों की मान्यताओं को प्रभावित न करते हुए भी ग्रंथ की एकरूपता की रक्षा की जाय। इसमें हमें कहाँ तक सफलता मिली है यह नहीं कहा जा सकता। यों भी प्रत्येक प्रयास में कुछ न कुछ कमी तो रह ही जाया करती है।

परन्तु फिर भी हमें इस ग्रंथ को प्रकाशित देखकर स्वयं आत्म-संतोष है, क्योंकि यह ग्रंथ ब्रज और ब्रज-यात्रा पर अपने आप में एक मौलिक रचना है जो प्रतिवर्ष ब्रज-यात्रा करने वाले श्रद्धालुओं के लिए 'मार्ग-दर्शक' का काम करेगा। यही नहीं ब्रज को देखने के उत्सुक व्यक्ति इस ग्रंथ की सहायता से अल्प समय में ही बिना किसी सहायक के एकाकी भी ब्रज-यात्रा कर सकते हैं और वे ब्रज के बाह्य रूप के साथ-साथ उसके इतिहास, संस्कृति और महत्ता को भी हृदयंगम कर सकते हैं।

इसलिये हमें आशा है कि इस ग्रन्थ का ब्रज-भक्त-वैष्णव और हिन्दी-जगत दोनों ही स्वागत करेंगे।

विनीत

बसंत पंचमी
संवत् २०१५

गोविन्ददास
राम नारायण अग्रवाल

सूची

प्रथम खण्ड : ब्रजभूमि और ब्रज-भक्ति—१-८२

द्वितीय खण्ड : ब्रज-यात्रा—८३-१८०

प्रथम खंड

व्रजभूमि और व्रज-भक्ति

: १ :

व्रजभूमि और उसका नामकरण

डॉ० सत्येन्द्र, विश्वविद्यालय, आगरा

व्रजभूमि के नाम—जहाँ तक ऐतिहासिक प्रमाणों पर निर्भर करने की बात है, वेदों से पूर्व 'व्रज' या 'व्रज' शब्द को पाने के कोई साधन उपलब्ध नहीं । 'व्रज' शब्द वैदिक काल में था, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु उस समय यह क्षेत्रवाची नहीं था ।

वैदिक काल और बौद्ध काल के बीच इसका नाम 'ब्रह्मर्षि-ब्रह्मावर्त' रहा ।[1] इसका और भी छोटा भाग शूरसेन प्रदेश था, यह भी उक्त श्लोक से विदित होता है । बौद्ध काल में यह प्रदेश एक विशाल भू-भाग के रूप में 'मज्झिम प्रदेश' या मध्य देश कहलाता था । इस विशाल मज्झिम देश में ६ महा-जनपद थे । इसी के अन्तर्गत मत्स्य और शूरसेन जनपद, कुरु तथा पंचाल, इन चार महा-जनपदों से बना भू-भाग 'ब्रह्मर्षि देश' कहलाता था । जैसा डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने बताया है मनु के इस ब्रह्मर्षि देश का क्षेत्र वही है जो आज भी प्रायः व्रजभाषा का क्षेत्र है । इसमें 'शूरसेन'[2] नाम का जनपद कुछ-कुछ 'व्रज' की सीमाओं से साम्य रखता है ।

पौराणिक काल में इसी क्षेत्र का नाम 'व्रज-मण्डल' पड़ा । सम्भवतः मत्स्य-पुराण में ही व्रज का कुछ विस्तृत ब्यौरा भूगोल की दृष्टि से मिलता है । पौराणिक काल से इसका प्रचलन हुआ तो, पर प्रबलता इसमें १५-१६वीं शताब्दी के वैष्णव-आन्दोलनों के द्वारा ही आयी । इस काल तक जनपदों और प्रदेशों के प्राचीन मान हट चुके थे, अथवा शिथिल हो गये थे, अतः धर्म के मेरुदण्ड पर निर्भर 'व्रज' नाम शेष समस्त भौगोलिक नामों को परास्त कर जम गया ।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र के नाम क्रमशः ये रहे हैं :—

१. मध्य देश ।
२. ब्रह्मर्षि ।
३. शूरसेन ।
४. मथुरा-मण्डल ।
५. व्रज ।

---

१. कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च, पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै, ब्रह्मावर्तादिन वरः ॥ मनु० २।१६।

२. एरियन नामक यूनानी लेखक की 'इंडिका' में जमुना नदी का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि वह सौरसेनोइ (शूरसेन) प्रदेश में बहती है, जिसमें दो बड़े नगर (१) मेथोरा (Methora) और (२) क्लीसाबरा (Kleisobara) हैं ।—ब्र० भा० ५।१ ; पृष्ठ १७ ।

यह 'मध्य-देश' क्यों कहलाया ? मनु ने बताया है कि यह उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत के बीच में था, प्रयाग के पश्चिम में तथा सरस्वती जिस प्रदेश में बालू में अदृश्य हो जाती है उसके पूर्व में है। यह 'मध्य' का देश था अतः 'मध्य देश' कहलाया।

ब्रह्मर्षि देश क्यों कहलाया ? मनु ने इसकी व्याख्या में बताया है कि इस भू-भाग में जन्म लेने वाले अगुआ ब्राह्मणों का चरित्र अन्य मनुष्य के लिए आदर्श है। ब्राह्मणों के इस आदर्श चारित्रिकता के सम्मान में यह ब्रह्मर्षि देश कहलाया।

'शूरसेन' भू-भाग 'शूरसेन' नामक राजा के कारण पड़ा, ऐसी किंवदंती है।

ब्रज नाम क्यों पड़ा ? इस सम्बन्ध में एक समाधान तो सर हेनरी ऐम० ईलियट ने दिया है। उन्होंने यह किंवदंती उद्धृत की है कि "ब्रज मथुरा के चारों ओर चौरासी कोस है। जब महादेव श्रीकृष्ण की गायें चुराकर ले गये तो लीलामय भगवान् ने नयी गायें बना लीं और वे ठीक इसी सीमा में चरती फिरीं। तभी "व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रजः"—यह ब्रज कहलाने लगा"। यह किंवदंती 'ब्रज' प्रदेश के अर्थ को वैदिक 'व्रज' के अर्थ से मिलाने की चेष्टा करती प्रतीत होती है। वैदिक साहित्य में "व्रज" का अर्थ गोष्ठ, अथवा गौ-समूह आदि के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह सामान्य शब्द पौराणिक काल में[1] कृष्ण के गो-पालन और गो-चारण से सम्बद्ध होकर विशिष्ट प्रदेशार्थक हो गया। भाषा-विज्ञान ऐसे अनेकों दृष्टान्त दे सकता है, जिनसे प्रकट होगा कि एक सामान्य अर्थ द्योतक शब्द संकुचित होकर किसी विशिष्ट इकाई का ही द्योतक होकर रह गया।[2]

'ब्रज' नाम के समाधान के लिए एक और सम्भावना की ओर संकेत मिलता है।

यह संकेत जहाँ तक मैं समझता हूँ डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी जी ने ब्रज-साहित्य-मण्डल के शिकोहाबाद अधिवेशन के सभापति पद से दिये गये विद्वत्तापूर्ण भाषण में दिया था।[3] 'विरजा' का क्षेत्र ही सम्भवतः 'विरजा' है। पुराणों ने विरजा को मूलतः राधा की सखी माना है। कृष्ण के अपने लोक में कृष्ण और राधा नित्य-प्रति

---

१. पौराणिक काल में 'व्रज' क्षेत्रवाची हो चला था, इसके प्रसंग मिलते हैं। भागवत के दशम् स्कंध के प्रथम अध्याय के आरम्भ में परीक्षित का प्रश्न "कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गत" (१०-१-८) "व्रजे वसन्किम करो मधुपुर्यां केशवः ?" (१०-१-९) का उल्लेख है। मत्स्य पुराण में "व्रज-मण्डल-भूगोल" का उल्लेख है।

२. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है—"ब्रज का संस्कृत तत्सम रूप 'व्रज' है। यह शब्द संस्कृत धातु व्रज 'जाना' से बना है। व्रज का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद संहिता में मिलता है। परन्तु वह शब्द ढोरों के चरागाह या बाड़े अथवा पशु-समूह के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।"

३. मथुरा नगरी के निकट वेरंज नाम का एक प्राचीन स्थान था। वहाँ के कुछ ब्राह्मणों ने बुद्ध भगवान् को आमन्त्रित किया था। बुद्धत्व के बारहवें वर्ष वे वहाँ पधारे और उन्होंने पति-पत्नी के कर्त्तव्यों, धर्म और विनय के अंगों पर प्रवचन देकर लोगों को कृतार्थ किया। सम्भव है कि वायु पुराण भी इसी स्थान का संकेत निम्न वाक्य में करता हो। "विरजस्य द्विजा श्रेष्ठा वैराजा इति विश्रुता"। यह भी सम्भव है कि यह वेरंज, विरज कालान्तर में ब्रज के नाम से प्रख्यात हो गया हो और इसी के नाम पर ब्रज-मण्डल का भी नामकरण हुआ हो।

—डॉ० रा० प्र० त्रिपाठी का भाषण। ब्र० भा०, वर्ष २, अंक ५, ६, ७।

विहार करते थे। एक दिन राधा कुछ देर के लिए कहीं चली गयीं, कृष्ण आये तो राधा की सखी के साथ ही विहार करने लगे। इसी बीच राधा आ गयीं। जैसे ही राधा के आने की आहट कृष्ण को मिली, वे अन्तर्ध्यान हो गये। भय से विरजा सरिता के रूप में परिणित होकर गोलोक में विचरण करने लगीं। यही विरजा यमुना है, उन्हीं का क्षेत्र 'विरज' अथवा 'व्रज' है।

व्रज की प्रमुख नगरी मथुरा बहुत पुरातन है। वैदिक युग में भी इसके अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इसे 'मधुरा' भी कहा गया है, यह मधुपुरी भी कहलाती रही है।[1] यहाँ मधु नामक राजा का राज्य था, जिसके पुत्र लवणासुर को शत्रुघ्न ने मारा था। इस मथुरा के ओर-पास का क्षेत्र मथुरा-मण्डल कहलाता था। अधिकांश पुराणों में मथुरा-मण्डल का भौगोलिक वर्णन दिया हुआ है, और उसके वन-उपवन-अधिवन आदि का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। वनोपवनों वाले इस मथुरा-मण्डल की सीमा प्रायः आधुनिक व्रज की सीमाओं से मिलती-जुलती है।

मथुरा-मण्डल शब्द का प्रयोग 'व्रज' के आधुनिक प्रयोग से कहीं पुराना है। मेगास्थनीज के 'शूरसेन-प्रदेश' के उल्लेख से अशोक-पूर्व में "व्रज-जनपद" के नाम का पता चल जाता है। उस काल में मथुरा शूरसेन-प्रदेश की राजधानी थी। उसके उपरांत जो उल्लेख प्राप्त होते हैं उनसे यह प्रदेश मथुरा राजधानी के नाम पर मथुरा-मण्डल कहलाने लगा, यह प्रतीत होता है। यह नाम पुराण काल में विशेष विख्यात हुआ, तथा पुराणों में 'माथुर-मण्डल' अथवा 'मथुरा-मण्डल' प्रायः वही मण्डल प्रतीत होता है, जिसे आज व्रज-मण्डल कहा जाता है। य्यूआन्-चुआङ भारत में लगभग ६३५ ई० में आया था, उसने मथुरा राज्य का जो वर्णन दिया है, उससे विदित होता है कि इस राज्य का विस्तार ५००० ली (लगभग ८३३ मील) तथा उसकी राजधानी (मथुरा नगर) का विस्तार २० ली (लगभग ३॥ मील) था। कनिंघम के अनुसार तत्कालीन मथुरा-राज्य में वर्तमान "वैराट" और 'अनरंजी खेड़ा' के बीच का सारा प्रदेश ही नहीं अपितु आगरा के दक्षिण में 'नरवर' और शिवपुरी तक का तथा पूर्व में 'काली सिंध' नदी तक का भू-भाग रहा होगा। इस प्रकार इस राज्य में मथुरा आगरा जिलों के अतिरिक्त भरतपुर, करौली और धौलपुर तथा ग्वालियर राज्य का उत्तर आधा भाग शामिल रहा होगा। पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जिझौती से तथा दक्षिण में 'मालवा' की सीमा से मिलती रही होगी।[2]

पुराण काल में मथुरा-मण्डल का महत्त्व उसी कारण से था जिस कारण से आज व्रज का है। वह कृष्ण की जन्मस्थली थी और क्रीड़ा-भूमि थी। पुराण काल में इसके विविध वन, उपवन, अधिवन विख्यात थे, इन वनों की परिक्रमा अथवा यात्रा पुराण काल में ही फलप्रद मानी गयी थी। वाराह पुराण में ही इसकी सीमा २० योजन अथवा ८४ कोस निर्धारित हो चली थी। मत्स्य पुराण में इसी कृष्ण-लीला भूमि को ही 'व्रज-मण्डल' कहा गया है। किन्तु पुराण काल में 'व्रज' कहलाते

१. भागवत में मधुपुरी को 'मदुपुरी' भी कहा गया है।

२. कनिंघम्स जिआग्राफी, पृ० ४२७-२८। यह उद्धरण पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ८३०, से श्री कृष्णदत्त वाजपेयी जी के निबन्ध से दिया गया है।

हुए भी विशेष प्रचलन 'मथुरा-मण्डल' का ही रहा। तब वैष्णव धर्म के १५वीं-१६वीं शताब्दी के पुनरोदय में 'ब्रज' शब्द का पुनः प्रचलन हुआ और तब से अब तक यद्यपि ब्रज-क्षेत्र, ब्रज-मण्डल या ब्रज-जनपद का कोई राजनीतिक प्रदेश अस्तित्व में नहीं रहा फिर भी धार्मिक दृष्टि से और भाषा तथा संस्कृति की दृष्टि से इसने एक सार्वजनिक निश्चित स्वरूप और नाम प्राप्त कर लिया। इस काल से ब्रज-मण्डल तो धार्मिक परिभाषा से बँध कर 'ब्रज चौरासी कोस' में ही घिर गया, किन्तु ब्रज-प्रदेश ब्रजभाषा तथा ब्रज-संस्कृति के पर्याय से बहुत विस्तृत हो गया।

ब्रजभूमि — इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'ब्रज' शब्द वैदिक है। वेदों में यह जिस अर्थ में आता था, उसी अर्थ में यह पुराण काल में आया। केवल एक अन्तर हो गया; वह यह कि वेदों में यह मात्र गोष्ठ वाची था, पुराण काल में इस गोष्ठ की भौगोलिक स्थिरता हो गयी, और यह भू-भाग हो गया। वैदिक 'ब्रज' का 'चरंत कृष्ण' से सम्बन्ध था, और अंशुमती से भी। 'चरंत' और 'ब्रज' भी अर्थ में धात्वार्थ लेने से पर्यायवाची हैं। अंशुमती, अंशुमान का स्त्रीलिंग है। अंशुमान सूर्य है, अंशुमती उसी नाते यमुना ठहरती है। इन समस्त वैदिक वर्गों में जो किंचित् अस्थिरता और अस्पष्टता थी, वह पौराणिक काल में समाप्त हो गयी। पौराणिक कालीन 'ब्रज' नयी शक्ति के साथ पुनः वैष्णव पुनरुत्थान में उभरा और तब से आज तक 'ब्रज' कहलाता रहा। वेद-पुराण से वैष्णव-पुनरुत्थान तक, यह स्पष्ट विदित होता है कि इस 'ब्रज' का सम्बन्ध राजनीतिक भू-भागों से कभी नहीं रहा। यह कृष्ण और गायों के सम्बन्ध से मूलतः सांस्कृतिक और गौणतः आर्थिक अभिप्राय से युक्त रहा है।

राजनीतिक क्षेत्र ने "ब्रज" शब्द को नहीं अपनाया। मध्य-देश के प्रयोग को भी उतना राजनीतिक नहीं माना जा सकता, 'ब्रह्मर्षि' नाम भी सांस्कृतिक है। राजनीतिक क्षेत्र में इस प्रदेश का पहला नाम शूरसेन-प्रदेश रहा, फिर उसकी राजधानी के नाम से मथुरा-मण्डल कहलाया। मथुरा-मण्डल का मूल तो राजनीतिक ही विदित होता है, क्योंकि यह 'मथुरा' नाम के नगर के आधार पर पड़ा, और 'मथुरा' नगरी को राजधानी होने के कारण ही यह महत्त्व मिला, यद्यपि इस मथुरा के माहात्म्य का पोषण धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों ने राजनीतिक प्रवृत्तियों से कहीं अधिक किया। अतः मथुरा और ब्रज पर्याय हो गये और मथुरापुरी भारत की प्रधान पवित्र पुरियों में गिनी जाने लगी। इस दृष्टि से ब्रज का इतिहास प्रायः वही है जो मथुरा का है।

ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध संकेतों के आधार पर ही सही यह कहा जा सकता है कि ब्रज में कृष्ण या कृष्ण-जाति का निवास था। ये अंशुमती अथवा यमुना नदी के क्षेत्र में गायों को लेकर घूमते-फिरते थे। इनका दो बार इन्द्र से संघर्ष हुआ, दूसरी बार कृष्ण ने इन्द्र को हरा दिया।

महाकाव्य काल में मथुरा के पास मधुवन में लवण का आतंक प्रबल था। शत्रुघ्न ने उसको मारकर यहाँ शान्ति स्थापित की, तथा इस जनपद को सुख-समृद्धि से युक्त किया। इसी काल में बाद में सम्भवतः वैदिक काल की कृष्ण-शाखा के

अनुयायियों में गोपाल कृष्ण पैदा हुए, और इन्होंने सम्भवतः अपनी प्राचीन परम्परा को स्मरण करके वेद-विहित मार्ग का निरोध करके इन्द्र-पूजा रोक दी, और अपनी जातीय परम्परा में गोवर्द्धन-पूजा स्थापित की। वैदिकों और कृष्ण के संघर्ष की गूँज विधृता की कहानी में भी मिलती है। यज्ञ करने वाले ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को कृष्ण का सामान्य सत्कार भी करने से रोका था। कृष्ण के समय में व्रज के किसी क्षेत्र में नगरों का भी प्राबल्य हो उठा था, जिनके प्रधान कालिय नाग को पराजित करके कृष्ण ने पलायन करने के लिए विवश किया।

ब्रजभूमि में जैन और बौद्ध धर्म—तदनन्तर बौद्ध तथा जैन धर्मों की लहर चली। जैन धर्म की दृष्टि से मथुरा का महत्त्व बहुत अधिक है। बौद्धों से पहले यहाँ जैन धर्म जम गया, ऐसा प्रतीत होता है।

बाद में बौद्ध धर्म यहाँ आया। जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के संदर्भों को देखकर यह विदित होता है कि जैन-धर्मी तो यहाँ के सभी प्रकार के निवासियों के साथ बिना किसी संघर्ष के निवास करते रहे; क्योंकि जैन धर्म के ग्रंथों में यहाँ के किसी भी निवासी से किसी प्रकार के संघर्ष का संकेत नहीं मिलता। मथुरा के प्रधान निवासी इस काल में ब्राह्मण प्रतीत होते हैं। जैनों का ब्राह्मणों से कोई संघर्ष नहीं हुआ, किन्तु बौद्ध-ग्रंथों और जैन-ग्रंथों से विदित होता है कि बौद्धों का झगड़ा जैनों से हुआ था। यह झगड़ा एक स्तूप के ऊपर हुआ था। स्तूप 'देव-निर्मित' था, जिसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि यह बहुत पुराना था। जिस समय झगड़ा हुआ था, उससे इतने काल पूर्व का बना हुआ यह स्तूप था कि उस समय तक उसके निर्माता का ज्ञान किसी को नहीं था। यह 'देव-स्तूप' 'रत्न-स्तूप' था। इस पुराने स्तूप पर बौद्धों ने अधिकार जमाना चाहा, तभी जैन चेते और उन्होंने कहा कि यह जैन-स्तूप है। इस संघर्ष में जैन विजयी हुए। कभी उस काल में रथ-यात्रा के पीछे भी जैन और बौद्धों में झगड़ा हो गया था।[1] बृहत्कल्पसूत्र भाषा में यह भी उल्लेख आया बताते हैं कि मथुरा में जो नये गृह बनाये जाते थे उनके आलों में मंगलार्थ, आर्हत प्रतिमा स्थापित की जाती थी, अन्यथा इन घरों के गिर जाने की शंका रहती थी। इससे मथुरा में किसी समय जैन धर्म के प्राबल्य की बात सिद्ध होती है। जैनियों का चौरासी तीर्थ आज भी है। मथुरा में ही आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में जैनों की दूसरी परिषद् बुलायी गयी थी, जिसमें नष्ट होते हुए आगमों की वाचना की पुनर्व्यवस्था की गई थी।

बौद्ध धर्म की दृष्टि से भी मथुरा का महत्त्व कम नहीं था। भगवान् बुद्ध स्वयं यहाँ आये थे और इसमें संदेह नहीं कि वे मथुरा से प्रसन्न भी नहीं हुए थे। अंगुत्तर निकाय में बताया गया है कि भगवान् बुद्ध को मथुरा में पाँच दोष मिले थे। किसी बौद्ध ग्रंथ में यह भी उल्लेख है कि मथुरा के यक्षों से ब्राह्मण परेशान थे। वे भगवान् के पास गये और उनसे अपना कष्ट कहा। यक्ष-नायक को भगवान् बुद्ध ने अपने वश में कर लिया। उसने कहा कि यदि ये ब्राह्मण आपके लिए एक विहार

---

१. बृहत्कथा कोष।

बनवा दें तो वह उन्हें कष्ट नहीं पहुँचायेगा। ब्राह्मणों ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक धन-संग्रह करके वह विहार बनवा दिया । भगवान् बुद्ध के बाद महाकात्यायन मथुरा आये और गुंदावन विहार में ठहरे, और मथुरा के राजा अवन्तिपुत्र ने बौद्ध-धर्म स्वीकार किया। यह भी कहा जाता है कि उपगुप्त नाम के बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध आचार्य मथुरा में ही हुए थे। दिव्यावदान के प्रमाण से तो स्वयं भगवान् बुद्ध ने आनन्द को भविष्यवाणी करते हुए बताया था कि मेरे सौ वर्ष बाद मथुरा में एक गंधी के घर में उपगुप्त का जन्म होगा। लक्षण रहित होने पर भी वह बुद्ध जैसे कार्य सम्पन्न करेगा।

चीनी यात्री फाह्यान तथा ह्यूआन-चुआङ् के उल्लेखों से मथुरा में २० संघारामों का पता चलता है। इनमें फाह्यान के समय में ३,००० बौद्ध भिक्षु तथा ह्यूआन-चुआङ् के समय में २,००० भिक्षु रहते थे। अतः मथुरा-मण्डल का महत्त्व जैन और बौद्ध धर्मों के लिए भी कम नहीं था।

इस प्रकार जैन और बौद्ध ग्रंथों में भी मथुरा और मथुरा-मण्डल का ही उल्लेख विशेष हुआ है। 'ब्रज' शब्द का उल्लेख इनके ग्रंथों में प्रदेश के अर्थ में किसी को मिली हो, ऐसा संकेत नहीं मिलता।

वैष्णवीय पुनरुत्थान—बौद्ध धर्म के शिथिल हो जाने पर हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान की प्रक्रिया में मथुरा ने पुनः अपना वैष्णवत्त्व उद्धारित किया, इसी के फलस्वरूप पुनः 'ब्रज' शब्द प्रयोग में अग्रसर हुआ, और १५वीं-१६वीं शती तक यह पूरी तरह प्रचलित हो गया । इस काल में मथुरा अपना राजनीतिक अस्तित्व खो चुका था, क्योंकि वह अब राज्य या राजधानी नहीं था।

ब्रज में बौद्धों के लोप के उपरान्त सम्भवतः शैवों का प्रभाव बढ़ा। गुप्तकालीन शैव मूर्तियाँ कुछ ऐसा ही संकेत करती हैं। ब्रज की लोक-संस्कृति में शिव-मन्दिरों और शिव-पूजा का एक नियमित विधान मिलता है। कभी यह विधान संघ-संस्कृति का अंग होगा ऐसे अनुमान के संकेत मिलते हैं। लकुलीश सम्प्रदाय शैवों की ऐसा ही संघ-संस्कृति का प्रतिनिधि था, उसका अस्तित्व मथुरा में रहा है। शैवों के उपरान्त शाक्तों का प्राबल्य अवश्य हुआ, क्योंकि वार्त्ताओं से स्पष्ट विदित होता है कि वैष्णव सम्प्रदाय को यथार्थतः शाक्तों से ही शक्ति छीननी पड़ी थी।

तब से आज तक ब्रज वैष्णव संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा है। आज ब्रज में इसी वैष्णव संस्कृति की कितनी ही परम्परायें साथ-साथ चलती मिलती हैं। इन सभी परम्पराओं का मूलाधार कृष्ण हैं। इन कृष्ण-सम्प्रदायों को हम इस क्रम में प्रस्तुत कर सकते हैं—

१. निंबार्क ;
२. गौड़ीय ;
३. राधावल्लभी ;
४. हरिदासी ;
५. वल्लभ-सम्प्रदाय ; और
६. शुक ।

इन सभी सम्प्रदायों में सूक्ष्म दार्शनिक भूमिका में तो महदन्तर मिलता है, पर सामान्य रूप में सभी कृष्ण और राधा की टेक पर हैं। किसी में कृष्ण प्रधान हैं, तो किसी में राधा प्रधान हैं; किसी में दोनों का समान महत्व है, तो किसी में दोनों से युक्त किन्तु उनका एक अद्वैत रूप ही। ब्रज की महिमा के लिए यह कहा जा सकता है कि द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत सभी दार्शनिक-वाद राधा-कृष्ण के नाम रूप में यहाँ आकर समा गये हैं। इन्होंने ही ब्रज की "कृष्ण-संस्कृति" को पुष्ट और महत् किया है, और उसमें उन तत्वों की सम्भावना प्रस्तुत कर दी है जिनसे यह संस्कृति भारत-प्रिय हो सकी है। ब्रज के राधा-कृष्ण के तत्व ने दक्षिण, धुर दक्षिण, पूर्व और पश्चिम सभी ओर की महान् दार्शनिक और धर्मतत्वान्वेषी प्रतिभाओं को इस ब्रज की ओर आकर्षित किया, और उन्हें ब्रज की रज में लोटने को विवश किया है।

ब्रज संस्कृति—इस कृष्ण या राधा-कृष्ण-संस्कृति का मूल तत्व तो अमर्यादित प्रेम है। प्रतीत होता है कि वैदिक कालीन 'कृष्ण इन्द्र' के विरोध की भूमि यहाँ मूल धर्म-मानस में विद्यमान रही है, अतः वही अमर्यादित प्रेम को इस रूप में पोषित करते हुए जीवन के परम-लाभ को प्रदान करती रही है। इन्द्र को परास्त कर यहाँ कृष्ण उठे हैं, वैसे ही वेद की और उसकी मर्यादा को छोड़कर यहाँ कृष्ण-प्रेम उभरा है। यह कृष्ण प्रेम सर्व-समर्पण चाहता है, इस सर्व-समर्पण से प्राप्तव्य है कृष्ण-रस जिसे तात्त्विक भूमि पर एक रास-रस कहा जा सकता है, एक युगल-रस, तो एक रति-रस कहा जा सकता है। इस दिव्य रस में डूबना या इसका आस्वाद ही, भक्त का मन्तव्य होता है। कृष्ण के संसर्ग-सुख को प्राप्त करने के लिए कितने ही उपाय हैं, पर ब्रज-रज भी एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। भगवान् कृष्ण की चरण-रज यहाँ है, क्योंकि कृष्ण किसी भी युग में हुए हों, उनके चरण की रज तो रज से मिलकर प्रत्येक रज को पावन करती हुई आज तक यहीं विद्यमान है। एक ओर प्रेम समस्त मर्यादाओं से ऊपर उठा कर महत् की ओर अग्रसर करता है तो दूसरी ओर 'रज' समस्त मर्यादाओं से नीचे गिरा कर रजमय, चरणों को रजमय करके महत् के सम्पर्क की सम्भावना सिद्ध करती है। रज भगवान् की ही नहीं, भगवान् को परकर, उसके भक्तों और भक्तों के भक्तों की, तथा उसके क्षेत्र के किसी भी निवासी की पद-रज, पावन करने वाली है। प्रेम-रज के माहात्म्य ने धर्म के तत्त्व को महार्घ-भूमि से उतार कर लोक-भूमि पर सुलभ कर दिया।

इस संस्कृति का एक मूलाधार तो यह हुआ। यह कृष्ण और राधा के कारण पल्लवित हुआ, कृष्ण और गोपियों के कारण पल्लवित हुआ। किन्तु 'ब्रज' जिस कृष्ण के कारण ब्रज हुआ वह तो मूलतः 'गो ब्रज' था, गोकुल और गोवर्द्धन उसके दो ध्रुव हैं। कृष्ण गोपाल भी हैं। अतः ब्रज-संस्कृति में गो और गव्यादि का भी बहुत महत्त्व है। यह संस्कृति दही, दूध और मक्खन की संस्कृति थी।

कृष्ण की यह ब्रजभूमि वस्तुतः 'वन-भूमि' थी। इसमें घूम-घूम कर कृष्ण ने गौएँ चराई थीं। इस बहाने से ब्रज के कृष्ण ने वनों का भी सांस्कृतिक महत्त्व स्थापित किया, इसी प्रेरणा से भक्तों ने यहाँ तक कहा कि 'कोटिक हू कलधौत के

धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं'

इस वन-भूमि के पर्वत को उन्होंने श्री गिरराज ही नहीं बना दिया, उसे स्वयं भगवान्, अपने रूप में प्रकट कर प्रतिष्ठित कर दिया। इसी प्रकार नदी भी उनकी प्रिया होकर पूज्य हो गयी। इस ब्रज-संस्कृति का मूल, लोक-भूमि के प्रत्येक तत्त्व की सम्मान-भावना से ओत-प्रोत है। लोक-भूमि के वन, पर्वत, नदी और इनके निवासी नायक और नायिका उन्हीं में अलौकिकत्व और देवत्व है, उसी की मान्यता होनी चाहिये।

ब्रज की संस्कृति का यह आध्यात्मिक पक्ष है, इसके निर्माण में भारत की युग-युगीन परम्पराओं और भारत भर की अप्रतिम मेधाओं का योग रहा है। भारत की लोक-परम्परा के मूल को हम ऊपर देख चुके हैं किन्तु इस वेदोपरि संस्कृति की व्याख्या और ग्राहकता वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता और पुराणों के मंच पर खड़ी की गयी है और इसकी पुष्टि रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य जैसी वैष्णव दिव्यात्माओं ने की। इस प्रकार यह ब्रज की 'कृष्ण-संस्कृति' भारत की परम्परा से प्राप्त वैदिक-लौकिक परम्पराओं का भारत भर की प्रबल दार्शनिकता के मंथन से प्राप्त अमृत-नवनीत है। वस्तुतः यही भारत की मेधावी संस्कृति है, जिसमें भारत के ही नहीं, विश्व के जन-जन का कल्याण निहित है।

इसे संघ-संस्कृति कहा जा सकता है। यह अध्यात्मार्थी संस्कृति है। पर इसके साथ कल्याणार्थी संस्कृति का भी एक अलग पहलू है। इसे मात्र लोक-संस्कृति भी कह सकते हैं। इसमें दो स्तर हैं। एक में शिव, वाराह, गणेश, सूर्य, सरस्वती आदि देवी-देवताओं की पूजा होती है। दूसरे स्तर पर पथवारी, शीतला, देवी माता, भैरों, भुमियाँ, नाग देवता, जाहरपीर, जखैया, मैंकासुर, वृक्षों, भूतों-प्रेतों, हवाओं आदि की पूजा अथवा अनुष्ठान होते हैं।

ब्रज के इतिहास के संकेतों से विदित होता है कि यहाँ कभी असुर प्रबल रहे, तो कभी नाग, फिर यक्ष। रामायण काल में असुर प्राबल्य की सूचना है; कृष्ण के समय में नाग-आतंक था, तो भगवान् बुद्ध के समय यक्ष-यक्षणियों का। यक्ष-यक्षणियों से बुद्ध काल में यक्ष-जाति की ओर संकेत न होकर यक्ष और कुबेर पूजकों तथा सुरापायियों से हो सकता है। जखैया की पूजा ब्रज में आज भी प्रचलित है। कुबेर की आसवपायी अनेक मूर्तियाँ मथुरा में प्राप्त हुई हैं। मथुरा में कलार अथवा कलवारों की प्रधानता कभी रही होगी। लोकवार्त्ता में उनके खेड़ों के खेड़ों के नाश होने का प्रवाद प्रचलित मिलता है।[1] ये कलार तथा कलवार मद या आसव का व्यवसाय करने वाले थे। इन्हें यक्ष-संस्कृति का प्रतिनिधि माना जा सकता है। भगवान् बुद्ध के समय में इन यक्षों से मथुरा के ब्राह्मण बहुत परेशान थे। लोकवार्त्ता में भी कलारों और ब्राह्मणों के इस झगड़े की ध्वनि झंकृत मिलती है। इस प्रकार बुद्ध के समय तक यहाँ कितनी ही जातीय संस्कृतियों का संगम हो चुका होगा। फिर भारत

---

१. लोक में कई ध्वस्त टीलों के सम्बन्ध में यह कहावत है कि यह कलारों का गाँव था। कलारों ने एक ब्राह्मण-कन्या का अपमान किया तो उसके शाप से इस गाँव में आग और पत्थर बरसने लगे; गाँव ध्वस्त हो गया।

मौर्यों, कुषाणों और गुप्तों के साम्राज्य में भी रहा। ऐतिहासिक काल में अनेकों प्रवृत्तियाँ यहाँ आयी-गयीं पर कृष्ण और ब्राह्मणों का प्राधान्य यहाँ रहा। पुराण काल से यहाँ केशव की प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है। महमूद गजनवी यहाँ के निर्माण-शिल्प को देखकर दाँतों-तले उँगली दबा गया था।

व्रज की संस्कृति के मूल के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट विदित होगा कि इसके द्वारा कला की स्थापना और विकास में सहायता मिली। कृष्ण और राधा इस कला के आदर्श बने और उनकी साकार सौन्दर्य कल्पना ने स्थापत्य और मूर्त्ति-कला को पंख लगा दिये। कृष्ण की इस अमर्यादा भक्ति के साथ ही भजन-कीर्तन के लिए संगीत और नृत्य भी जन्मा। ध्यान-धारणा में नख-शिख सौन्दर्य के लिए मूर्त्ति ही नहीं, चित्र भी उभरे। आध्यात्मिक और धार्मिक उत्कर्ष के साथ आर्थिक समृद्धि भी बढ़ी, जिससे प्रत्येक कला ने उच्चातिउच्च आदर्श को प्रस्तुत करने की चेष्टा की। फलतः व्रज-संस्कृति जीवन व्यापी समग्र कला-उत्कर्ष की प्रेरणा बन गयी। कृष्ण और कला आज अभिन्न हो गये। इसीलिए व्रज स्थापत्य, मूर्त्ति, चित्र और संगीत सभी कलाओं का केन्द्र बन गया। इसका भूमि-वैभव अध्यात्म के गौरव के साथ विविध वनोपवनों के अवशेषों को यात्रा द्वारा देखा जा सकता है, उनके साथ कृष्ण की लीलाओं का ही नहीं तद्विषयक कला का भी दर्शन यत्किंचित् हो सकता है। इस कलात्मकता के कारण यह भाषा भी कलात्मक मधुरता से युक्त हो गयी, और साहित्य के इष्ट के अनुरूप ही उसने अपनी सत्ता-महत्ता सिद्धि की।

भागवत्कार का मथुरा-वर्णन

भगवान् श्रीकृष्ण जब कंस के आमंत्रण पर मथुरा पधारे तो उन्होंने पहली बार जिस मथुरा को देखा भागवत्कार के अनुसार उसकी शोभा और वैभव निम्न प्रकार था

"ददर्श तां स्फाटिक तुङ्गगोपुर द्वारां बृहद्धेय कपाटतोरणाम्।
ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदा मुप्यानरम्यो पवनोपशोभिताम् ॥
सौवर्ण शृंगारक हर्म्यनिष्कुटैः श्रेणी सभाभिर्भवनैरुप स्कृताम्।
वैदूर्यवज्रामल नील विद्रुमैर्मुक्ताहरिम्दिवंल भीषुवेदिषु ॥
जुष्टेषु जालामुखरंध्रकुट्टिमेष्वाविष्ट पारावतर्वादिनादिताम्।
संसिक्तरथ्यापममार्भचत्वरां प्रकीर्ण माल्यां कुरलातंडुलाम् ॥"

—भागवत ४०, ४१, २०-२२

: २ :

व्रजधाम का वैदिक महत्त्व

महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

भारतवर्ष के मुख्य तीर्थ-स्थानों में व्रजधाम का विशेष महत्त्व है। आनन्द-कन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की बाल लीला-भूमि होने का गौरव प्राप्त करने से, यह स्थान सर्वोच्च माना जाता है। हमारे यहाँ के तीर्थ-स्थानों के महत्त्व में अनेक कारणों का समावेश रहता है, भगवदवतार, देव, ऋषि आदि के चरित्रों से सम्बन्ध रखना, सत्त्वगुण-प्रधान भू-भाग होना, एवं शास्त्र-चर्चा और यज्ञादिकों का पवित्र स्थल होना, जहाँ तीर्थों के तीर्थत्व व उनके विशेष गौरव का कारण हैं, वहाँ ब्रह्माण्ड की सृष्टि-प्रक्रिया का एक प्रकृति के रूप में प्रदर्शन करना भी गौरव का विशेष महत्त्वपूर्ण कारण है। यह अन्तिम कारण व्रजधाम में पूर्ण रूप से घटित होकर इसके महत्त्व को वैज्ञानिक सिद्ध कर रहा है, इसी पर इस छोटे से निबन्ध में संक्षेप से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है।

हमारे इस ब्रह्माण्ड में सात लोक ऊपर और अतल, वितल आदि सात पृथ्वी के स्तर, यों चौदह भुवन प्रसिद्ध हैं। इन सात लोकों का स्मरण द्विजाती मात्र नित्य अपने सन्ध्योपासन में व्याहृति रूप से करते हैं—

'भूः भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्।'

'भूः' नाम से हमारी अधिष्ठित यह पृथ्वी कही जाती है, और 'स्वः' नाम से सूर्यमण्डल इन दोनों के मध्य का अन्तरिक्ष—(आकाश, अवकाश भाग) 'भुवः' नाम से कहा गया है। यह एक त्रिलोकी हुई। इसके पृथ्वी सूर्य इन दोनों मण्डलों का 'रोदसी' इस द्विवचनान्त शब्द से श्रुति में व्यवहार किया गया है। इसमें सूर्य प्रधान है, और अपने उपग्रहों सहित भूमि उसके वश में उसकी अनुगामिनी है। किन्तु यह सूर्य-मण्डल भी किसी दूसरे प्रधान मण्डल के वश में रहता हुआ, उसका अनुगामी है। उस प्रधान मण्डल का व्याहृतियों में 'जनः' नाम से स्मरण किया गया है – और इन दोनों मण्डलों के मध्यवर्ती अन्तरिक्ष को 'महः' नाम से। पुराणों में प्रलय के वर्णन में लिखा गया है कि, सूर्य मण्डल के विशीर्ण हो जाने पर जब हमारी त्रिलोकी का अवान्तर प्रलय वा नैमित्तिक प्रलय होता है, तब सूर्यमण्डल स्थित देवता, ऋषि आदि महर्लोक, जनलोक में जाकर निर्भय हो जाते हैं। यह हमारी त्रिलोकी से उच्च श्रेणी की दूसरी त्रिलोकी हुई। उस त्रिलोकी के दोनों मण्डलों का श्रुति में 'क्रन्दसी' इस द्विवचनान्त शब्द से निर्देश है, और उस प्रधान मण्डल को 'परमेष्ठि मण्डल' नाम से कहा गया है। जिसका कि अनुगामी हमारा सूर्य है। इस परमेष्ठि-

मण्डल से भी आगे और एक मण्डल है जिसे व्याहृतियों में 'सत्यम्' नाम से सर्वोच्च स्थान दिया है। पुराणों में भी इसका 'सत्यलोक' नाम से ही व्यवहार है। इन दोनों मण्डलों के मध्य का अन्तरिक्ष 'तपः' नाम से व्याहृतियों में स्मृत है। यह तीसरी त्रिलोकी हुई। इसके मण्डलों का श्रुति में 'संयती' इस द्विवचनान्त शब्द से व्यवहार है, और उस प्रधान मण्डल को 'स्वयम्भू' मण्डल नाम से प्रसिद्ध किया गया है, क्योंकि वह सबसे प्रथम स्वयं जात है, उसका उत्पादक कोई दूसरा नहीं। यह हुआ सप्तलोकात्मक एक ब्रह्माण्ड। इसमें चार मण्डल और तीन अन्तरिक्ष हैं, किन्तु हमारी पृथ्वी और सूर्य के मध्य में जो अन्तरिक्ष है, उसमें प्रधान रूप से 'चन्द्र-मण्डल' का प्रचार है। उससे हमारी पृथ्वी का घनिष्ठ सम्बन्ध है, ऋतु वनस्पति आदि के उत्पादन में वह चन्द्र-मण्डल प्रधान भाग लेता है। इस कारण उसे भी मण्डलों की श्रेणी में ही ले लिया जाता है। यद्यपि ऊपर के दोनों अन्तरिक्षों में बृहस्पति, वरुण आदि बहुत बड़े-बड़े मण्डल हैं, जो हमारे सूर्य से भी बहुत बड़े हैं, किन्तु हमारी पृथ्वी में उनका साक्षात् घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता; सूर्य चन्द्र आदि के द्वार से होता है। अतः उन्हें मण्डलों की श्रेणी में नहीं गिना जाता। इस ब्रह्माण्ड में पूर्वोक्त पाँच ही प्रधान मण्डल हैं, जिन्हें इस ब्रह्माण्ड की 'वल्शा' या शाखा कहा जाता है।

मनुस्मृति के आरम्भ में सृष्टि-क्रम का दिग्दर्शन कराते हुए, संक्षेप में कहा गया है कि आज यह अति विस्तृत दिखाई देने वाला जगत् उत्पत्ति से पूर्व घोर तम निमग्न था। न इसका प्रत्यक्ष हो सकता था, न अनुमान। कोई धर्म प्रस्फुट न होने के कारण कोई शब्द भी इसे नहीं बता सकता था, मानों सब कुछ प्रसुप्त दशा में था।

"ततः स्वयम्भूर्भगवान्, अव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तोजाः, प्रादुरासीत्तमोनुदः॥"

उस अन्धकार को दूर करने के लिए सबसे पूर्व स्वयम्भू का प्रादुर्भाव हुआ। इनका और कोई उत्पादक नहीं। ये सबसे पूर्व प्रादुर्भूत हुए इस कारण स्वयम्भू कहलाये। यह भगवान् का ही एक रूप था। इनने आगे स्पष्ट विस्तार की इच्छा से सब से पूर्व अपने शरीर से 'अप' तत्त्व की सृष्टि की। उसी 'अप्' तत्त्व में जो बीज निधान किया वह ब्रह्माण्ड बना। यह वेदोक्त सृष्टि-क्रम का अनुवाद है, और पुराणों में भी इसी प्रकार का सृष्टि-क्रम बहुधा देखा जाता है। इससे तात्पर्य यह निकलता है कि स्वयम्भू-मण्डल में सृष्टि का आरम्भ नहीं होता। आगे ज्ञान और इच्छा रूप तप के द्वारा जन-लोक से सृष्टि चलती है। जिसे भगवान् मनु ने 'अप' तत्त्व कहा है, उसकी तीन अवस्था श्रुतियों में वर्णित हैं—सोम, वायु और जल। अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में वह सोम कहलाता है, किंचित् स्थूलता होने पर वायुरूपता उसमें आ जाती है, और अधिक स्थूल होने पर जल हो जाता है। अस्तु, प्रथम अवस्था रूप जो 'सोमतत्त्व' बतलाया गया, वह सर्वत्र व्यापक है, और प्राणि मात्र का जीवनप्रद वही 'सोमतत्त्व' है ऐसा श्रुति का सिद्धान्त है। अव्यय पुरुष भगवान् की कला रूप मन, प्राण और वाक् इसी 'सोमतत्त्व' में प्रतिबिम्बित होते हैं, और यही सोमरस 'गो' नाम से भी कहा जाता

है, क्योंकि 'गो' नाम किरणों का है, और प्रकाश के सम्बन्ध से यही 'गो-तत्त्व' प्रज्ज्वलित होकर किरण रूप बनता है। एक वेदमन्त्र में सोम की स्तुति इस प्रकार की गयी है—

"त्वमिमा औषधीः सोमसर्वाः त्वमपो जनयस्त्वङ्गा।
त्वमातनोरुर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषावितमोववर्थः॥"

अर्थात् हे सोम ! तुमने ही सब औषधियों को उत्पन्न किया है। तुम ही जल तत्त्व के उत्पादक हो, और तुम ही गौओं को उत्पन्न करते हो। तुम इस विशाल अन्तरिक्ष को विस्तृत करते हो, अर्थात् सब अन्तरिक्ष में व्याप्त रह कर, उसे विस्तृत रूप देते हो, और तुम ही दीप्ति द्वारा अन्धकार को दूर करते हो।

इस गोतत्त्व नामक सोमतत्त्व का प्रथम प्रादुर्भाव इस जन-लोक नाम के परमेष्ठी-मण्डल में हुआ है। इसलिए इस जन-लोक को 'गो-लोक' कहकर पुराणों में प्रसिद्ध किया है। यही व्रजधाम है ; क्योंकि जहाँ गौ रहे, गौ बैठे उस क्षेत्र का नाम 'व्रज' होता है। एक वेदमन्त्र में यजमान को इसी लोक में पहुँचाने की आशा प्रकट की गयी है। यह मन्त्र निरुक्त में भी उद्धृत है—

"तावां वास्तू न्यूश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरि शृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभातिभूरि॥"

ऋत्विक कहते हैं कि यजमान और यजमान-पत्नी ! हम तुम्हारे जाने के लिए उस लोक की कामना करते हैं, जहाँ बड़े-बड़े सींगों वाली और निरन्तर गमनशील गौएँ विराजमान हैं। इसी लोक में सबके द्वारा स्तुति किये गये और सबकी कामनाओं की वर्षा करने वाले भगवान् का परम पद प्रकाशित होता है।

हमारे एक मान्य पण्डितजी कहा करते थे कि यहाँ का 'वृषण' पद 'वृष्णेः' का ही परोक्ष रूप है, और वृष्णि पद भगवान् कृष्ण का वाचक सुप्रसिद्ध है। इसलिए स्पष्ट है कि यह मन्त्र व्रजधाम के शिरोमणि-भूत श्री वृन्दावन का ही वर्णन कर रहा है। अस्तु, वृष्णे कहिये व वृष्णः कहिये मन्त्र में 'गो-लोक' का वर्णन है, इसमें कोई ननु नच नहीं हो सकता। सबके आराध्य भगवान् विष्णु की चार रूपों में उपासना श्रुति पुराणादि में वर्णित है, और उनके चार धाम माने गये हैं—

१. वैकुण्ठनाथ विष्णु ;
२. क्षीर-समुद्रशायी ;
३. श्वेत द्वीपाधिपति शुक्लवर्ण ; और
४. श्रीकृष्ण रूप, 'गोलोक' धाम के अधिपति।

कहना नहीं होगा कि चारों एक ही रूप हैं किन्तु उपासकों की रुचि के अनुसार चार स्थानों में चार रूपों में दर्शन देते हैं। इन स्थानों का भी तत्त्व विचार करने से इनकी एकरूपता ही सिद्ध होती है। वैकुण्ठ को महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने अक्षरतत्त्व कहा है, जो अव्यय पुरुष का धाम है, और सर्वव्यापक है। क्षीर-समुद्र भी 'अप्' तत्त्व का आधारभूत सर्वव्यापक है, एवं तम को दूर कर प्रकाशित होने के कारण इस ब्रह्माण्ड को ही, श्वेत द्वीप, कहते हैं, और पूर्वोक्त प्रकार से 'गोलोक' भी

सर्वत्र व्यापक है। भगवान् के रूप और उनकी शक्तियाँ भी मूल तत्त्व रूप से एक ही हैं, किन्तु पूर्व कहा जा चुका है कि, भक्तों की रुचि के अनुसार वे भिन्न-भिन्न रूपों में दर्शन देते हैं। गोलोक में राधारूपाह्लादिनी शक्ति से युक्त आनन्दमय भगवान् कृष्ण का द्विभुज रूप सदा विराजमान रहता है। वे जब भक्तों पर अनुग्रह कर भूलोक में अवतीर्ण हुए, और 'सोमतत्त्व' से अपना सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिए सोमवंश में ही जब आपने अवतार धारण किया तो उनका प्रिय धाम 'गोलोक' भी भूमण्डल में अवतीर्ण हुआ, और वहाँ की वे सर्वोत्पादक गौ भी मूर्ति धारण कर गौ रूप से यहाँ आयीं। यही ब्रजधाम है। किरण रूप गौओं के वक्र होने से वैज्ञानिक भाषा में 'शृंग' पद का व्यवहार होता है, और यहाँ वे 'शृंग' भी मूर्त्तिमान रूप में वक्र दिखाई देते हैं। यह धाम भगवान् कृष्ण का अत्यन्त प्रिय है, और इससे वे किसी काल में भी वियुक्त नहीं होते। इस धाम की महिमा पुराणों के समान श्रुतियों में भी वर्णित है, और विचार करने पर उसका वैज्ञानिक तत्त्व भी स्फुट् हो जाता है। भगवत्कृपा से ही इस ब्रजधाम का निवास प्राप्त होता है, जिसकी पूर्वोक्त वेदमन्त्र में भी अभिलाषा की गयी है।

सुन्दर कुँवरिजी का एक पद

सुन्दरि कुँवरिजी कृष्णगढ़ नरेश महाराज राज सिंह जी की पुत्री थीं। आपकी माता का नाम बाँकावतिजी था जो स्वयं एक भक्तकवयित्री थीं। सुन्दर कुँवरि ने भक्ति रस की सरस रचना ब्रज-भाषा में की है। 'ब्रज रसासव' का नशा इन पर कितना गहरा चढ़ा, यह इन्हीं के निम्न पद से ज्ञात होता है। आप लिखती हैं—

मद ब्रज-विपिन रसासब भावै।
जुगल रूप भरि नैन-पियाले, छिन-छिन छाक चढ़ावै।
निभृत नवल निकुंज विनोदनु, स्वाद विविधि रुचि पावै॥
लगन विभव, बैकुंठ अभावन, मतवारिन ठुकरावै।
तीन लोक की रचना जेती, कछु न नजर में आवै॥
जमुना-पुलिन, नलिन-रज-रंजित, मत्त पछरि मुसिक्यावै।
नवल नेह मतवारी कों गहि, राधा आनि उठावै॥

: ३ :

ब्रजभूमि का सीमा-विस्तार

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी

[अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व-विभाग, सागर-विश्वविद्यालय]

हमारे देश में ब्रजभूमि को एक विशिष्ट महत्त्व प्राप्त है। ब्रज का इतिहास, यहाँ की धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराएँ तथा यहाँ की भाषा और साहित्य का अनोखापन ब्रजभूमि को नूतन रूप प्रदान करते हैं। आज भी ब्रज में पदार्पण करने वाला सहृदय व्यक्ति अपने को किसी नये लोक में प्रविष्ट अनुभव करता है, जहाँ ब्रजेश भगवान् कृष्ण की नित्य नवीन छवि का उसे अनुभव होता है। कुछ काल के लिए ही सही, सांसारिक विभीषिकाएँ उस व्यक्ति के लिए अगोचर-सी लगती हैं। ब्रज-वसुन्धरा में आज भी वह सौन्दर्य दिखाई पड़ता है जो हृदय को बरबस आकृष्ट कर मानव को आत्म-विभोर बना देता है।

यह ब्रजभूमि आज जिस रूप में विद्यमान है उसका कुछ परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है। ब्रज का महत्त्व तीन रूपों में विशेष है—

(१) भगवान् श्री कृष्ण की जन्म-भूमि व लीला-स्थली के रूप में ;

(२) प्राचीन भारतीय शूरसेन जनपद की ऐतिहासिक महत्ता की दृष्टि से ; और

(३) ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र की दृष्टि से।

यदि हम उक्त तीन दृष्टियों से ब्रज क्षेत्र की सीमाओं पर विचार करें तो ब्रज के तीन रूप हमारे सामने आते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण का लीला-क्षेत्र 'ब्रज-मण्डल'—यह क्षेत्र ही वह ब्रज है जिसका विस्तार ८४ कोस कहा गया है। इसका विस्तृत परिचय आगामी अध्यायों में दिया जा रहा है। यही ब्रजयात्रा का भी क्षेत्र है।

शूरसेन जनपद—प्राचीन काल में वर्तमान मथुरा नगर तथा उसके आस-पास का कुछ भाग 'शूरसेन' जनपद नाम से प्रसिद्ध था। इस जनपद की राजधानी मथुरा थी, जिसे 'मधुरा' भी कहते थे।

शूरसेन जनपद की सीमाएँ समय-समय पर बदलती रहीं। कालान्तर में मथुरा नाम से ही यह जनपद विख्यात हुआ। ईसवी सातवीं शती में जब चीनी यात्री ह्वेनसांग यहाँ आया तब उसने लिखा कि मथुरा राज्य का विस्तार ५,००० ली (लगभग ८३३ मील) था। उसके वर्णन से पता चलता है कि सातवीं शती में मथुरा राज्य के अन्तर्गत वर्तमान मथुरा-आगरा जिलों के अतिरिक्त आधुनिक भरतपुर तथा धौलपुर के भूभाग और उपरले मध्य-प्रदेश का उत्तरी भाग रहा होगा। दक्षिण-पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जेजाकभुक्ति (जिझौती) की पश्चिमी सीमा से तथा

दक्षिण-पश्चिम में मालव राज्य की उत्तरी सीमा से मिलती रही होगी। सातवीं शती के बाद से मथुरा राज्य की सीमाएँ घटती गईं। इसका प्रधान कारण समीप के कान्यकुब्ज (कन्नौज) राज्य की उन्नति थी, जिसमें मथुरा तथा अन्य पड़ोसी राज्यों के बड़े भू-भाग सम्मिलित हो गये।

प्राचीन शूरसेन या मथुरा जनपद का प्रारम्भ में जितना विस्तार था उसमें ह्वेनसांग के समय तक क्या हेर-फेर होते गये, इसके सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते, क्योंकि हमें प्राचीन साहित्य आदि में ऐसे प्रमाण नहीं मिलते जिनके आधार पर विभिन्न कालों में इस जनपद की लम्बाई-चौड़ाई का ठीक पता चल सके। प्राचीन साहित्यिक उल्लेखों से जो कुछ पता चलता है वह यह है कि शूरसेन या मथुरा प्रदेश के उत्तर में कुरुदेश (आधुनिक दिल्ली और उसके आस-पास का प्रदेश) था, जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर थीं। दक्षिण में चेदि राज्य (आधुनिक बुन्देलखंड तथा उसके समीप का कुछ भाग) था, जिसकी राजधानी का नाम सुक्तिमतीनगर था। पूर्व में पंचाल राज्य (आधुनिक रुहेलखंड) था, जो दो भागों में बँटा हुआ था—उत्तर पंचाल तथा दक्षिण पंचाल। उत्तर वाले राज्य की राजधानी अहिच्छत्रा (बरेली जिले में वर्तमान रामनगर) और दक्षिण वाले की कांपिल्य (आधुनिक कांपिल जिला फर्रुखाबाद) थी। शूरसेन के पश्चिम वाला जनपद मत्स्य (आधुनिक अलवर जिला तथा जयपुर का पूर्वी भाग) कहलाता था। इसकी राजधानी विराटनगर (आधुनिक बैराट, जयपुर में) थी।

ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र—आधुनिक ब्रज के सम्बन्ध में मण्डलाकृति या गोल आकार का होने की बात कही जाती है, परन्तु न तो ब्रजभाषा-भाषी प्रदेश की सीमाओं की दृष्टि से वर्तमान ब्रज का आकार ठीक गोल है और न प्रचलित चौरासी कोस वाली वन-यात्रा की दृष्टि से। यह वन-यात्रा आजकल जिस रूप में चलती है उसमें अब पहले से कोई बड़ा परिवर्तन हुआ नहीं प्रतीत होता। यह कहा जा सकता है कि पिछले काल में (सम्भवतः चौदहवीं से सोलहवीं शती के बीच) कभी ब्रज का आकार गोल रहा हो और तभी उसे 'ब्रज-मण्डल' की संज्ञा दी गई हो। मण्डल से गोल का अर्थ न लेकर प्रदेश का भी अभिप्राय लिया जा सकता है। श्री नारायण भट्ट द्वारा १५६० ई० के लगभग रचित 'ब्रज-भक्ति विलास' नामक ग्रंथ के एक श्लोक के आधार पर तत्कालीन ब्रज की सीमा जिसका उल्लेख आगे हुआ है इस प्रकार मानी जाती है—पूर्व में हास्यवन (अलीगढ़ जिले का बरहद गाँव), पश्चिम में उपहार वन (गुड़गाँव जिले में सोन नदी के किनारे तक), दक्षिण में जह्नुवन (बटेश्वर गाँव, जिला आगरा) तथा उत्तर के भुवनवन (भूषणवन, शेरगढ़ परगना)। इस श्लोक का अभिप्राय अनुलिखित दोहे से मिलता-जुलता है।

> **"इत बरहद उत सोनहद, उत सूरसेन को गाम।**
> **ब्रज चौरासी कोस में, मथुरा-मण्डल धाम॥"**

वर्तमान काल में ब्रजभाषा का विस्तार उपर्युक्त सीमाओं को लाँघ कर बहुत कुछ आगे बढ़ गया है। ग्रियर्सन-कृत लिंग्विस्टिक सर्वे तथा इस सम्बन्ध में अन्य

अन्वेषणों के आधार पर वर्तमान ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र का विस्तार निम्नलिखित माना जा सकता है[1] —

मथुरा जिला, राजस्थान का भरतपुर जिला तथा करौली का उत्तरी अंश, जो भरतपुर एवं धौलपुर की सीमाओं से मिला-जुला है ; धौलपुर जिला। मध्य प्रदेश के मुरैना और भिंड जिले एवं ग्वालियर का लगभग २६° अक्षांश से ऊपर का भाग, आगरा जिला कुल, इटावा जिले का अधिकांश, मैनपुरी जिला, एटा जिला (पूर्व के कुछ अंशों को छोड़कर जो फ़र्रुखाबाद जिले की सीमा से मिले-जुले हैं), अलीगढ़ जिला (उत्तर-पूर्व में गंगा नदी की सीमा तक), बुलन्दशहर जिले का दक्षिणी लगभग आधा भाग (पूर्व में अनूपशहर की सीध से लेकर), गुड़गाँव जिले का दक्षिणी अंश (पलवल की सीध से) तथा अलवर जिले का पूर्वी भाग जो गुड़गाँव जिले की दक्षिणी तथा भरतपुर की पश्चिमी सीमा से मिला-जुला है।

वृहत्तर ब्रज प्रदेश की उपर्युक्त सीमाएँ मानी जा सकती हैं। इन सीमाओं में यद्यपि कुछ परिवर्तन की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता पर इतना निर्विवाद है कि वर्तमान समय में ब्रजभाषा या उसकी विविध बोलियाँ इस भू-भाग में बोली जाती हैं।

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० ग्रियर्सन के मत से सहमत नहीं। उनके मतानुसार ब्रजभाषी क्षेत्र में निम्नलिखित प्रदेश सम्मिलित हैं—उत्तर प्रदेश के अलीगढ़, मथुरा, आगरा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली के जिले ; पंजाब के गुड़गाँव जिले की पूर्वी पट्टी ; राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग ; मध्य भारत में ग्वालियर का पश्चिमी भाग। ग्रियर्सन साहब का यह मत भी डा० धीरेन्द्र जी को मान्य नहीं कि कन्नौजी स्वतन्त्र बोली है, इसलिए उत्तर प्रदेश के पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर के जिले भी ब्रजभाषी क्षेत्र में सम्मिलित कर लिये गये हैं।

इस सम्बन्ध में स्वर्गीय लाला लल्लूलाल जी का मत भी यहाँ उल्लेखनीय है। अपने ग्रंथ "जनरल प्रिन्सिपल्स ऑफ दी इन्फ्लैक्शन एण्ड कन्जूगेशन इन दी ब्रजभाषा" में उन्होंने ब्रजभाषा के क्षेत्र का वर्णन करते हुए कहा है कि ब्रजभाषा वह भाषा है जो ब्रज, जिला ग्वालियर, भरतपुर, भदावर, अन्तर्वेद तथा बुन्देलखण्ड में बोली जाती है।"

— सम्पादक

: ४ :

भक्ति का उदय[1]

श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

सम्पादक : 'समालोचक', आगरा

भक्ति-भावना मूलतः "महत्त्व-स्वीकृति" की भावना है। जीवन में किसी क्षेत्र में जब आदिम मनुष्य किसी असाधारणता के दर्शन करता होगा, तो एक विचित्र प्रकार का स्पन्दन उसके हृदय में उत्पन्न होता होगा, प्रकृति की विराटता, असामान्य शक्ति एवम् उसके भयंकर कृत्य भी आदि-मानव के मन में एक विशेष प्रकार का तनाव उत्पन्न करते होंगे। इस तनाव या क्षोभ का एक रूप हम 'ऋग्वेद' में देखते हैं। यहाँ प्रकृति-शक्तियों का सूक्ष्म (Abstract) रूप मानवीय भावना का विषय दिखाई पड़ता है। यह मानवीय भावना वैदिक मंत्रों के रूप में प्रकट हुई है। इन मंत्रों को 'यज्ञ-क्रिया' के साथ जोड़ा गया। यज्ञ का अर्थ है अग्नि में भोजन-सामग्री, समिधा, घृत आदि की भेंट, "स्वाहा" शब्द का उच्चारण तथा वैदिक मंत्रों का पाठ, जिसमें प्राकृतिक शक्तियों या देवताओं के प्रति मानवीय भावना की प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है। परन्तु वेद-मंत्रों में मानवीय भावना का जो रूप दिखाई पड़ता है, उसमें शत्रु के नाश, पशु-वृद्धि, दीर्घ जीवन व संतान-सम्पदा-वृद्धि आदि की प्रार्थनाएँ ही अधिक हैं।

अनार्यों का धर्म—उधर आर्यों के यज्ञों से पृथक् इस देश की दूसरी आदिम जातियों की धार्मिक भावना दूसरे प्रकार की थी। तत्कालीन सामान्य जनता अर्थात् अनार्य—नाग, निषाद, किन्नर, गंधर्व, कोल, भील, द्रविड़, पुलिंद, शंवर आदि कबीलों में मानवीय भावना एक दूसरे रूप में प्रकट होती हुई दिखाई देती है। ये जातियाँ या कबीले अपने भौतिक जीवन की सफलता के लिए वैदिक देवताओं से भिन्न स्थानीय देवी-देवताओं को पूजती थीं, वृक्ष, पशु-पक्षी तथा कुछ प्राकृतिक शक्तियों की "पूजा" इनमें प्रचलित थी, ये लोग पशु-बलि करते थे, नर-बलि भी इसमें सम्मिलित थी, तथा जावन के लिए आवश्यक द्रव्यों की भी भेंट दी जाती थी। सामूहिक नृत्यों व सामूहिक मदिरा आदि के पान का भी आयोजन होता था—ऐसे उत्सवों में पितर-पूजा, वीर-पूजा, फसल पक जाने पर देव-पूजा तथा विवाह आदि अवसरों पर की गई पूजाएँ प्रचलित थीं। ऐसी पूजाओं का विस्तृत वर्णन श्री फ्रेजर ने प्रसिद्ध ग्रंथ 'Golden Bough' में किया है। अनार्यों द्वारा यह पूजा उनके भौतिक संघर्ष के "सहायक-तत्त्व" के रूप में ही दिखाई पड़ती है। हमें आदिम

---

१. लेख सम्पादकों द्वारा यथास्थान सुधारा जाकर स्थानाभाव के कारण संक्षिप्त रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। — सम्पादक

कबीलों में "धर्म और जादू" मिश्रित रूप में दिखाई पड़ते हैं और इन सबका उद्देश्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करके भौतिक जीवन को सुविधामय और सुखी बनाना है।

स्थानीय देवी-देवताओं—जिनमें पशु-पक्षी, वृक्ष आदि के "टोटेम" अधिक पूजित होते थे— का प्रभाव प्रारम्भ में आर्य-यज्ञ प्रणाली पर नहीं पड़ा। आर्य लोग, जैसा कहा गया है सूक्ष्म शक्तियों के उपासक थे। बाद में जब आर्य और अनार्यों का सम्पर्क बढ़ा तो उनमें सांस्कृतिक समन्वय आरम्भ हुआ। पहले तो आर्यों ने कुछ अनार्य कबीलों के देवताओं को स्वीकार कर लिया। "रुद्र" को उन्होंने ऋग्वेद में ही स्वीकार कर लिया था; यजुर्वेद में विस्तृत "रुद्रध्यायी" मिलती है। अथर्ववेद में अनार्य कबीलों में चलने वाले "जादूमिश्रित धर्म" को आर्यों ने यथावत् स्वीकार कर लिया है, परन्तु बहुत से आर्य-विद्वान उसे 'वेद' ही नहीं मानते थे। उसे 'वेद-तत्त्व' माना गया तब उसमें ऋग्वेद के बहुत से मंत्र भर दिए गए।

परन्तु धर्म या उपासना के ये दो रूप—आर्य-यज्ञ-प्रणाली व अनार्य-उपासना-पद्धति—उपनिषद् युग तक समानान्तर रूप से विकसित होती रही। विजित अनार्य कबीलों के, जिनकी भौतिक स्थिति विपन्न और दुरावह थी, भक्ति-स्तोत्रों में "दैन्य" अधिक मिलता है और यह "दैन्य" आगे चलकर "आर्य-स्तोत्रों" में भी दिखाई पड़ा, क्योंकि आर्यों की महात्त्वाकांक्षा सर्वदा सब समय पूरी होती थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

धार्मिक समन्वय—इस प्रकार धीरे-धीरे आर्य-अनार्यों में पारस्परिक समन्वय तथा सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होने के कारण उनमें सांस्कृतिक एकरूपता की भावना धीरे-धीरे विकसित हुई और वे एक दूसरे के निकट आते चले गये। आर्यों का विजयोन्माद जैसे-जैसे कम होता गया, अर्थात् आर्यों में कुछ शासक हो गए और अधिक अंश, अनार्यों के साथ कृषि-वाणिज्य में लगता गया, वैसे ही जो "दैन्य" अनार्य लोगों के धार्मिक स्तोत्रों में दिखाई पड़ता है, वह "आर्य-स्तोत्रों" में भी आने लगा। उपनिषद्-युग में जब आर्य दृष्टा "एक ब्रह्म" "एक आत्मा" के द्वारा सारे समाज में एकता स्थापित कर रहा था, तभी श्वेताश्वतर उपनिषद् द्वारा इस "दैन्य भाव" की प्रथम अभिव्यक्ति आर्य साहित्य में भी दिखाई पड़ी। इसका अर्थ यह नहीं कि इसके पूर्व "दैन्य भाव" की अभिव्यक्ति मिलती ही नहीं। वह मिलती है, तथापि उपनिषद् युग के बाद इस भक्ति भाव के भीतर यह "दैन्य-भाव"—अपना विशेष महत्त्व रखता है।

भक्ति का उदय—"भागवत धर्म" या "पाँचरात्र धर्म" में एक ओर और दूसरी ओर शैव-शक्ति सम्प्रदायों में यह "दैन्य" व्यक्त होता ही रहा और बराबर बढ़ता गया। अत: श्वेताश्वतर उपनिषद् से ही हम भक्ति-भावना का विकास मानते हैं; उस भक्ति-भावना का जिसमें सब कुछ देवता की "कृपा या अनुग्रह या पुष्टि" पर ही हमारा उद्धार अवलम्बित होता है, हमारा प्रयत्न महत्त्वहीन हो जाता है। इस प्रकार यहाँ तक आते-आते मानवीय प्रयत्न की जगह 'दैवी-कृपा' का सिद्धान्त ही सर्वोपरि हो गया। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि "सभी धर्मों (प्रयत्नों) को छोड़कर मुझ पर निर्भर रहो, मैं तुम्हारा उद्धार कर दूँगा।"

श्वेताश्वतर उपनिषद् बौद्ध-युग के आस-पास की कृति है, और गीता का वर्तमान रूप भी बौद्ध-युग की लम्बी अवधि में शनैः शनैः विकसित हुआ है। भागवत धर्म व शैव धर्म भी—इसी युग में विकसित हुए हैं। इन सब सम्प्रदायों का आधार भक्ति-भाव या 'दैवी कृपा' का सिद्धान्त है। शैव इसे 'शक्तिपात' व वैष्णव इसे ही 'अनुग्रह या कृपा' कहते हैं।

दैवी कृपा का यह सिद्धान्त इस युग में इतना लोकप्रिय क्यों हुआ, इसके कारणों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि देश में इस समय केन्द्रीय सत्ता की स्थापना हो चुकी थी। कई विशाल राज्यों का संगठन हो चुका था, तथा जन-जीवन में पीड़न और विषमता तथा त्रास था। अपने ही लोग अत्याचार करते थे, उनकी कृपा पर शेष जनता का जीवन सुरक्षित था। अतः कृपा के ऊपर भौतिक जीवन ही अवलम्बित था तो आध्यात्मिक क्षेत्र में भी "दैवी अनुग्रह" का सिद्धान्त यज्ञ-यागों से अधिक प्रचलित हुआ क्योंकि 'यज्ञ-याग' तो सम्पत्तिशाली लोग या राजा ही कर सकते थे। इसलिए गीता के अर्जुन को जो भक्ति-भाव का उपदेश है वह प्रतीक मात्र है। वहाँ अर्जुन एक सामान्य मनुष्य के रूप में सम्बोधित हुए हैं, ११ अक्षोहिणी कौरव सेना के नाशक अर्जुन नहीं।

विष्णु पूजा का विकास—हमने कहा है कि अनार्य कबीलों में 'टोटेम उपासना' प्रचलित थी; यानी वाराह, कच्छप, वानर, मत्स्य, सर्प, पीपल आदि को देवता माना जाता था। इन अनार्य देवताओं को भी पुराणों में मान्यता प्रदान करके एक उदार दृष्टिकोण अपनाया गया। आप विष्णु के दशावतारों को देखें, इनमें प्रारम्भिक अवतारों में 'टोटेम' भी स्वीकृत हुए हैं—मत्स्य, वाराह, हयग्रीव (अश्व) कच्छप, नृसिंह (सिंह) आदि। आगे 'विष्णु देवता' के लिए "शेषनाग" व "गरुड़" को "शैय्या" व "वाहन" के रूप में स्वीकार किया गया है। नाग-पूजा नागों में व गरुड़-पूजा—सुपर्णों में प्रचलित थी। वैष्णवों ने दोनों अनार्य कबीलों के देवताओं (टोटेमों) को 'विष्णु' के साथ सम्बद्ध कर दिया। रुद्रशिव और कालीदेवी के साथ तो स्पष्ट ही अनार्य देवी-देवताओं का समूह एकत्र कर दिया गया है—इस तथ्य को वैष्णव भी स्वीकार करते हैं।

स्वयं विष्णु की एक प्राचीन मूर्ति में तीन सिर मिले हैं, एक ओर शेर है, दूसरी ओर वाराह है, तीसरी ओर मनुष्य का शीश है।[1] ऐसी मूर्तियों से यह तथ्य स्पष्ट है कि विष्णु का जो सुन्दर रूप मिलता है वह भी क्रमशः विकसित हुआ है, प्रथम इतना सुन्दर रूप नहीं था। 'रुद्र' का सुन्दर "शिव" रूप भी धीरे-धीरे विकसित है, "ध्यानी शिव" पर स्पष्ट ही "ध्यानी बुद्धों" (अवलोकितेश्वर, अमिताभ, अक्षोभ आदि पंचध्यानी बुद्धों) का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार बौद्ध-युग में वैदिक 'यज्ञ-याग' के समानान्तर— भागवत-शैव-शाक्त सम्प्रदायों का विकास हुआ है। इन सम्प्रदायों में एक देवता है—उस देवता का 'मंत्र' है, ध्यान है, उसका वेष अस्त्र-शस्त्र व वाहन है। पूजा-उपासना के लिए देवता की

---

1. Ganesh—Allice—Getty—Oxford—1936. (See introduction by A. Froucher ; Pp. 1—19.)

'मूर्ति' है। उस 'मूर्ति' पर अनेक द्रव्य अर्पित किए जाते हैं। देवता के 'महात्म्य-कथन' के लिए अनेक कथाएँ कही जाती हैं। उसके स्वागत में नृत्य, उत्सवादि का आयोजन किया जाता है। भक्त देवता के वेषादि का अनुकरण करते हैं—उपासना-पद्धति में योग, ज्ञान व भक्ति—तीनों तत्त्व मिले रहते हैं। पाँचरात्र या भागवत धर्म की संहिताओं को देखिए—इन संहिताओं में शैव-दर्शन व वैष्णव-दर्शन मिले-जुले रूप में प्राप्त होता है। "अहिर्बुध्न्य"—जो ११ रुद्रों में से एक "रुद्र" हैं, भागवत धर्म का उपदेश इन संहिताओं में देते हैं। उपनिषदों के "मायावी बुद्ध" की जगह यहाँ "ब्रह्म या विष्णु या शिव" की "शक्तियाँ" सृष्टि करती हैं, फिर चाहे वह लक्ष्मी हों, उमा या काली हों या कोई अन्य नामधारिणी हों। ये "शक्तियाँ" या "देव-पत्नियाँ" देवता के साथ "चन्द्रचन्द्रिकावत्" एक मानी गई हैं। देवता की इच्छा से 'शक्ति' सृष्टि करती हैं। 'पाँचरात्र मत' में भगवान् ही आराध्य हैं (शक्ति सहित)। बिना भगवान् के अनुग्रह के 'जीवात्मा' भगवान् को नहीं पा सकता। भगवान् की "शरणागति" ही एक मात्र उपाय है। एक मात्र शरणागति को उपाय मानने के कारण इसे "एकायन सम्प्रदाय" भी कहते थे। इस मत का दूसरा नाम "सात्वत" या भागवत सम्प्रदाय भी है। यद्यपि 'पाँचरात्रसत्र' का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में (१३-६-१) में मिलता है, तथापि इस मत का विकास महाभारत काल अर्थात् 'बौद्ध-युग' में ही हुआ है, क्योंकि "वर्तमान रूप में प्राप्त" महाभारत के नारायणीय उपाख्यान व गीता से ही इस मत के आदि रूप पर प्रकाश पड़ता है, और वर्तमान रूप में प्राप्त महाभारत का समय ४०० ई० पूर्व से ४०० ई० तक है। इस मत के अनुसार हिंसा-प्रधान यज्ञ पाप है। पशु के स्थान पर यव-घृतादि की आहुति ही स्वीकृत है। पाँचरात्र मत में कृष्ण ही देवता हैं—संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि कृष्ण के "परिवार" के साथ उनकी उपासना की जाती है। इन परिवार-सदस्यों के आध्यात्मिक अर्थ किए गए हैं—संकर्षण ही "जवि" हैं, प्रद्युम्न—"मन" है, अनिरुद्ध "अहंकार" है। शंकराचार्य इस मत को शारीरिक भास्य (२।२।४२-४५) में "अवैदिक मत" कहते हैं। डॉ० एस० एन० दास गुप्त ने अपने दर्शन के इतिहास में बताया है कि पाँचरात्रों को वैदिक ब्राह्मण अपने साथ बिठाकर भोजन नहीं करने देते थे अर्थात् पाँचरात्र भक्त, ब्राह्मण होने पर भी "पंक्ति बाह्य" थे, जबकि महाभारत में पाँचरात्रों को "पंक्ति पावन" कहा गया है।

पाँचरात्र मत—पाँचरात्र मत में भगवान् के गुणों व शक्ति की उपासना की जाती है। भगवान् शक्तिमान् हैं और लक्ष्मी उनकी शक्ति है। दोनों में "अविनाभाव" माना जाता है। यह शक्ति "क्रिया शक्ति" व "भूत शक्ति" के रूप में पूजित है।

पाँचरात्र मत में "मूर्ति-पूजा" भी स्वीकृत है। योग व ज्ञान-मार्ग को भी स्वीकार किया गया है; परन्तु भक्ति को मुख्य माना गया है। शरणागति ६ प्रकार की मानी गई है—(१) आनुकूल्यस्य संकल्प—भगवान् के अनुकूल रहना; (२) प्रतिकूलस्य संकल्प—भगवान् के प्रतिकूल न रहने की प्रतिज्ञा; (३) रक्षिष्यतीति विश्वास—भगवान् रक्षा करेंगे, इसमें विश्वास; (४) गोप्तृत्ववरणं—भगवान् को रक्षक मानना;

(५) आत्मनिक्षेपः—आत्म-समर्पण ; और (६) कार्पण्यं—नितान्त दीनता ।[1]

शरणागति, भगवान् का अनुग्रह या कृपा, शक्तियों में विश्वास, योग, ज्ञान व भक्ति का समन्वय, मन्दिर—मूर्त्ति-पूजा—ये तत्त्व शैव-वैष्णव-उपासना में सामान्य हैं। शाक्तों में केवल एक यह विशेषता पाई जाती है कि वे शक्ति को शक्तिमान् से अधिक महत्त्व देते हैं तथा पंचमकार सेवी हैं। अन्य कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। फिर शाक्तों व शैवों में दक्षिण-पंथी शैव-शाक्त हैं—उनमें मन्दिर-मूर्त्ति-पूजा, ज्ञान-योग-भक्ति का समन्वय तथा भगवान् या देवी की कृपा में विश्वास आदि तत्त्व सामान्य हैं।

वैष्णव धर्म तक आते-आते उपेन्द्र विष्णु भी इन्द्रादि देवताओं में सर्वोपरि हो गये, और मूर्त्ति-पूजा का इस काल में व्यापक प्रचार हुआ। इस काल तक आते-आते आदित्य विष्णु, कृष्ण व राम के रूपों में, तथा 'रुद्र शिव' ही—भारतीय धर्म-साधना पर छा जाते हैं—यज्ञ 'होम' के रूप में ही रह जाता है। बौद्ध प्रचार के कारण हिंसा की जगह अहिंसा प्रधान हो जाती है। इस प्रकार धार्मिक साधना का जो रूप पुराणों में मिलता है, उसमें शिव विष्णु व देवी ही हिन्दू धर्म का आधार हो जाते हैं। प्राचीन यज्ञ-याग, ऋषि मुनि, "अतीत गौरव" के रूप में बार-बार स्मरण किए जाते हैं परन्तु "इतिहास" बन जाते हैं, धर्म साधना पर वैष्णव-शैव व शक्ति सम्प्रदायों का प्रभाव बढ़ जाता है।

भागवतों द्वारा विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश तथा सूर्य—इन पाँच देवताओं की पूजा का प्रचार ४०० ई० पूर्व के बाद विशेष रूप से हुआ है। पुराणों में जहाँ अनेक अनार्य देवी-देवताओं की स्वीकृति है, वहाँ इन पाँच देवताओं का महत्त्व सर्वोपरि है। स्मार्त्त ब्राह्मणों ने इस 'पंचायतन पूजा' का प्रचार सबसे अधिक किया है, इसके समानान्तर शैवों ने शिव के अनेक रूप 'लकुलीश शिव', 'लिंगेश्वर' आदि का तथा शाक्तों ने अनेक देवियों की पूजा का प्रचार किया।

वैष्णवों में महाभारत के वासुदेव या सात्वत सम्प्रदाय ने कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर, उनकी पूजा का प्रचार किया। कृष्ण के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। कुछ कृष्ण को छांदोग्य उपनिषद् के ऋषि 'घोर आँगिरस' का शिष्य मानते हैं और "देवकी-पुत्र कृष्ण" से उन्हें भिन्न मानते हैं। कुछ गोपियों के 'गोपाल कृष्ण' को महाभारत के कृष्ण से भिन्न मानते हैं, क्योंकि महाभारत में कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का वर्णन नहीं मिलता, 'हरिवंश पुराण' को परवर्ती माना जाता है।

पतंजलि कृष्ण व कंस के युद्ध सम्बन्धी एक नाटक (Painted Show) का उल्लेख करता है। पाणिनि को भी महाभारत के कृष्ण वासुदेव के सम्बन्ध में कुछ

---

१. अहिर्बुध्न्यसंहिता : ३७—२८ एवम् ५२—१५-२५।

२. मूर्ति-पूजा का प्रचार कब हुआ इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इस लेख के लेखक का मत है कि भक्ति-क्षेत्र में मूर्ति-पूजा अनार्यों से आई। पाश्चात्य विद्वान् डॉ० फर्कुंअर और डा० कारपेंटर (Indian Antiquary) ने भी मूर्ति-पूजा को शूद्रों व द्रविड़ों से ली गई कहा है, परन्तु डॉ० पी० वी० काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना करते हुए यह लिखा है कि वैदिक युग में मूर्त्ति-पूजा का प्रचार था। —सम्पादक

तथ्य ज्ञात थे। बेसनगर के स्तम्भ से पता चलता है कि 'हेलीडोरस' नामक ग्रीक वैष्णव था। गुप्त-युग में "वाराह" का उल्लेख मिलता है।

'विष्णु-सम्प्रदाय' के सम्बन्ध में इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि ईसा पूर्व की शताब्दियों में ही, बौद्ध धर्म के समानान्तर, इस मत का प्रचार हो चुका था, और पुराण इस धर्म के प्रचार द्वारा विदेशियों को भी 'ब्राह्मण धर्म' में दीक्षित कर रहे थे।

दशावतार—पुराणों" में विष्णु के 'दशावतार' के सम्बन्ध में भिन्नता मिलती है, इससे भी विकास का पता चलता है। शान्ति पर्व में दशावतारों में 'बुद्ध' की जगह 'हंस' का उल्लेख है। मत्स्य पुराण में 'बुद्ध' को अवतार माना गया है, यद्यपि दशावतारों की सूची अन्यों से कुछ भिन्न है। "वृद्धहारीत" स्मृति में 'बुद्ध' की जगह 'हयग्रीव' का उल्लेख है। साफ कहा गया है कि बुद्ध की पूजा मत करो। रामायण (वाल्मीकि-अयोध्याकांड—१०६-३४) में कहा गया है कि बुद्ध "नास्तिक" व "चोर" थे। भागवत पुराण में अवतारों की तीन सूचियाँ हैं, एक सूची में २२ अवतार हैं, जिसमें बुद्ध, व्यास, कल्कि, बलराम भी शामिल हैं, अन्य में कपिल, दत्तात्रेय स्वीकृत हैं। 'ब्रह्मपुराण' में "बुद्ध-पूजा" पर विशेष बल दिया गया है। इसमें कहा गया है कि शाक्य मुनि के अनुगामी बौद्धों को दान देना चाहिए।[1] 'कृत्यरत्नाकर' में कहा गया है कि वाराह पुराण के अनुसार "बुद्ध द्वादशी" को व्रत रखना चाहिए।

इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि ४०० ई० पूर्व से लेकर गुप्तकाल तक, जिसमें अधिकतर पुराण लिखे गए 'वैष्णव धर्म' का प्रचार हुआ। इस काल में बौद्ध-धर्म के प्रति आर्य कटुता भी कम हुई। इससे इसी अवधि में प्रचलित महायान धर्म से 'प्रभाव-ग्रहण' में सुविधा हुई। यह स्थिति उत्तरी भारत की थी, यद्यपि कुछ लोग मानते हैं कि अधिकतर पुराण दक्षिण में लिखे गए।

वैष्णव धर्म और महायान सम्प्रदाय—दक्षिण भक्ति के उदय का केन्द्र था। रामानुजाचार्य दक्षिण से ही उत्तर में आये थे। आचार्य वल्लभ की जन्मभूमि भी आंध्र दक्षिण में ही है, जहाँ अशोक के राज्य-काल में ही बौद्ध धर्म का प्रचार हो चुका था। अशोक के बाद २२५ ई० पूर्व से २२५ ई० तक आंध्र पर सातवाहन राजाओं का शासन रहा। इस युग में अश्वघोष, नागार्जुन, असंग, वसुबंधु, आर्यदेव आदि महायानियों के प्रयत्न से बोधिसत्वों की मूर्त्ति-पूजा का प्रचार हुआ। सुखावती सम्प्रदाय ने बुद्ध के नाम-जप, मूर्त्ति-पूजा आदि द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति सम्भव बताई। अनेक देवी-देवताओं की पूजा—वैष्णव-शैव-देवी-देवताओं की पूजा की ही तरह चल पड़ी। इस महायान पूजा-पद्धति का प्रभाव सातवाहन शासन के बाद के ब्राह्मण धर्म पर बहुत अधिक पड़ा है।

दक्षिण देश की सभी प्रारम्भिक संस्कृति बौद्ध-प्रेरणा से एक विशेष रूप को प्राप्त हुई, जिससे सातवाहन वंश के बाद की ब्राह्मण-संस्कृति विकसित

---

१. काणे—जिल्द वही; पृष्ठ ७२१।

हुई। अतएव "भक्ति-सम्प्रदाय" जो वैदिक यज्ञयाग, जैन वैराग्यवाद तथा बौद्धों की चारित्र्यक कठोरता (Moralism) से दूर था, वह महायान धर्म के रूप में बौद्ध मत में भी उदित हुआ और वैष्णव मत में भी। इन्होंने एक दूसरे को प्रभावित भी किया।[1]

जिस तरह पौराणिक देवी-देवताओं के विचित्र वेष, वाहन आदि हैं, उसी तरह बौद्ध देवी-देवताओं के भी मिलते हैं। आन्ध्र में मारीची देवी के ३ मुख हैं, ६ भुजाएँ हैं; वह धनुष-बाण धारण करती है। उसके पैरों में दो ध्यानी बुद्ध आसीन हैं। यह देवी "अमिताभ" नामक ध्यानी बुद्ध की "शक्ति" है। 'तारा' 'अवलोकितेश्वर' की शक्ति है। इसकी आन्ध्र में आज भी पूजा होती है। बौद्ध देवता रक्त-पिपासु हैं, भयंकर हैं, (काली व रुद्र जैसे) उनमें चारित्र्यक दृढ़ता नहीं है। विस्तृत पूजा व आचार द्वारा इन देवी-देवताओं को प्रसन्न किया जाता है। महायान में ईश्वर को इतना दयापूर्ण बनाया गया कि गलती से भी 'बुद्ध' का नाम ले लेने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। साधना के इस सरलीकरण का जब प्रचार हुआ तो उसमें दोष भी आगए और बौद्ध मठ व मंदिर भ्रष्टाचार के अड्डे बन गए। और भी ऐसे अनेक ऐतिहासिक कारण उपस्थित हो गये जिससे उसका पतन अवश्यम्भावी हो गया और उसके स्थान पर वैष्णव धर्म, जो महायान बौद्ध धर्म की अच्छाइयों को भी सम्मिलित करके खड़ा हुआ था, लोकप्रियता में शैव धर्म से भी आगे बढ़ गया, यद्यपि वैष्णव और शैव दोनों ही धर्मों के विकास की आधार-भूमि एक ही थी।

शाक्त प्रभाव—ईसवी छठी शताब्दी के पश्चात् सम्पूर्ण भारत में 'शाक्त प्रभाव' बढ़ता गया। प्रत्येक देव के साथ एक-एक 'शक्ति' की कल्पना यद्यपि हम देख चुके हैं कि वह पुरानी है, तथापि पौराणिक युग में इसका विशेष प्रचार हुआ। महायान-धर्म के उत्तरवर्ती रूप—वज्रयान व सहजयान में 'शक्ति-साधना' शुरू हुई। यह मान लिया गया कि जिस "राग" से बन्धन होता है, उसी 'राग' से 'मुक्ति' होनी चाहिए। गौतम बुद्ध का वह रूप आदर्श माना गया, जब वह कपिलवस्तु के राज-भवन में गोपा व अन्य सुन्दरियों के साथ 'विहार' करते थे, नृत्य, उत्सव में भाग लेते थे। उधर 'शाक्तों' ने 'लता-साधना' पर बल दिया—योनि-पूजा प्रस्तुत की, पंचमकार का प्रभाव बढ़ा। शैवागमों ने पौराणिक युग में ही, छठी शताब्दी के बाद से "शक्ति-साधना" को ही स्वीकार किया, जिसका सैद्धान्तिक रूप काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा-वादियों ने प्रस्तुत किया। स्वयं शंकराचार्य को दक्षिण-पंथी शाक्त' बताया जाता है। "वैष्णव" इस शाक्त साधना से अलग रहे तथापि प्रकारान्तर से उन पर भी प्रभाव पड़ा। ईसा की ७, ८, ९, १०, ११,—इन पांच शताब्दियों में भारतीय धर्म-साधना को "शाक्त-साधना" कहा जा सकता है। दक्षिण में इसका विशेष प्रचार हुआ।

---

1. "All the earlier culture of the Deccan, came to a definite shape under Buddhist stimulus out of which emerged the new Brahmanical culture of the Post-Satvahan period."
—*Buddhist Remains in Andhra : K. R. Subramaniam, Madras; 1932.*

भक्ति का प्रचार—यह स्मरणीय है शैव व वैष्णव आड़वारों ने तमिल देश में 'भाव-प्रधान-भक्ति' का प्रचार इन्हीं शताब्दियों में किया था, इसमें भाव-प्रधान था, क्रिया नहीं। क्रिया में 'मूर्त्ति-पूजा' स्वीकृत थी, परन्तु 'शाक्ताचार' वर्जित था। आड़वारों की परम्परा को यमुनाचार्य व रामानुज ने शास्त्रीय आधार दिया और शंकराचार्य के 'संथासवाद' का खण्डन किया। उधर बंगाल में जयदेव, व मिथिला में विद्यापति ने "सहजिया बौद्धों" के अनुकरण पर—कृष्ण व उनकी शक्ति 'राधा' के प्रेम व विलास का वर्णन किया और इधर रामानुज ने 'राम-सम्प्रदाय' का उत्तर भारत में प्रचार किया। निम्बार्क, चैतन्य व वल्लभ ने वैष्णव-भक्ति का दिगन्तव्यापी शंखनाद किया परन्तु ; संस्कृति का केन्द्र इस बार न दक्षिण बना न काशी। अबकी बार वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार ब्रजभूमि से हुआ और श्रीमद्भागवत इस प्रचार का मुख्य माध्यम बना।

गोस्वामी हरिराय जी के दोहे—

ब्रज-महिमा

(१)

श्री ब्रज, ब्रजरज, ब्रजवधू, ब्रज के जन समुदाय।
ब्रज-कानन, ब्रज-गिरन कों, बंदों सदा सत-भाय ॥

(२)

ब्रजबासी बल्लभ सदा, मेरे जीवन-प्रान।
तिनकों निमिष न बिसरिहों, नन्दराय की आन ॥

(३)

ब्रज तजि अनत न जाइहों, मेरे तौ यह टेक।
भूतल भार उतारिहों, धरि हों रूप अनेक ॥

(४)

ब्रज, वृन्दावन, गिर, नदी, पसु-पंछी सब अंग।
इनसों कहा दुरावनों, ये सब मेरो अंग ॥

: ५ :

व्रजक्षेत्र और श्री कृष्ण-भक्ति

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', विश्वविद्यालय, अलीगढ़

जैसा कि पूर्व अध्याय में कहा गया है १६वीं शताब्दी में भक्ति के प्रसार का मुख्य केन्द्र व्रजभूमि थी, जहाँ से सगुण कृष्ण-भक्ति की धारा सर्वत्र प्रवाहित हुई। अतः, हम इस सम्बन्ध में आगे चर्चा करने से पहले व्रजभूमि का वर्णन करना उचित समझते हैं।

व्रज शब्द के अर्थ का विकास—वैदिक साहित्य से लेकर आज तक 'व्रज' शब्द अपने अर्थ का विकास करता हुआ भी अपने आत्म-गत रूप को अक्षुण्ण रूप में सुरक्षित किये हुए है। संस्कृत भाषा की 'व्रज्' धातु (=जाना) से 'व्रज'[१] शब्द का निर्माण हुआ है। इसे ही परिनिष्ठित हिन्दी अथवा व्रजभाषा में 'ब्रज' रूप में लिखते हैं।

ऋग्वेद संहिता में 'व्रज' शब्द का प्रयोग 'पशुओं का बाड़ा', 'पशुओं के चरने का स्थान' अथवा 'पशुओं के समूह' के अर्थ में हुआ है। मधुच्छन्दा ऋषि इन्द्र देवता की स्तुति अनुष्टुप् छन्द में करते हुए कहते हैं—"हे इन्द्र ! तेरा दिया हुआ यश सर्वत्र फैलता है और सहज में प्राप्त भी होता है। तू हमारे लिए गौओं का बाड़ा खोल दे।"[२]

त्रित ऋषि त्रिष्टुप् छन्द में अग्नि देव की प्रार्थना करते हुए कहते हैं—"हे तरुण ! शीत से पीड़ित मानव तेरी सेवा में उसी प्रकार आते हैं जिस प्रकार कि गायें उष्ण गोशाला में आती हैं।"[३]

अमरकोश का रचना-काल ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग माना जाता है। अमरकोशकार ने भी 'व्रज' शब्द को गोष्ठ, मार्ग और समूह का पर्यायवाची ही माना है।[४]

हरिवंश पुराण में 'व्रज' शब्द का प्रयोग उस स्थान अर्थात् गाँव के अर्थ में हुआ है जो मथुरा के निकट था और नन्द का गोष्ठ कहलाता था। आजकल वह 'गोकुल' नाम से विख्यात है। जिस समय उस गोष्ठ के निवासी उसे खाली करके वृन्दावन चले गये थे, तब वह स्थान मन को क्षुब्ध बनाने वाला हो गया था। उस

१. "व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रजः।"
२. "गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः।"—ऋक्० १।१०।७
३. "यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ।" —ऋक्० १०।४।२
४. 'गोष्ठाध्वनिवहा व्रजाः।" —अमर० ३।३।३०

सुनसान गाँव पर उस समय कौए मँड़राने लगे थे ।[1]

श्रीमद् भागवतकार का 'ब्रज'—श्रीमद्भागवत के रचना-काल तक आत-आत ब्रज' शब्द का विकास-वृत्त अपने व्यास को कुछ बढ़ाता हुआ दृष्टिगत होता है । तब उसकी परिधि केवल 'गोष्ठ' अर्थ को ही नहीं छूती, अपितु गोकुल गाँव की क्षेत्रगत परिसीमाओं को भी स्पर्श करती है । श्रीवर भागवतकार ने 'ब्रज' शब्द का प्रयोग नन्द बाबा के निवास-ग्राम 'गोकुल' के अर्थ में तो किया ही है, किन्तु साथ ही साथ गोकुल के आस-पास तथा चारों ओर के खेतों सहित क्षेत्रफल के अर्थ में भी किया हुआ मालूम पड़ता है । आजकल लेखपाल (पटवारी) के मानचित्र की पारिभाषिक शब्दावली में 'गाँव' का जो अर्थ लिया जाता है, लगभग वैसा ही अर्थ भागवतकार के 'ब्रज' शब्द का लिया जा सकता है ।

यदि आज हिन्दी भाषा में यह कहा जाय कि 'हमने गोकुल में काफी बड़े हिरन देखे हैं' तो इसका लक्षणा से यही अर्थ है कि वक्ता ने काफी बड़े हिरनों को गोकुल के निकटवर्ती जंगल या खेतों में देखा है, क्योंकि हिरन सामान्यतः बस्ती में नहीं रहते । अतएव वक्ता की दृष्टि से 'गोकुल' का अर्थ केवल बस्ती विशेष ही नहीं लिया जाएगा, अपितु उस बस्ती तथा उसकी सीमा में समाविष्ट होने वाले जंगल और खेतों को भी सम्मिलित किया जाएगा । ठीक इसी दृष्टिकोण से भागवत में भी 'ब्रज' शब्द का उल्लेख हुआ है । श्री कृष्ण के वेणु-वादन के प्रभाव को बतलाते हुए भागवतकार ने लिखा है कि जब श्रीकृष्ण वेणु-वादन करते हैं तब ब्रज के झुण्ड के झुण्ड बैल, गायें, हरिण आदि उनके पास दौड़ आते हैं :—

"वृन्दशो व्रज वृषामृग गावो ।"—श्रीमद्भागवत, १०।३५।५

'घोष' अर्थात् अहीरों की छोटी बस्ती के अर्थ में भी 'ब्रज' शब्द का प्रयोग श्रीमद्भागवत में हुआ है जो सामान्यतः एक गाँव से छोटी मानी गई है—

"शिशूंश्चकार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ।"—श्रीमद्भागवत १०।६।२

उपर्युक्त श्लोकांश में आये हुए पुर, ग्राम और व्रज शब्दों से यह भान होता है कि रचयिता की दृष्टि में 'पुर' से छोटा 'ग्राम' और 'ग्राम' से छोटा 'ब्रज' है । इसीलिए अवरोह-क्रम से तीनों शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

ऋग्वेद से लेकर श्रीमद्भागवत तक के साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर हमें 'ब्रज' शब्द के अर्थगत रूप में एक निश्चित स्वरूप अवश्य मिलता है और परवर्ती साहित्यिक क्रम में उसी स्वरूप की छटा छिटकी हुई दृष्टिगोचर होती है । वैदिक साहित्य का 'ब्रज' (गोष्ठ) जिस प्रकार गाय-बैलों से परिपूर्ण है, ठीक उसी प्रकार पुराण साहित्य का 'ब्रज' भी गोप, गाय आदि से अलंकृत है, चाहे वह नन्द का गोकुल हो अथवा गोपियों का 'ब्रज'—

---

१. "क्षणेन तद् व्रज स्थान मीरणं समपद्यत ।
द्रव्यावयव निर्धूतं कीर्णवायसमण्डलैः ॥"
—हरिवंश पुराण माहात्म्यः अ० १०, श्लोक १६ : पृ० २८३

"गच्छ देवि व्रजं भद्रे ! गोप गोभिर लङ्कृतम् ।"— श्रीमद्भागवत १०।२।७

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भागवतकार की दृष्टि में मथुरा और व्रज बिलकुल पृथक्-पृथक् हैं—

"कस्मान् मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहात् व्रजं गतः ।"[1] श्रीमद्भागवत १०।१।६

× × ×

"व्रजे वसन् किमकरोन् मधुपुर्यां च केशवः ।"[2] श्रीमद्भागवत १०।१।१०

× × ×

"रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ।"[3] श्रीमद्भागवत १०।३६।१३

भागवतकार की दृष्टि में 'गोकुल' और 'व्रज' शब्द एक ही गाँव अर्थात् नन्द के गाँव के अर्थ में अपना स्वरूप प्रकट करते हैं —

"इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ।"[4] श्रीमद्भागवत १०।३८।२४

× × ×

"ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ।"[5] श्रीमद्भागवत १०।३८।२८

श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध के सातवें अध्याय के श्लोक २१ व २२ में एक ही गाँव (नन्द-यशोदा का निवास-ग्राम) के लिए 'गोकुल' और 'गोष्ठ' शब्द का उल्लेख हुआ है। अतएव हम यह भी कह सकते हैं कि भागवतकार की दृष्टि में 'गोष्ठ', 'गोकुल', 'व्रज' आदि शब्द एक ही स्थान अर्थात् एक मुख्य बस्ती के अर्थ-द्योतक हैं। गायों के कुल (=समूह) से परिपूर्ण होने के कारण ही नन्द का गाँव 'व्रज' संज्ञा का अधिकारी बना है —

"अनुगीयमानो न्यविशद व्रजं गोकुलमण्डितम्" श्रीमद्भागवत १०।१८।१

व्रज का प्रादेशिक रूप—इस प्रकार 'जनपद' या देश के अर्थ में 'व्रज' शब्द का प्रयोग हमें प्राचीन संस्कृत-साहित्य में नहीं मिला। हिन्दी-साहित्य में मथुरा के आस-पास के प्रदेश के लिए 'व्रज' शब्द का प्रयोग मिलता है। चौरासी वार्ता, सूरदास की वार्ता, प्रसंग में 'व्रज' शब्द प्रदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

"सो एक श्री आचार्यजी महाप्रभू अडेल ते व्रज कों पधारे ।"[6]

आचार्य वल्लभ आदि कृष्ण-भक्त आचार्यों एवं अष्टछापी कवियों के प्रभाव से आगे चलकर हिन्दी-साहित्य में 'व्रज' शब्द भाषा के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा।

---

१. भगवान् श्री कृष्ण पिता के घर से ब्रज को क्यों गये ?

२. श्री कृष्ण ने ब्रज में और मथुरा में रहते हुए क्या-क्या किया ?

३. गोपियों ने सुना कि बलराम और श्री कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए अक्रूर जी ब्रज में आये हैं।

४. श्री शुकदेव जी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित ! श्वफल्कसुत अक्रूर मार्ग में इसी प्रकार विचार करते हुए रथ द्वारा गोकुल पहुँच गये और सूर्य अस्ताचल पर चले गये।

५. अक्रूरजी ने ब्रज में पहुँच कर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाइयों को गाय दुहने के स्थान में विराजमान देखा।

६. देखिए डा० धीरेन्द्र वर्मा-कृत "ब्रजभाषा-व्याकरण"; प्रकाशक : रामनारायण लाल, इलाहाबाद; सन् १९५४; पृ० १०।

डा० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि भिखारीदास-कृत 'काव्यनिर्णय' (भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १८९९ ई०, अ० १, छन्द १४) में कदाचित् 'ब्रजभाषा' शब्द पहले-पहल आया है।" इसलिए यह कहा जा सकता है कि विक्रम की १८वीं शती के अन्तिम समय में 'व्रज' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में अवश्य होने लगा होगा, क्योंकि 'काव्य-निर्णय' का रचना-काल सं० १८०३ वि० माना जाता है। कविवर भिखारीदास लिखते हैं—

"ब्रजभाषा हेतु ब्रजबास ही न अनुमानो।"—काव्यनिर्णय अ० १, छं० १६

आज 'व्रज' शब्द का प्रचलित अर्थ न गोष्ठ है और न केवल गोकुल ग्राम, अपितु यह शब्द अब 'ब्रज-प्रदेश' और 'ब्रजभाषा' के अर्थों में ही प्रयुक्त होता है।

सर विलियम जोन्स को इण्डिया आफिस में लायब्रेरी से प्राप्त मिर्जा खाँ इब्न-फखरुद्दीन मुहम्मद रचित फारसी ग्रंथ 'तुहफतुल हिन्द' (सन् १६७६ ई०) में 'व्रज' को मथुरा नगर के केन्द्र के चारों ओर ४ कोस के घेरे में माना गया है। उक्त ग्रंथ के अंग्रेजी अनुवादक श्री एम० जियाउद्दीन ने अपने अंग्रेजी रूपान्तर में प्राचीन प्रमाणों के आधार पर पाद टिप्पणियों में व्रज-मण्डल का घेरा ३ फरसख अर्द्धव्यास का बताया है; जब कि १ फरसख की दूरी की नाप ३½ मील के बराबर मानी गई है।[1]

'मथुरा' मेमोयर में ग्राउज महोदय ने नारायण भट्ट-कृत एक 'व्रज-भक्ति-विलास'[2] नामक संस्कृत ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए 'व्रज' को प्रदेश के रूप में सिद्ध किया है। ग्राउज महोदय के कथनानुसार 'व्रज-भक्ति विलास' में 'ब्रज-मंडल' का विस्तार इस प्रकार है—

"पूर्वं हास्यवनं[3] नीय, पाश्चिमस्योपहारिकं।
दक्षिणे जह्नु संज्ञाकं, भुवनाख्यं तथोत्तरे॥"

इस श्लोक के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ग्राउज महोदय ने लिखा है कि पूर्व का हास्यवन अलीगढ़ जिले का बरहद वन है। पश्चिम का उपहार वन गुड़गाँव जिले में सोन नदी के किनारे पर बसा हुआ है। दक्षिण का जह्नु नाम का वन सूरसेन का गाँव है जो बटेश्वर के निकट है और उत्तर का भुवनवन शेरगढ़ के निकट है जो भूषणवन भी कहलाता है। इन्हीं सीमा-स्थानों से सम्बन्धित 'ब्रज-प्रदेश' के विस्तार के विषय में यह एक दोहा बहुत प्रचलित है—

"इत बरहद* उत सोनहद*, उत सूरसेन को गाँव*।
ब्रज चौरासी कोस में, मथुरा मंडल माँह॥"[4]

---

१. देखिए "ए ग्रामर आफ दि ब्रजभाखा।" विश्वभारती शीप कलकत्ता: सन् १९३५; पृष्ठ ३५।

२. यह ग्रंथ मथुरा से बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर वालों ने प्रकाशित कर दिया है।

—सम्पादक

३. अलीगढ़ जिले की तहसील सिकंदराराऊ का 'हसायन' गाँव।

४. डा० दीनदयालु गुप्त: 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय', मा० स० प्रयाग, सं० २००४ वि०, पृ० २, ३।

*बरहद=अलीगढ़ जिले का एक गाँव। सोनहद=गुड़गाँव की सोन नदी की हद, 'सूरसेन को गाँव'=यमुना के किनारे का बटेश्वर स्थान।

आज कृष्ण-भक्तों द्वारा जो चौरासी कोस की ब्रज-यात्रा की जाती है उसमें ब्रज क्षेत्र के १२ वन और २४ उपवन आते हैं। इन बारह वनों की रज मस्तक पर लगाते हुए जो यात्रा की जाती है, वह ८४ कोस के लगभग ही है—वर्तमान समय में भी ब्रज के १२ वन और २४ उपवन प्रसिद्ध हैं। पुराणों में इन वनों व उपवनों के विस्तृत वर्णन हुए हैं, जिनकी चर्चा आगे के अध्यायों में की जाएगी।

विशुद्ध ब्रजभाषा की दृष्टि से ब्रजभाषा का प्रमुख क्षेत्र मथुरा, आगरा, धौलपुर और अलीगढ़ जिला है। सामान्यतया ब्रजभाषा उत्तर में बुलन्दशहर और बदायूँ जिलों तक ; दक्षिण में करौली, धौलपुर और ग्वालियर तक; पूर्व में फर्रुखाबाद तक और पश्चिम में अलवर राज्य तक बोली जाती है। अष्टछाप के कवियों के प्रभाव के कारण ब्रजभाषी क्षेत्र आज पूर्णतया कृष्ण-भक्ति का क्षेत्र है। ब्रज-मण्डल का तो कण-कण कृष्ण का कीर्तन करता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

सगुण ब्रह्मोपासना—सम्पूर्ण भारतवर्ष में शिव, शक्ति, राम और कृष्ण की भक्ति ही प्रमुख रूप से प्रचलित है। सगुण ब्रह्मोपासना के अन्तर्गत पंचोपासना में भी ईश्वर को निम्नांकित पाँच रूपों में ही माना गया है—(१) शिव; (२) शक्ति (३) सूर्य; (४) गणेश; और (५) विष्णु। विष्णु की उपासना पर आधारित वैष्णव भक्ति ही राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति के रूप में विभक्त होकर विकसित हुई।

ईश्वर में आसक्ति या अनुरक्ति का नाम ही 'भक्ति' है। वैदिक काल से ही भारत में धर्म के साधन-क्षेत्र में कर्म, ज्ञान तथा उपासना का प्राधान्य रहा है। निर्गुण ब्रह्मोपासक[1] भक्तों ने जिस 'जप' की लीला और महिमा गायी है, ब्रह्मा आदि उसी 'जप' का आश्रय लेते हैं—

**"सर्ववेद सारभूता, गायत्र्यास्तु समर्चना।
ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च ॥"**

—देवी भागवत, ११।१६।१५

नवधा-भक्ति का 'नाम-स्मरण' एक प्रकार से 'जप' का पर्यायवाची ही तो है। निर्गुण ब्रह्मोपासकों के 'ध्यान' और 'जप' एक प्रकार से सगुण भक्तों के 'कीर्तन' और 'स्मरण' ही हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् के वर्णनों के आधार पर कहा जा सकता है कि विष्णु और शिव को भक्तिवाद का आराध्य देव माना जाता था।

वैदिक काल के उपरान्त रचे जाने वाले साहित्य में दो ग्रंथ परम प्रसिद्ध और प्रामाणिक हैं—एक, पाणिनि-कृत 'अष्टाध्यायी' और दूसरा बौद्ध ग्रंथ 'दीघ निकाय'। 'दीर्घ निकाय' में विष्णु और शिव का उल्लेख हुआ है। मैक्समूलर ने पाणिनि का समय ईसा से ३५० वर्ष पूर्व निश्चित किया है, किन्तु बहुत वाद-विवाद के उपरान्त डा० वासुदेव शरण अग्रवाल प्रबल प्रमाणों के साथ पाणिनि का समय ई० पू० ५०० वर्ष और ई० पू० ४०० वर्ष के बीच मानते हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'भक्ति' (४।३।९५),

---

१. 'पंचदशी में 'निर्गुण ब्रह्मतत्त्वोपासना' की सम्भावना स्वीकार की गई है। वेदान्त की 'ब्रह्म जिज्ञासा' वस्तुतः भक्ति ही है जिसे 'ब्रह्म विषयक अनुरक्ति' कहा गया है। आत्मरति वास्तव में अद्वैत भक्ति है जिसे बादरायण ने आत्मैकपरा भक्ति कहा है।

'भक्त' (४।४।६८), 'भक्ताख्य' (६।२।७१) आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है। इतना ही नहीं पाणिनि ने 'वासुदेवार्जुनाभ्याम् वुन्' (अष्टा० ४।३।६८) सूत्र से यह सिद्ध किया है कि वसुदेव की भक्ति करने वाले 'वासुदेवक' कहलाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि ईसा से ४०० वर्ष पूर्व भारतवर्ष में 'भक्तिवाद' का प्रादुर्भाव हो गया था। 'महाभारत' शान्तिपर्व में नारायणी धर्म का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। वस्तुतः अर्जुन और वासुदेव नाम नर-नारायण के ही नामान्तर हैं।[1]

ब्रज-भक्ति के आराध्यदेव 'कृष्ण' हैं। वे ही विष्णु हैं और ब्रह्म भी। अतः 'कृष्ण-भक्ति' का दूसरा नाम विष्णु-भक्ति या वैष्णव-भक्ति भी है। एक प्रकार से वैष्णव-भक्ति की महिमा मूलतः कृष्ण-भक्ति की ही महिमा है।

वैदिक साहित्य में विष्णु और रुद्र देवताओं का वर्णन मिलता है। वैदिक काल के विष्णु की कल्पना ही वामनावतार की कल्पना की जननी है। पुराणों में 'हरि' अर्थात् 'विष्णु' के लिए 'उरुक्रम' शब्द का प्रयोग हुआ है क्योंकि हमारे वैदिक साहित्य में ऋषियों ने विष्णु के लिए 'उरुक्रम' का प्रयोग किया था—

"शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवतु अर्यमा।
शं नो इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुः उरुक्रमः॥"

ऋग्वेद में 'रुद्र' मध्यम श्रेणी के देवता हैं जो विनाशकारी शक्तियों (विद्युत् आदि) के रूप में प्रकट होते हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता में एक पुरुष देवता की मूर्ति मिली है जो 'शिव' से मिलती है। जब सिन्धु घाटी के लोगों का वैदिक आर्यों के साथ सम्मिश्रण हुआ तब उस पुरुष देवता का वैदिक रुद्र के साथ आत्म-सात् हो गया। वैदिक साहित्य में 'अम्बिका' रुद्र की भगिनि है। किन्तु सिन्धु घाटी के पुरुष देवता के साथ एक देवी की उपासना भी प्रचलित थी। वैदिक रुद्र के साथ मिलकर वह देवी फिर रुद्र-पत्नी के रूप में पूजित हुई। फिर वैदिक काल के उपरान्त वह 'शक्ति' के रूप में आई। इसकी उपासना से ही भारतवर्ष में शक्ति अथवा तांत्रिक मत का सूत्रपात हुआ।

वैदिक साहित्य में जिस रुद्र को विनाशकारी देवता बताया गया है, उसे ही श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'शिव' नाम दिया है और उसे कल्याणकारी कहा गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् से प्रकट होता है कि जिस समय उपनिषदों के दार्शनिक सिद्धान्तों का निर्माण हो रहा था, उसी समय भक्तिवाद की धारा भी प्रवाहित हुई थी। इस भक्तिवाद ने ही सिन्धु घाटी की धार्मिक परम्परा के प्रभाव से देवालयों में पूजार्चन की प्रथा चलाई। शनैः शनैः उत्तरी और दक्षिणी भारत में शिव की पूजा का प्रचार हुआ। शैवों और शिवालयों की संख्या आशातीत रूप में वृद्धि को प्राप्त हुई। संस्कृत-साहित्य में महाकवि बाण तक हमें शिव-मन्दिरों का ही वर्णन अधिक मिलता है। कालिदास ने अपने 'मेघदूत' में उज्जयिनी के शिव-मन्दिर[2] का वर्णन किया ही है।

---

१. 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष'; लेखक—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल; प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, बनारस; सं० २०१२; पृ० ३५३।

२ "अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले।
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानु।"— पूर्वमेघ, श्लोक ३६

काश्मीर तो शिवोपासक पंडितों और कवियों का प्रसिद्ध प्रान्त ही रहा है। शक्ति की भक्ति का प्रवाह बंगाल में आज तक भी बह रहा है; किन्तु इन शिव-शक्ति के भक्ति-क्षेत्रों में अब कृष्ण-भक्ति किस रूप में आसनारूढ़ पायी जाती है, इस पर भी हमें विचार-विवेचन करना है और वैष्णव-भक्ति के विकास पर भी एक विहंगम दृष्टि डालनी है।

श्री कृष्ण-भक्ति और व्रज-मण्डल—आज व्रज-क्षेत्र कृष्ण-भक्ति का तीर्थ स्थल और प्रमुख पीठ है। उत्तरी और दक्षिणी भारत के हजारों यात्री प्रति वर्ष व्रज-यात्रा करने, मन्दिरों में भगवान् कृष्ण के दर्शन करने और रास-लीला देखने आते हैं। इस भक्ति-भाव से विभोर होकर और व्रज-भूमि की छटा देखकर वे जब अपनी जन्म-भूमि को वापिस जाते हैं तब उसका वर्णन वे अपने परिवारियों को सुनाते हैं ताकि व्रज-छटा और व्रज-पति की क्रीड़ा-स्थलियों की गुणावली से उनके जन्मजन्मान्तर के पाप भी कट जायें। इस प्रकार काश्मीर से कुमारी अन्तरीप तक और नवद्वीप (नदिया) से द्वारका तक व्रज का वर्णन भारतवर्ष में सुनने को मिलता है। उत्तरी-भारत में यद्यपि संख्या तो शिव के मन्दिरों की ही अधिक पायी जाती है लेकिन व्रजेश्वर कृष्ण और व्रजेश्वरी राधा के मन्दिरों में जो जीवन-शोभा और आकर्षण पाया जाता है वह शिव-मन्दिरों में नहीं, क्योंकि महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए कृष्ण-भक्त कवियों ने भगवान् का जो अष्टयामिक जीवन चित्रित किया है, उसी प्रवाह के कारण राधा-कृष्ण के मन्दिरों में मूर्त्ति-पूजा विषयक कोई न कोई कार्यक्रम चलता ही रहता है। जैसे—प्रभाती से श्री कृष्ण जी का उठना, शृंगार करना, गोचारण, भोजन, शयन आदि। पुष्टि मार्ग के आचारानुसार श्री कृष्ण जी को भोग समर्पण की प्रथा है। उस भोग में अनेक प्रकार के व्यंजनों का रहना आवश्यक है। इस प्रकार कृष्ण-भक्ति की सेवा-भाव की प्रणाली में एक सरसता, मधुरता और तल्लीनता है।

निम्नांकित अठारह पुराणों पर एक दृष्टि डालने पर यह आभास मिलता है कि नाम भेद से विष्णु का वर्णन ही उनमें से अधिकांश में पाया जाता है—(१) ब्रह्म-पुराण, (२) पद्म पुराण, (३) विष्णु पुराण, (४) शिव पुराण, (५) भागवत-पुराण, (६) नारदीय पुराण, (७) मार्कण्डेय पुराण, (८) अग्नि पुराण, (९) भविष्य पुराण, (१०) ब्रह्मवैवर्त पुराण, (११) लिंग पुराण, (१२) वाराह पुराण, (१३) स्कन्द पुराण, (१४) वामन पुराण, (१५) कूर्म पुराण, (१६) मत्स्य पुराण, (१७) गरुड़ पुराण, और (१८) ब्रह्माण्ड पुराण। इन अठारह पुराणों में से विष्णु-पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और भागवत पुराण में विष्णु को सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला है। वेद—ब्राह्मण ग्रन्थों के साधारण देवता 'विष्णु' पुराण-साहित्य तक आते-आते शनैः शनैः अवतार के श्रेष्ठ पद पर आरूढ़ हो गये। ईसा के ४०० वर्ष पूर्व वैष्णव-धर्म का उद्भव हो गया था, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इसी का परिवर्द्धित रूप भागवत धर्म है। ईसा के कुछ वर्ष बाद आभीरों ने भागवत धर्म में श्री कृष्ण की भावना सम्मिलित करदी। ईसा की आठवीं शताब्दी में यह धर्म शंकराचार्य के अद्वैतवाद के सम्पर्क में आया। 'भागवत धर्म' भक्ति-प्रधान था और अद्वैतवाद

ज्ञान-प्रधान अतएव शंकराचार्य के मायावाद से इसे टक्कर लेनी पड़ी। इसी संघर्ष के फलस्वरूप भक्तिवाद की एक धारा ११वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य के श्री संप्रदाय के रूप में प्रादुर्भूत हुई। इससे पहले दक्षिणी भारत में आडवारों में भक्ति की धारा भागवत धर्म की दिव्य धरा पर ईसा की ७वीं शती से ९वीं शती तक प्रवाहित हो चुकी थी। तमिल गीतों के रूप में यह साहित्य आज भी मिलता है। ईसा की १०वीं शताब्दी में श्री नाथ मुनि ने दक्षिण भारत में भागवत धर्म का उत्थान किया। गुप्त-वंश के राजाओं ने तो वैष्णव भक्ति तथा भागवत धर्म का बहुत प्रचार किया था। उनके समाप्त होते ही छठी शताब्दी में वैष्णव-भक्ति की धारा उत्तरी भारत में दब गई और उसके स्थान पर शैव और बौद्ध धर्मों की प्रबलता हो गई। आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने अपने ज्ञानवाद का शंख फूंका और बौद्ध धर्म को भारत से निकाल बाहर किया। नीरस एवं अकर्मण्य बने हुए अद्वैतवादियों को सरस भक्ति का पाठ पढ़ाने के लिए चार आचार्य शंकराचार्य के विरोध में उठ खड़े हुए। उनके नाम इस प्रकार थे— (१) रामानुज (२) मध्व (३) निम्बार्क (४) विष्णु स्वामी। इनके उपरान्त वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने वैष्णव धर्म की कृष्ण-भक्ति का व्यापक प्रचार किया। प्रारम्भ में निम्बार्क ने विष्णु रूप में कृष्ण की भावना को अधिक प्रचारित किया और उसके साथ राधा के रूप का भी योग कर दिया। १३वीं शताब्दी में मध्वाचार्य ने द्वैतवाद का और भी अधिक प्रचार किया। सोलहवीं शती में वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग के अन्तर्गत कृष्ण-राधा का प्रेमात्मक निरूपण किया और बंगाल में चैतन्य महाप्रभु ने बालकृष्ण के मधुर रूप के साथ-साथ राधा का योग करके कृष्ण-भक्ति-मार्ग में प्रेम की धारा को अधिक प्रशस्त और वेगवती बनाया। दक्षिण भारत में नामदेव और तुकाराम ने विष्णु में 'विट्ठोवा' नाम की उद्भावना की। उक्त आचार्यों द्वारा विष्णु के रूप प्रमुखतः चार नामों से विख्यात हुए— (१) राम, (२) कृष्ण, (३) जगन्नाथ, और (४) विट्ठोवा।

इन उक्त चारों की भक्ति के केन्द्र भी भारत में परम प्रसिद्ध हुए। अयोध्या, चित्रकूट और नासिक को राम की भक्ति का केन्द्र माना गया। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, नाथद्वारा और द्वारका कृष्ण-भक्ति के केन्द्र बने। पुरी और बद्रीनाथ श्री जगन्नाथ जी की भक्ति के केन्द्र माने गये। शोलापुर और कांचीवरम् विट्ठोवा-भक्ति के केन्द्र-स्थान प्रसिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त वल्लभाचर्य और चैतन्य महाप्रभु के निवास तथा उपदेशों के प्रभाव से अड़ेल (इलाहाबाद के निकट का स्थान) और नवद्वीप (नदिया = बंगाल का एक स्थान) के आस-पास का क्षेत्र भी कृष्ण-भक्ति का क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। इतना ही नहीं, अष्टछाप के ब्रजभाषी कवियों (सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी और गोविन्द स्वामी) की कविताओं के प्रभाव से सारा उत्तरी भारत कृष्ण-भक्ति और 'ब्रज-भूमि-वैभव' का प्रेमी बन गया। हिन्दू तो क्या, मुसलमान तक भी ब्रज की रज मस्तक पर चढ़ाकर परम पद को प्राप्त हुए। विक्रम की सोलहवीं और सत्रहवीं शती का सारा ब्रजभाषा-साहित्य ब्रज और ब्रजेश, भगवान् कृष्ण की गुणावलियों से भर गया और ब्रजभूमि बाद में श्री कृष्ण-भक्ति के प्रधान केन्द्र के रूप में विकसित

हुई। महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके पुत्र गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने गोकुल और गोवर्द्धन को तथा महाप्रभु चैतन्य देव द्वारा ब्रजबास और ब्रजोद्वार के लिए भेजे गये रूप-सनातन गोस्वामी प्रभृति विरक्त भक्तों ने विशेष रूप से वृन्दावन तथा राधाकुण्ड को केन्द्र बना कर कृष्ण-भक्ति का मधुर प्रसाद सम्पूर्ण देश को वितरित किया। उधर महाप्रभु हित हरिवंश, स्वामी हरिदास जी तथा भक्ति क्षेत्र में नारदावतार कहे जाने वाले प्रसिद्ध और कर्मठ भक्त नारायण भट्ट जैसे अनेक भक्तों ने ब्रज भक्ति और श्री कृष्ण-भक्ति को बहुत अधिक बल दिया।

कवि जगतनंद कृत 'ब्रज-वस्तु-वर्णन' के कुछ अंश

ब्रज के प्रसिद्ध पर्वत

गोवर्द्धन, नँदगाँव में, अरु बरसाना, काम।
चरण-पहाड़ी, पाँच ये, 'जगतनंद' अभिराम॥

ब्रज के प्रमुख कूप

ब्रज में लख दस कूप हैं, सप्त-समुद्रहि जान।
नंद-कूप, अरु इंद्र-कूप, चन्द्र-कूप करि मान।
एक कूप भाँडीर को, करण-बेध कों कूप।
कृष्ण-कूप आनंदनिधि, बेनु-कप, सुखरूप॥
एक जु कुबजा कूप है, गोप-कूप लखि लेहु।
जगतनंद बरनन करत, ब्रज सों करौं सनेहु॥

ब्रज के रास-मंडल

वृन्दावन में पाँच हैं, क्रीडत ब्रज के ईस।
ब्रज में मंडल रास के, 'जगतनंद' तैंतीस॥
द्वै मंडल हैं कामबन, नन्दगाँव में एक।
दोइ करहला बीच हैं, दोइ दानगढ़ टेक॥
एक साँकरी खोर में, इक परवत में मान।
एक मानगढ़ देखिये, द्वै विलास-गढ़ जान॥
गहवर बन में एक है, अरु संकेत ही चारि।
एक पिसाये, जावबट दोइ लखौ उर धारि॥
एक कोकिला विपिन में, तीन जु ऊँचे गाँउ।
सिला खिसलनी एक है, इक गिरि टीले नाउँ॥
एक सुनहरा बीच है, कदम-खण्डि मधि एक।
इहै पुरातन जानिये, नूतन भये अनेक॥

: ६ :

भक्ति-क्षेत्र और व्रजभूमि

द्वारकादास परीख

सम्पादक, 'वल्लभीय सुधा', मथुरा ।

भक्ति और व्रज का सम्बन्ध—भक्ति का व्रज से अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है । अष्टछाप के कवियों ने तो यहाँ तक गाया है कि—

'भक्ति श्री गोकुल तें प्रकट भई'

श्री भागवत के माहात्म्य में कहा है कि भक्ति को नवयौवनत्व वृन्दावन में प्राप्त हुआ। इसलिए व्रज-भक्ति-रस की सिद्ध-पीठस्थली है । यही कारण है कि भक्तों की भावना के अनुसार 'व्रज' नित्य है और अनादि है । ठीक उसी प्रकार जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग अनादि हैं उसी प्रकार 'व्रज' भी अनादि माना गया है । इस पर आगे विचार किया जायगा ।

भक्ति का स्वरूप[1] और उसका क्षेत्र—'नारदपंचरात्र' आदि ग्रन्थों में भक्ति को सर्वतोऽधिक सुदृढ़ स्नेह रूप से कहा है।[2] वास्तव में भक्ति का स्वरूप प्राणी-मात्र के हृदय में रही हुई रति की वह कोमल वृत्ति है जिससे वह प्राणी नवों रसों का प्रतिक्षण अनुभव करता रहता है । यह कोमल वृत्ति लोक सम्बन्ध वाली रहती है तब तक वह लौकिक सुख-दुखों का अनुभव जीव को कराती है । जब वही वृत्ति भगवद् सम्बन्धिनी हो जाती है तब वह अलौकिक आत्मानुभूति रूप आनन्द का अनुभव कराती है । यह आनन्द चिरस्थायी और दिव्य होता है । उसमें आत्मा और परमात्मा का संयोग—मिलने का योग होता है । इसलिए यह भक्ति 'योग' स्वरूप कही गयी है ।

वास्तव में देखा जाय तो भक्ति का क्षेत्र अति विशाल है । उसमें काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सौहृदयता आदि अनेक भावों का अवलम्बन रहता है । किसी भी अवलम्बन को लेकर प्राणी हृदय की अपनी कोमल वृत्ति को ईश्वर से सम्बन्धित कर भक्ति-क्षेत्र में आ सकता है । इस क्षेत्र में न तो जातीयता है न वर्ण व आश्रम विशेष की आवश्यकता है । चाहे जीव नर हो, या नारी हो पशु-पक्षी हो या और भी कोई जाति हो वह उक्त अवलम्बनों में से किसी एक अवलम्बन द्वारा ईश्वर से अपना

---

१. भक्ति क्या है ? इसकी व्याख्या विविध भक्तों ने विभिन्न प्रकार से की है । इससे पहले अध्याय में डा० अम्बा प्रसाद 'सुमन' ने भी 'भक्ति' की व्याख्या की है और इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के मतों की चर्चा की है । यहाँ श्री परीखजी ने पौराणिक दृष्टि-कोण से भक्ति के स्वरूप का वर्णन किया है । —सम्पादक

२. "माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिक स्नेह''''''इति भक्ति"

भूला हुआ सम्बन्ध फिर जोड़कर भक्ति-क्षेत्र में आ सकता है। इसी प्रकार हूण, किरात, पुलिंद आदि जातियाँ एवं ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र आदि वर्ण तथाच ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ एवं सन्यस्त आदि आश्रम पालन करने वाले जीव भी भक्ति-क्षेत्र में आ सकते हैं। इस दृष्टि से भक्ति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत सिद्ध होता है।[1]

इस प्रकार संक्षिप्ततः भक्ति का स्वरूप और उसके क्षेत्र को जान लेने के पश्चात् अब हमें भक्ति क्षेत्र में ब्रज का क्या स्वरूप माना गया है इस पर विचार करना उचित होगा। तभी हम भक्ति और ब्रज के सम्बन्ध की वास्तविकता को भी जान सकेंगे।

वैदिक साहित्य में ब्रज का उल्लेख गायों के चरागाह के रूप में हुआ है। ऋग्वेद में हुए उल्लेख की चर्चा पहले हो चुकी है। पूर्व उल्लिखित विवरणों के अतिरिक्त भी ऋग्वेद में मन्त्र २, सू० ३८ ; मन्त्र ८, मन्त्र ५, सू० ३५ ; मन्त्र ४, मन्त्र १०, सू० ४ इत्यादि में भी 'ब्रज' शब्द का प्रयोग ढोरों के चरागाह या बाड़े अथवा पशु-समूह के अर्थों में हुआ है। स्थानाभाव से यहाँ उन मन्त्रों को नहीं दिया जा रहा है। अथर्व वेद में ३.२.५, ४.३८.७ तथा शांखायन आरण्यक में २, १६ में भी 'ब्रज' का उल्लेख मिलता है।

'संहिताओं' में भी इसी प्रकार के मन्त्र मिलते हैं। जैसे कि—

"ते ते धामान्युश्मसि गमध्यै गावो यत्र भूरि शृंगा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभाति भूरेः॥"
—तैत्तरीय संहिता १.३.६

यह मन्त्र ऋग्वेद के उक्त मन्त्र के अनुसार ही है। इसमें केवल 'ता वां वास्तू' के स्थान पर 'ते ते धामा' और वृष्णः के स्थान पर 'विष्णोः' कहा है। अर्थ वही है। इसमें भी भगवान् के धाम को, जहाँ गाय और पशु रहते हैं "परम पद गोकुल" कहा है।

इसी प्रकार तैत्तरीय संहिता के १.३.६ के अन्य मन्त्रों में भी उस धाम को जहाँ गायें निवास करती हैं "परम पद श्री गोकुल" कहा है।

इसी परम धाम को छांदोग्य उपनिषद् में 'ब्रह्मपुर' कहा गया है। जैसा कि—

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरी कं वेश्म

आगे चलकर इसी में कहा है कि—

"नास्य जरयैतज्जीर्यते न वधे नास्य हन्यते।
एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन् कामाः समाहिताः॥"

अर्थात् वह 'ब्रह्मपुर' वृद्धावस्था से जीर्ण नहीं होता है और न ही वध से उसका नाश होता है। यह 'ब्रह्मपुर' सत्य है, और उसमें भक्तों के सभी काम समाहित हैं।

इन उल्लेखों का तात्पर्य यह है कि गायों और ढोरों के निवास-स्थान रूप

---

१. "जाति-पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई॥"
—सम्पादक

गोलोक वा गोकुल 'व्रज-ब्रह्मपुर' है। वह ब्रज सदा अविनाशी और जरा आदि जीर्ण-शीर्ण धर्मों से रहित नित्य तथाच भक्तों की सभी कामनाओं से निहित है।

इन्हीं प्रमाणों के आधार पर भक्ति-क्षेत्र में इस 'ब्रज' को भगवान् श्री कृष्ण की नित्य लीला-स्थली और सदा षट्-ऋतु सम्पन्न नूतन माना है।[1] क्योंकि भक्तों की भावना के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण, उनकी लीलायें, और ब्रज-भूमि सभी नित्य हैं।

नित्य ब्रजभूमि—पौराणिक वर्णनों से जिनके उद्धरण यहाँ स्थानाभाव से नहीं दिये जा सके हैं यह प्रमाणित होता है कि भगवान् की ब्रजलीला, और ब्रजभूमि नित्य और दिव्य हैं। परब्रह्म श्री कृष्ण सृष्टि के आदि काल में ब्रह्मकल्प के पश्चात् पद्मकल्प के सारस्वत कल्प में अपने मूल 'ब्रह्मपुर' सह ब्रज में पूर्ण रूप से अवतीर्ण हुए। तब से यह ब्रज परिपूर्णता को प्राप्त हुआ है। अर्थात् ब्रज में भी नित्य-लीला की स्थिति हुई है। और जिस भक्त को यह नित्य-लीला का सुदृढ़ ज्ञान हो जाता है उसको भगवान् श्री कृष्ण के अनवतार दशा में भी इसी ब्रज में भगवान् की लीलाओं का दर्शन हुआ है और आज भी होता है। सूरदास, हरिवंश, हरिदास आदि महानुभावों के चरित्र इस बात के साक्षी रूप हैं।

बृहद् वामन पुराण में जहाँ तीर्थराज का प्रसंग है वहाँ ब्रज को भगवान् ने अपना घर कहा है। जब प्रयागराज ने भगवान् से कहा कि महाराज! आपने मुझे सब तीर्थों का राजा किया और पृथ्वी के सब तीर्थ मेरे पास आये किन्तु 'ब्रज' नहीं आया है। तब भगवान् ने कहा कि मैंने तुझे तीर्थों का राजा किया है मेरे घर का नहीं। 'ब्रज' मेरा घर है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रज भगवान् का निवास-स्थान—घर है। उसकी महत्ता अवर्णनीय है। इसीलिए भक्ति-क्षेत्र में ब्रज की नित्यता सिद्ध है। उसको गोकुल, ब्रह्मपुर, गोलोक व परमपद भी कहते हैं। यही कारण है कि हमारे पुराण ग्रन्थ ब्रज सम्बन्धी विवरणों से परिपूर्ण हैं, जिनका परिचय आगे दिया जा रहा है।

श्रीमद्भागवत में ब्रज का उल्लेख—भक्ति के इस महान् शास्त्र में समस्त ब्रज के दो प्रमुख विभाग माने हैं। एक बृहद्वन दूसरा वृन्दावन। उनके अन्तर्गत गोकुल, भाण्डीर वन, भद्रवन, मधुवन, तालवन, कुमोदवन आदि वनों का समावेश किया गया है। श्रीमद्भागवत में जिन स्थानों पर बृहद्वन और वृन्दावन का उल्लेख हुआ है वे ये हैं—

"कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृण वीरुधम्।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः॥ १०-५-२६

इस श्लोक में वसुदेव जी नन्दराय जी से कहते हैं कि तुम अभी जहाँ सुहृदों

---

१. "ललित ब्रजदेस गिरिराज राजें।
घोष सीमंतिनी संग गिरिधर धरण, करत नित्य-केलि तहाँ काम लाजें॥
त्रिविध पवन संचरे, सुखद झरनां झरे, अमित सौरभ तहाँ मधुप गाजें।
ललित तरु फूल फल, फलित खट-ऋतु सदा, 'चतुर्भुज दास' गिरिधर समाजें॥"
—चतुर्भुजदास

से आवृत्त होकर रहते हो वह बृहद्वन पशुओं का हितकारी, रोग-रहित, और बहुत जल, घास और लता-पता से युक्त है।

इस बृहद्वन को, जहाँ नन्दरायजी का निवास था, इसी अध्याय में 'व्रज' और 'गोकुल' की संज्ञा भी दी है। देखिये—

(१) "तत आरभ्य नंदस्य व्रजः सर्व समृद्धिवान्।"

× × ×

(२) "गोपाल गोकुल रक्षायां निरुप्य मथुरां गतः।"

प्रथम में 'शुकोक्ति रूप' से कहा गया है कि जब से भगवान् का आविर्भाव हुआ तब से नन्द का व्रज सर्व समृद्धिवान् हुआ।

दूसरे में नन्दरायजी कंस को कर देने के लिए मथुरा गये तब गोकुल की रक्षा के लिए गोपालों को रखा ऐसी 'शुकोक्ति' है। यहाँ उसी बृहद्वन 'व्रज' को गोकुल कहा है। इससे यह स्पष्ट है कि श्री नन्दराय जी का कृष्ण-जन्म के समय इस बृहद्वन में निवास था। यहीं पर भगवान् का जन्म, पूतना-वध, तृणावर्त-वध, शकटासुर-वध और अन्य बाल-लीलाएँ भी हुई हैं।

यह बृहद्वन श्री यमुना के पार, सामने उत्तर-पूर्व दिशा में आज भी महावन के नाम से विद्यमान है। आज 'महावन' एक कस्बा के रूप में है किन्तु उस समय नन्दघाट के सामने के भद्रवन से लेकर भाण्डीरवन, मा:टवन, बेलवन, लोहवन और महावन तथा श्री गोकुल तक व्याप्त था।

श्री मद्भागवत में दूसरा प्रमुख वन 'वृन्दावन' कहा है। जैसे कि—

"वनं वृन्दावनं नामं पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृण वीरुधम्॥" (१०-११-१७)

यमलार्जुन-भंजन के पश्चात् उपनन्द नाम का वृद्ध गोप नन्दराय जी से कह रहा है कि गोकुल में अनेक उत्पात होते हैं अतः अपने को बृहद्वन छोड़ कर दूसरे वन वृन्दावन में जाना चाहिए। वह वृन्दावन कैसा है उसी का श्लोक में वर्णन किया है।

"वृन्दावन नाम का वन पशुओं का हितकारी है। गोप, गोपी और गायों के सेवन करने योग्य है, और पवित्र पर्वत, घास और लताओं से युक्त नवीन वन है।" आगे इसी अध्याय के २५वें श्लोक[1] में इसी वन में यमुना के तटों का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है। अतः यह स्पष्ट है कि उस वृन्दावन में गोवर्द्धन, यमुना और अनेक नाना प्रकार के सुन्दर वन भी थे। यह वृन्दावन आज के प्रसिद्ध वृन्दावन से लेकर मधुवन तक की भूमि है। उस समय मधुवन में श्री यमुना का प्रवाह था। इसकी पुष्टि श्री भागवत के 'ध्रुवाख्यान' से होती है। इसी प्रकार आज के जमुनावता ग्राम से यह भी स्पष्ट होता है कि यमुना उस समय वहाँ पर थी। इसीलिए 'जमुनावता' नाम उस गाँव का पड़ा है। जहाँ-जहाँ पहले जमुना जी बहती थी वहाँ-वहाँ आज भी झीलें दिखाई देती हैं और कुआँ खोदने पर जमुना जी की रेती निकलती है। गिरिराज में आज भी सर्वत्र जहाँ-जहाँ कुआँ खोदा जाता है वहाँ-वहाँ जमुना जी की रेणुका

---

१. "वृन्दावन गोवर्द्धनं यमुना पुलिनानि च। वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीति राममाधवया नृत्य।"

निकलती है। इससे यह स्पष्ट है कि वृन्दावन में यमुना और गोवर्द्धन दोनों थे। अष्ट-छाप की वार्ता[1] और पुराणों के अनुसार उस समय सारस्वत कल्प में श्री यमुना जी की ब्रज में दो धाराएँ बहती थीं। एक चीरघाट से मथुरा होकर आगरा की ओर जाती थी; दूसरी नन्दग्राम, बरसाना, कामा और पूंछरी होती हुई जमुनावता जाती थी, यह धारा आगरा की ओर जो धारा बहती थी उसमें मिल जाती थी।

इसी प्रकार गोवर्द्धन भी उस समय चार योजन ऊँचा था; अतः दुपहरी बाद गोवर्द्धन की छाया मथुरा पर पड़ती थी। इस ऊँचाई के आधार पर गोवर्द्धन की चौड़ाई भी काफी होगी, यह माना जा सकता है। आज मथुरा में जमीन में से गोवर्द्धन की सैकड़ों छोटी-मोटी शिलाएँ नर्मदा बाई वाली धर्मशाला की खुदाई में निकली हैं। यदि गोवर्द्धन उस समय मधुवन तक फैला हो तो कोई असम्भव बात नहीं मानी जा सकती है। अस्तु, इस वृन्दावन के मधुवन, तालवन, कुमोदवन, कामवन आदि विभागों का उल्लेख भी श्रीमद्भागवत में मिलता है। इससे यह जाना जा सकता है कि उस समय ब्रज के दो मुख्य विभाग थे एक बृहद्वन दूसरा वृन्दावन।

अष्टछाप के संस्थापक श्री विट्ठलेश प्रभुचरण ने भी इन दो विभागों का उल्लेख अपनी 'यमुनाष्ट पदी' में किया है—

"वृंदावने चारु बृहद्वने, मन्मनोरथं पूरय सूरसूते।
दग्गोचरः कृष्णविहार एवं स्थिति स्त्वदीये तट एव भूयात्।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि मथुरा के पार सामने जो वन हैं वे सब बृहद्वन के अन्तर्गत हैं और मथुरा के इस पार के जो वन हैं वे सब वृन्दावन के अन्तर्गत माने गये हैं।

मत्स्य पुराण[2] में कहा कि शेषनाग के फणों में ठीक मध्य-स्थल पर कुमुद नामक फण विराजित है। उसके उपरि भाग में सकल स्थानों के फलस्वरूप चौरासी कोस परिमित ऊँचा स्थान है। यह श्री 'ब्रज-मण्डल' है। जो श्री कृष्ण के विहार के लिए है। स्वयं श्री कृष्ण द्वारा विरचित पच्चीस हजार तीर्थ उस 'ब्रज-मण्डल' में विद्यमान हैं।

भविष्य पुराण में कहा है कि यमुना के दक्षिण तट में मथुरा से लेकर ६२ वन हैं। यथा—(१) मथुरा, (२) राधाकुण्ड, (३) गढ़, (४) नन्दग्राम, (५) ललिताग्राम, (६) वृषभानपुरा, (७) गोवर्द्धन, (८) कामनावन, (९) जाववट, (१०) नारदवन, (११) संकेत, (१२) काम्यवन, (१३) कोकिलावन, (१४) तालवन, (१५) कुमुद-वन, (१६) छत्रवन, (१७) खदिरवन, (१८) भद्रवन, (१९) बहुलावन, (२०) मधु-वन, (२१) जह्नुवन, (२२) मेनकावन, (२३) कजलीवन, (२४) नन्दकूपवन, (२५) कुशवन, (२६) अप्सरावन, (२७) विह्वलवन, (२८) कदम्बवन, (२९) स्वर्ण-

---

१. 'कुम्भनदास की वार्ता' का 'भाव-प्रकाश'।
२. "ब्रज-मण्डल भूगोलं, शेषनाग फणां वरं।
कुमुदाख्यं महाश्रेष्ठं सर्वेषां मध्य संस्थितम्॥
तस्यो परिस्थितं लोकं सर्वं स्थान महाफलम्।"

राधाकुण्ड
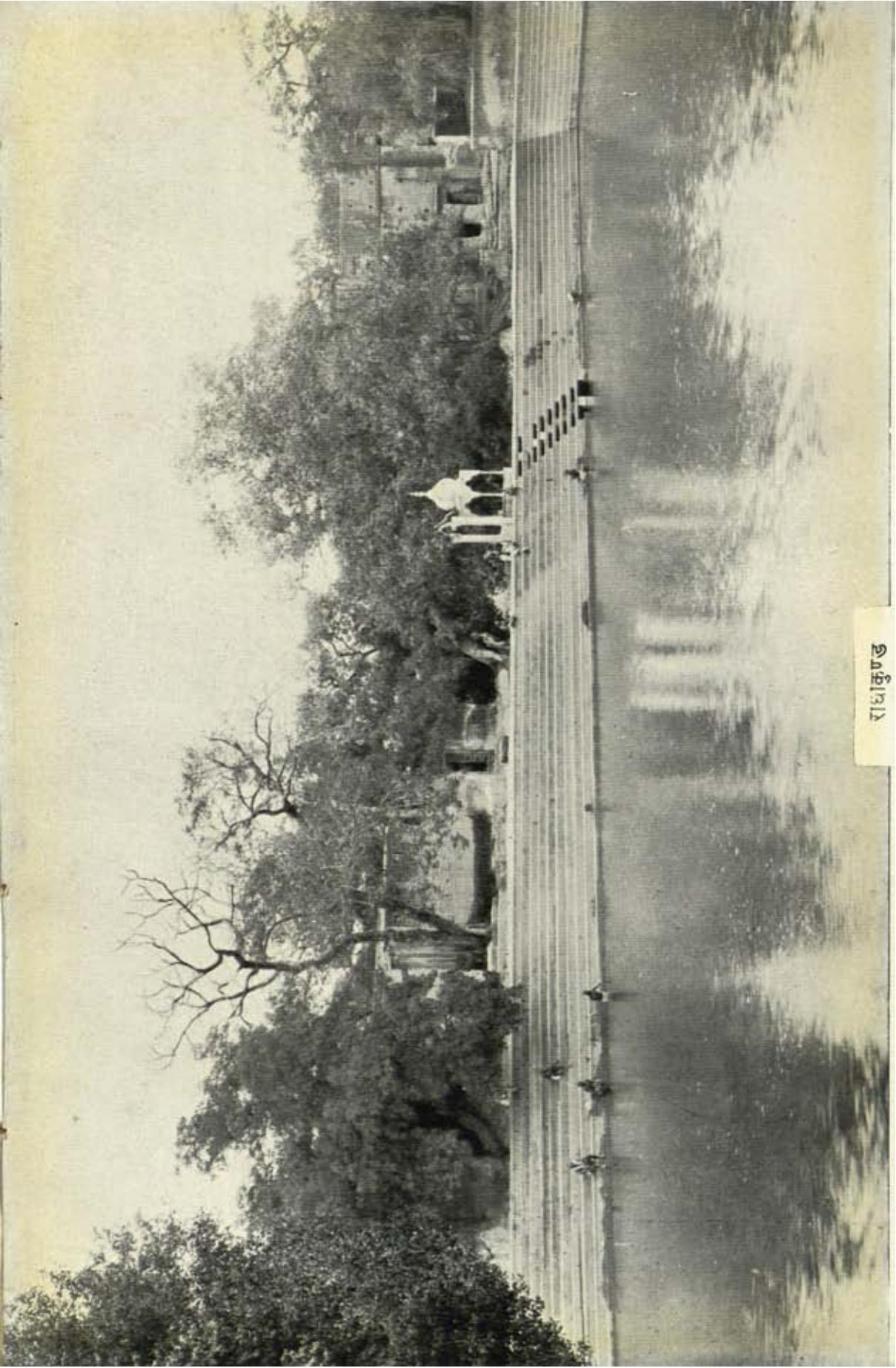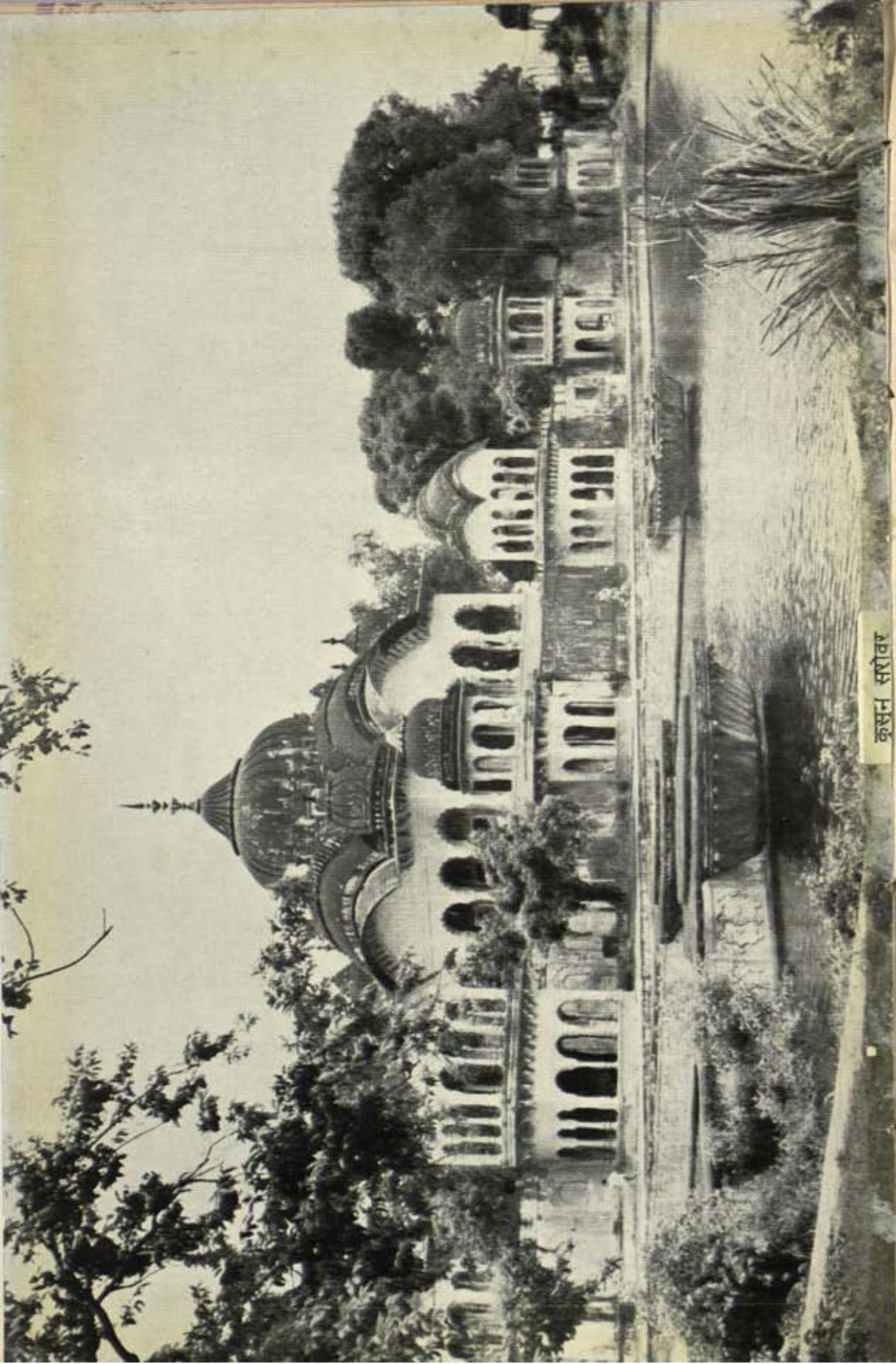
कुसुम सरोवर

वन, (३०) सुरभीवन, (३१) प्रेमवन, (३२) मयूरवन, (३३) मनोंगितवन, (३४) शेष-शयनवन, (३५) वृन्दावन, (३६) परमानन्दवन, (३७) रंकप्रतिवन, (३८) वार्त्तावन, (३९) करहपुरवन, (४०) अंजनवन, (४१) कर्णवन, (४२) क्षिपनवन, (४३) नन्दन-वन, (४४) इन्द्र वन, (४५) शिक्षावन, (४६) चन्द्रावलीवन, (४७) लोहवन, (४८) सारिकावन, (४९) जातिवन, (५० तारावन, (५१) नागवन, (५२) सूर्यपतनवन, (५३) तिलवन, (५४) त्रिभुवनवन, (५५) विस्मरणवन, (५६) पर्वत-पहारीवन, (५७) अशोकवन, (५८) नारायणवन, (५९) सखीवन, (६०) गोदृष्टिवन, (६१) स्वपनवन, (६२) गह्वरवन, (६३) कपोतवन, (६४) लघुशेपशयनवन, (६५) हाहा-वन, (६६) गहनवन, (६७) गन्धर्ववन, (६८) ज्ञानवन, (६९) नीतवन, (७०) लेपन-वन, (७१) प्रशंसावन, (७२) मेलनवन, (७३) परस्परवन, (७४) पाडरवन, (७५) वीर्य्यवन, (७६) मोहनीवन, (७७) विजयवन, (७८) निम्बवन, (७९) गोपनवन, (८०) वियद्वन, (८१) नूपुरवन, (८२) पुण्यवन, (८३) यक्षवन, (८४) अग्रवन, (८५) प्रतिज्ञावन, (८६) कामरुवन (८७) कृष्णस्थितवन, (८८) पिपासावन, (८९) चात्रकवन, (९०) विहस्यवन, (९१) आह्वानवन, और (९२) कृष्णान्तर्द्धानवन,[1]।

इन वनों में कुछ वनों के नाम और सम्मिलित कर पुराणों में बारह प्रतिवन बारह अधिवन, बारह तपोवन, बारह मोक्षवन, बारह कामवन, बारह अर्थवन, बारह धर्मवन, बारह सिद्धवन, इस प्रकार के आठ विभाग किये गये हैं जैसा कि—

भविष्य पुराण[2] में निम्नांकित 'द्वादशवनों' को 'प्रतिवन' कहा है—

(१) रंकवन, (२) वार्तावन, (३) करहावन, (४) कामवन, (५) अंजनवन, (६) कर्णवन, (७) कृष्णक्षिपनवन, (८) नन्दप्रेक्षण कृष्णवन, (९) इन्द्रवन, (१०) शिक्षावन, (११) चन्द्रावलिवन, और (१२) लोहवन।

इसी प्रकार निम्नांकित 'द्वादश वनों' को 'कामवन' कहा है—

(१) विहस्यवन, (२) आहूतवन, (३) कृष्णस्थिति वन, (४) चेष्टावन, (५) स्वप्नवन, (६) गह्वरवन, (७) शुकवन, (८) कपोत, पार खण्ड वन, (९) चक्रवन, (१०) शेषशायनवन, (११) दोलावन, और (१२) श्रवन।

विष्णु पुराण[3] में निम्नांकित 'द्वादश वनों' को 'अधिवन' कहा है—

(१) मथुरा, (२) राधाकुण्ड, (३) नन्दग्राम, (४) गढ़, (५) ललिताग्राम, (६) वृषभानपुर, (७) गोकुल, (८) बलदेववन, (९) गोवर्द्धन, (१०) जाववट, (११) वृन्दावन, और (१२) संकेतवन।

वारह पुराण[4] में निम्नांकित 'द्वादशवनों' को 'तपोवन' कहा है—

---

१. "कृष्णलीला विहारार्थं मुखस्थान विराजितम्।
चतुरष्टक कोशेन परिपूर्णं विराजितम्।
कृष्णे न निर्मिता स्तीर्थाः सार्द्ध द्वय सहस्त्रकाः"—मात्स्ये।
मथुराद्य नवति......इत्येकनवतिवनानि यमुना दक्षिण तटस्थानि—भविष्ये—

२. आदौरंकवनं......नाम्नां लोहवनं श्रेष्ठ द्वादशं शुभदं नृणाम्। —भविष्ये— तथा "विहस्याख्यं वनं नाम।"—भविष्ये।

३. मथुरा प्रथमं......वनं द्वादशं कीर्तितम्।—विष्णु पुराणे

४. आदौ तपोवनं।—वाराह पुराणे

(१) तपोवन, (२) भूषणवन, (३) क्रीड़ावन, (४) वत्सवन, (५) रुद्रवन, (६) रमणवन, (७) अशोकवन (८) नारायणवन, (९) सखावन, (१०) सखीवन, (११) कृष्णान्तार्ध्यानवन, और (१२) मुक्तिवन।

आदि पुराण[१] में निम्नांकित 'द्वादश वनों' को 'मोक्षवन' कहा है—

(१) पापांकुशवन, (२) रोगांकुशवन, (३) सरस्वतीवन, (४) जीवनवन, (५) नवलवन, (६) क्षरवन, (७) किशोरीवन, (८) वियोगवन, (९) पियासावन, (१०) चात्रकवन, (११) कपिवन, और (१२) गोदृष्टिवन।

स्कन्ध पुराण[२] में निम्नांकित 'द्वादश वनों' को 'अर्थवन' कहा है—

(१) हाहावन, (२) गायनवन, (३) गन्धर्ववन, (४) ज्ञानवन, (५) राजनीतवन, (६) लेपनवन, (७) बोलखोरावन, (८) मेलनवन, (९) परस्परवन, (१०) पाडरवन, (११) रुद्रवीर्यवन, और (१२) मोहिनीवन।

विष्णु पुराण[३] में निम्नांकित 'द्वादश वनों' को 'सिद्धवन' कहा है—

(१) सारिकावन, (२) विद्रुमवन, (३) पुष्पवन, (४) मालतीवन, (५) नागवन, (६) रावलवन, (७) बकुलवन, (८) तिलकवन, (९) दीपवन, (१०) श्राद्धवन, (११) षट्पदवन, और (१२) त्रिभुवनवन।

'स्मृत्यर्थ सार'[४] में निम्नांकित 'द्वादश वनों' को 'धर्मवन' कहा है—

(१) जेतवन, (२) निम्बवन, (३) गोपीवन, (४) वियद्वन, (५) नूपुरवन, (६) यक्षवन, (७) पुण्यवन, (८) अग्रवन, (९) प्रतिज्ञावन, (१०) चम्पावन, (११) कामरुवन, और (१२) कृष्ण-दर्शनवन।

आदिवाराह[५] में द्वादश वनों के दो विभाग कहे गये हैं—

यमुना के उत्तर भाग में—महावन, भांडीरवन, लोहजंघान, बिल्व, भद्र नामक पञ्चवन और दक्षिण भाग में तालवन, बहुलावन, कुमुदवन, छत्रवन, खदिरवन, कोकिलावन, काम्यवन नामक सात वन हैं।

बृहन्नारदीय पुराण[६] में तथा 'बौधायन' में ४८ वनों के 'अधिदेवता' कहे हैं। जैसे कि—

(१) महावन के देवता हलायुध, (२) काम्यवन के गोपीनाथ, (३) कोकिलावन के नटवर, (४) तालवन के दामोदर, (५) कुमुदवन के केशव, (६) भाण्डीरवन के श्रीधर, (७) छत्रवन के श्रीहरि, (८) खदिरवन के पद्मनाभ, (९) लोहवन के हृषिकेश, (१०) भद्रवन के हयग्रीव, (११) बहुलावन के पद्मनाभ, और (१२) बेलवन के

१. "पापांकुश वनं चादौ..." आदि पुराणे
२. "आदौ हाहा वनं..." स्कान्दे
३. "सारिकाख्यं वनं स्यादौ..."—विष्णुपुराणे
४. "आदौ जेतवनं नामद्वयं..."—स्मृत्यर्थसार
५. "उत्तरे यमुनायास्तु पंच संख्या वनस्थिताः।"
कोकिलाख्यं वनं काम्यं सप्त दक्षिण कुलगाः"—आदि वाराहे।
६. "हलायुधोमहावनाधिपो देवः"—इतिद्वादश माख्याता द्वादशोपवनाधिया। नन्दकिशोरोरंक प्रतिवनाधियोदेवः "'इति द्वादश प्रतिवना नामधिपदेवता—बृहन्नारदीये।
"परब्रह्ममथुराधिवना धिपोदेव"...बौधायन।

जनार्दन। ये बारह वन हैं, अब बारह उपवन के देवताओं को कहते हैं—(१३) ब्रह्मवन के गोपीजन वल्लभ, (१४) अप्सरावन के वामन, (१५) विह्वलवन के विह्वल, (१६) कदंबवन के गोपाल, (१७) स्वर्णवन के विहारी, (१८) सुरभिवन के गोविन्द, (१९) प्रेमवन के ललित मोहन, (२०) मयूरवन के किरीट, (२१) मानेंगित वन के वनमाली, (२२) शेषशायी वन के अच्युत, (२३) नारदवन के मदनगोपाल, (२४) परमानन्द वन के मुरलीधर।

द्वादश प्रतिवन के देवता—(२५) रंकप्रति वन के देवता नन्दकिशोर, (२६) वार्त्तावन के कृष्ण, (२७) करहावन के मुरलीधर, (२८) कामवन के परमेश्वर, (२९) अंजनवन के पुण्डरीकाक्ष, (३०) कर्णवन के कमलाकर, (३१) क्षिपन के बालकृष्ण, (३२) नन्दवन के नन्दनन्दन, (३३) वृन्दावन के चक्रपाणी, (३४) शिक्षावन के त्रिविक्रम, (३५) चन्द्रावली के पीताम्बर, और (३६) लोहवन के विश्वकसेन।

द्वादश अधिवनों के देवता—(३७) मथुरा के परब्रह्म, (३८) राधाकुण्ड के राधावल्लभ, (३९) नन्दग्राम के यशोदानन्दन, (४०) गढ़ के नवलकिशोर, (४१) ललिता ग्राम के व्रजकिशोर, (४२) वृषभानपुर के राधाकृष्ण, (४३) गोकुल के गोकुल-चन्द्रमा, (४४) बलदेव के कामधेनु, (४५) गोवर्द्धन के गोवर्द्धननाथ, (४६) यावबट के व्रजवर, (४७) वृन्दावन के युगल, और (४८) संकेत के राधारमण।

उपपुराणों में 'व्रज-मण्डल' को भगवान् का स्वरूप माना है। जैसा कि—'विष्णुरहस्य'[१] में कहा है—"व्रज के ५५ वन भगवदंग हैं। मथुरा हृदय, मधुवन नाभि, कुमुद-तालवन, दो स्तन, वृन्दावन भाल, बहुलावन-महावन दोनों बाहु, भाण्डीर-कोकिलावन दोनों हस्त, खदिर-भद्रकवन दोनों स्कन्ध, छत्रवन, लोहजंघान-वन दोनों नेत्र, बिल्ववन-भद्रवन दोनों कर्ण, कामवन चिबुक, त्रिवेणी-सखीकूप ओष्ठ, विह्वलादिक दाँत, सुरभिवन जिह्वा, मयूरवन ललाट, मानेंगितवन नासिका, शेष-शायी-परमानन्दवन दोनों नासापुट, करहला-कमई नितम्ब-देश, कर्णवन लिंग, कृष्ण-क्षिपनक गुदा, नन्दनवन शिर, इन्द्रवन पृष्ठ, शिक्षावन वाणी, दोयवन-लोहवन, नन्दग्राम-श्रीकुण्ड पाँच करांगुलि, गोवर्द्धन-जाववट-संकेतवन-नारदवन-मधुवन पाँच वाम पादांगुलि, मृद्रवन-जन्हुवन-मेनकावन-कजलीवन-नन्दकूपवन दक्षिणांगुलि हैं।

'पद्मपुराण' में इन वनों में स्थित १६ बटों के नाम कहे हैं—

(१) संकेतबट, (२) भाण्डीरवट, (३) जाववट, (४) शृङ्गारबट, (५) बंसीवट, (६) श्रीबट, (७) जटाजूटबट, (८) कामबट, (९) मनोरथबट, (१०) आशाबट, (११) अशोकबट, (१२) केलिबट, (१३) ब्रह्मबट, (१४) रुद्रबट, (१५) श्रीधरबट, और (१६) सावित्रीबट।

राज्यों का उल्लेख—श्री यमुना जी के दक्षिण-तट के वन समूह तथा बट समूह पर श्री कृष्ण का राज्य है। इसी प्रकार श्री यमुना जी के उत्तर-तट के वन-समूह में तथा बट-समूह में बल्देव जी का राज्य है। अन्य वन समूह तथा बट समूह में श्री राधादि ६० सखियों के भिन्न-भिन्न 'अधिकार' राज्य हैं।

---

१. "पंचपंच वनस्थानाः भगवदवयवनि च।
मथुरा हृदयं प्रोक्त......" —विष्णुरहस्य

'बृहद्गौतमीय' में—वृषभानुपुर, संकेतवट, नन्दग्राम, राधाकुण्ड, गोवर्द्धन, गोपालपुर, अप्सरावन, नारदवन, सुरभिवन, पाडरवन, डिंडिमवन में **श्री राधिका**, का राज्य माना है।

'नारदीय' में—ललिताग्राम, गुर्जुपुर, करहपुर, स्वर्णपुर, नन्दनवन, क्षिपनवन, कर्णवन, इन्द्रवन, काम्यवन, कामनावन, रंकपुर, अञ्जनपुर, शृङ्गारवट, भाण्डीरवट, में **श्री ललिता जी** का राज्य कहा गया है, इसी प्रकार चिवित्सपुर, पिपासावन, चात्रकवन, जीवनवन, कपिवन, विहस्यवन, आहूतवन, बंसीवट में **श्री विशाखा जी** का राज्य माना गया है।

सम्मोहनीयतन्त्र में—मथुरा-मण्डल, कृष्णस्थितिवन, गढ़वन, गोकुल-कृष्णधाम, बल्देवस्थल, श्रीवट, कामवट, में **चम्पकलता जी** का राज्य कहा गया है।

भविष्यपुराण में—लक्ष्मी-नारायण संवाद के भूमिखंड में जावबटवन, सारिकावन, विद्रुमवन, पुष्पवन, जातीवन, मनोर्थवट, आशावट, में **तुङ्गविद्या जी** का 'अधिकार-राज्य' कहा है।

गरुड़ संहिता में—चम्पावन, नागवन, तारावन, सूर्यपतनवन, बकुलवन, अशोकवट, केलिवट में **रंगदेवी जी** का 'अधिकार-राज्य' माना है; और तिलकवन, दीपवन, श्राद्धवन, षट्पदवन, त्रिभुवनवन, ब्रह्मवट में **चित्रलेखा जी** का 'राज्य' कहा है। इसी प्रकार पात्रवन, पितृवन, विहारवन, विचित्रवन, विस्मरणवन, हास्यवन, और रुद्रवट में **इन्दुलेखा जी** का राज्य है।

'बृहत्पाराशर' में—जह्नुवन, पहाड़वन, श्रीधरवट, में **सुदेवी जी** का 'राज्य' कहा है। और कुमुदवन, चन्द्रावलीवन, महावन, कोकिलावन, तालवन, लोहवन, भाण्डीरवन, छत्रवन, खदिरवन, सौमनवन में **चन्द्रावली जी** का 'राज्य' है।

जिस प्रकार 'तन्त्र' संहितादि में राज्यों का उल्लेख मिलता है उसी प्रकार सखियों एवं उपसखियों के नामों का भी उल्लेख हुआ है। जैसे—

ब्रह्मयामल में—वार्तावन में **सुमना**, परमानन्दवन में **सुखिया**, वृन्दावन में **कांच्चा**, शेषशयनवन में **दीपिका**, मानेंगितवन में **मदीपिका**, मयूरवन में **नागरी**, कदम्बवन में **प्रबला**, बेलवन में **गौरी** इत्यादि का। इसी में ब्रह्मवन में **मंगला**, कुशवन में **सुमुखी**, नन्दकूपवन में **पद्मा**, कजलीवन में **सुपद्मा**, मेनकावन में **मनोहरा**, जह्नुवन में **सुपत्रा**, मृद्वन में **बहुपत्रा**, मधुवन में **पद्मरेखा** का उल्लेख है।

इसी प्रकार **'गौतमीयतन्त्र' 'त्रैलोक्य संमोहनतंत्र'** आदि में भी अनेक सखियों के नाम मिलते हैं। विस्तार-भय से यहाँ दिये नहीं जा रहे हैं। अस्तु,

'भविष्य पुराण' में व्रज के सब स्थलों की प्रदक्षिणा का परिमाण भी दिया है। जैसा कि—

१. मथुरा-मण्डल, ६ कोस
२. राधाकुण्ड और गोवर्द्धन मिल कर, ७ कोस
३. नन्दगाम, २ कोस
*४. गढवन, १॥ कोस
५. ललिताग्राम, ३ कोस
६. बल्देव-स्थान, २॥ कोस
*७. कामनावन, १ कोस
८. जावबट, २॥ कोस

*९. नारदवन की ।।। कोस
१०. संकेत की १।। कोस
*११. सारिकावन की १ कोस
*१२. विद्रुमवन की ।। कोस
*१३. पुष्पवन की १ कोस
*१४. जातीवन की १। कोस
१५. चम्पावन की २ कोस
१६. नागवन की १।। कोस
*१७. तारावन की २।। कोस
१८. सूर्यपतनवन की १।।। कोस
*१९. बकुलवन की १ कोस
२०. तिलकवन की १। कोस
*२१. दीपवन की २ कोस
२२. श्राद्धवन की १।। कोस
*२३. षट्पदवन की २। कोस
*२४. त्रिभुवनवन की २।। कोस
*२५. पात्रवन की १ कोस
*२६. पितृवन की १ कोस
२७. बिहारवन की २ कोस
२८. विचित्रवन की २। कोस
२९. विस्मरणवन की १। कोस
३०. हास्यवन की ४ कोस
३१. काम्यवन की ७ कोस
३२. तालवन की १।।। कोस
३३. कुमुदवन की ।। कोस
३४. भाण्डीरवन की २ कोस
३५. छत्रवन की २। कोस
३६. खदिरवन की २। कोस
३७. लोहवन की १।। कोस
३८. भद्रवन की १।।। कोस
३९. बेलवन की १।। कोस
४०. बहुलावन की २ कोस
४१. मधुवन की १।। कोस
*४२. मृद्वन की ३।। कोस
*४३. मेनकावन की १।। कोस
४४. कजलीवन की १ कोस
४५. नन्दकूपवन की २।।। कोस
४६. कुसवन की २। कोस
७. ब्रह्मवन की ।।। कोस
४८. अप्सरावन की १ कोस
४९. विह्वलवन की १।। कोस
५०. कदम्बवन की १ कोस
५१. स्वर्णवन की १। कोस
५२. सुरभिवन की ।।। कोस
५३. प्रेमवन की ।। कोस
५४. मयूरवन की । कोस
५५. मानेंगीतवन की ।। कोस
५६. शेषशायनवन की १।।। कोस
५७. वृन्दावन की ५ कोस
*५८. परमानन्दवन की १ कोस
*५९. रंकपुरवन की ।।। कोस
६०. वार्त्तावन की २ कोस
६१. करहपुर की २।। कोस
६२. अंजनपुर की १ कोस
६३. कर्णवन की १। कोस
६४. क्षिपनवन की ।। कोस
६५. नन्दनवन की ।।। कोस
६६. इन्द्रवन की २। कोस
*६७. शिक्षावन की १ कोस
६८. चन्द्रावलीवन की १।। कोस
*६९ लोहजंघानवन की २ कोस
*७०. जीवनवन की ।।। कोस
७१. पिपासावन की १ कोस
७२. चात्रकवन की ।। कोस
७३. कपिवन की २ कोस
७४. विहस्यवन की २।। कोस
*७५. आहूतवन की ।।। कोस
७६. कृष्णस्थितवन की १। कोस
७७. तपोवन की १ कोस
७८. भूषणवन की ।।। कोस
७९. वत्सवन की २ कोस
८०. क्रीड़ावन की १।। कोस
*८१. रुद्रवन की ।। कोस
८२. रमणवन की २ कोस

*८३. अशोकवन की ४ कोस
८४. नारायणवन की १ कोस
८५. सखावन की १। कोस
८६. सखीवन की ॥ कोस
८७. कृष्णान्तर्यानिवन की २ कोस
८८. वृषभानपुर की २ कोस
८९. गोकुल की ३ कोस
*९०. मुक्तिवन की १॥। कोस
९१. पापांकुशवन की १। कोस
९२. रोगांकुशवन की १ कोस
९३. सरस्वतीवन की २॥। कोस
९४. नवलवन की ॥। कोस
*९५. किशोरवन की ॥ कोस
९६. किशोरीवन की १ कोस
९७. वियोगवन की ॥ कोस
*९८. गोदृष्टिवन की ३॥ कोस
*९९. चेष्टावन की ॥। कोस
*१००. स्वप्नवन की ॥ कोस
१०१. गह्वरवन की ॥ कोस
१०२. शुकवन की १। कोस
१०३. कपोतवन की ॥। कोस
*१०४. चक्रवन की १ कोस
१०५. लघुशेषवन की १॥। कोस
१०६. दोलावन की ॥ कोस
१०७. हाहावन की १। कोस
१०८. गानवन की १। कोस
१०९. गंधर्ववन की ॥। कोस
११०. ज्ञानवन की ॥ कोस
१११. नीतिवन की १ कोस
*११२. श्रवनवन की ॥ कोस
*११३. लेपनवन की १॥ कोस
*११४. प्रशंसावन की १। कोस
११५. मेलनवन की ॥। कोस
११६. परस्परवन की १ कोस
११७. पाडरवन की १। कोस
*११८. रुद्रवीर्यस्खलनवन की २ कोस
११९. मोहनीवन की १॥ कोस
१२०. विजयवन की १ कोस
१२१. पक्षवन की १। कोस
*१२२. पुण्यवन की १ कोस
१२३. अग्रवन की १॥ कोस
*१२४. प्रतिज्ञावन की ३ कोस
*१२५. कामरूवन की २। कोस
*१२६ कृष्णदर्शनवन की १॥ कोस[1]

ब्रजभाषा काव्य और ब्रज-भक्ति

ब्रजभाषा साहित्य में 'ब्रज' की महत्ता को प्रकट करने वाली इतनी सामग्री भरी पड़ी है कि यदि उसको एकत्रित किया जाय तो हजारों पृष्ठों का एक स्वतन्त्र ग्रंथ तैयार हो सके। किन्तु यहाँ संकोच वश हम अष्टछाप आदि के कवियों के कुछ ही पदों को उद्धृत करते हुए 'ब्रज' की महिमा पर प्रकाश डालेंगे।

(१) अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि और संगीताचार्य गोविन्द स्वामी ने निम्न-लिखित पद से ब्रज की महत्ता इस प्रकार प्रकट की है—

कहा करों बैकुंठहि जाइ।
जहाँ नहीं बंसीबट जमुना, गिरि-गोबर्द्धन नंद की गाइ॥
जहाँ नहीं वे कुंज-लता-द्रुम, मंद-सुगंधि बहुत नहि बाँइ।
कोकिल, मोर, हंस, नहि कूँजत, ताकौ बसिबौ काहि सुहाइ॥

---

१. इन १२६ वनों में से (*) इस चिन्ह वाले ३७ वन आज प्रसिद्ध नहीं हैं अन्य वन किसी न किसी रूप और नाम से प्रसिद्ध हैं।

जहाँ नहि बंसी-धुनि बाजत, कृष्ण न पुरवत अधर लगाइ।
प्रेम पुलक रोमांच न उपजत, मन, वच, क्रम आवत नहि दाइ॥
जहाँ नहीं ये भुवि-वृन्दावन, बाबा नंद जसोमति माइ।
'गोविंद' प्रभु तजि नंद-सुवन कों, ब्रज तजि वहाँ मेरी बसत बलाइ॥

(२) इसी के अनुरूप एक पद परमानंद दास जी का देखिये—

कहा करौं बैकुंठहि जाइ।
जहाँ नहि नंद, जहाँ न जसोदा, जहाँ न गोपी, ग्वाल अरु गाइ॥
जहाँ न जल जमुना को निरमल, और नहीं कदमन की छाँइ।
'परमानंद' प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रज-रज तजि मेरी जाय बलाइ॥

इन पदों पर 'ब्रज' की महिमा बैकुंठ से भी विशेष बतलाई गई है। बैकुंठ में भगवान् चतुर्भुज रूप से बहुत ही मर्यादापूर्ण रूप में विराजते हैं। वहाँ सेवक लोगों की परिस्थिति उसी मर्यादा के अनुसार रहती है। बोलना, बैठना, हँसना कुछ भी मर्यादा के विरुद्ध नहीं हो सकता। 'ब्रज' में वह बात नहीं है। सख्य-भक्ति के नाते ब्रज में ठाकुर को मन में आवें जैसे कह सकते हैं, खिला-पिला सकते हैं और लड़-झगड़ भी सकते हैं। भला इस स्वतन्त्रता का आनन्द छोड़, मर्यादा में किस को रहना पसन्द होगा? इसी प्रकार गोवर्द्धन, यमुना, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि ब्रज के प्राकृतिक आनन्द को छोड़कर बैकुंठ के केवल तेजोदय स्थान में रहना किसे अच्छा लग सकता है?

कवि रसखान तो ब्रज की लोक-मर्यादा से विपरीत चालों का वर्णन करते हुए उसकी इस जगत से भी भिन्नता प्रतिपादन करते हैं। वह एक सरस व्यंगात्मक पद है—

"कैसा है यह देस निगोड़ा, जगत होरी, ब्रज होरा।[1] कैसा···
मैं जल जमुना भरन जात ही, देखि बदन मेरा गोरा॥
मोसों कहें चलो कुंजन में, तनक-तनक से छोरा।
परें आँखिन में डोरा॥ कैसा है···॥
जीयरा देखि डरात है सजनी, आयो लाज सरम कौ ओरा॥
कहा बूढ़े कहा लोग लुगाई, एकतें एक ठठौरा।
न काहु से काहु को जोरा॥ कैसा है···॥
मन मेरो हर्यो नंद के ने सजनी, चलत लगावत चोरा॥
कहे 'रसखान' सिखाय सखन सों, सब मेरा अंग टटोरा।
न मानत करन निहोरा॥ कैसा है···॥"

'ब्रज' की इस प्रेममयी लीला के आगे किसे बैकुंठ में जाना अच्छा लग सकता है? भगवान् श्री कृष्ण ब्रज में स्वच्छन्द लोकवत् क्रीडाएँ करके स्वकीय जनों को

---

१. भगवान् श्री कृष्ण की लीलायें अलौकिक हैं जो मर्यादा-मार्ग से बोधगम्य नहीं हो सकतीं। वे साधारण जन की समझ से परे हैं और भक्ति-भाव से ही समझी जा सकती हैं। यही कारण है कि भगवान् कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा को भी "तीन लोक से न्यारी" कहा गया है।

इसी लोक में अलौकिक आनन्द दे रहे हैं। उसके आगे सामीप्य, सायुज्य सार्ष्टि और सारूप्य यह चारों युक्ति नीरस लगती हैं।

कृष्ण के 'ब्रज-चरित्र' का वर्णन करते हुए 'सूर' कहते हैं—

"बनी सहज यह लूट हरि-केलि गोपिन के सुपने यह कृपा कमला हू न पावै।
निगम निराधार, त्रिपुरार हू बिचारि रह्यो, पच रह्यो सेस, नहिं पार पावै॥
किन्नरी बहुरि अरु बहुरि गंधर्वनी, पन्नगनी चितवन नहिं मांझ पावै।
देति करतार वे लाल गोपाल सों पकरि ब्रजबाल कपि ज्यों नचावे॥
कोऊ कहे ललन पकराव मोहि पाँवरी कोऊ कहे लाल बलि लाओ पीढ़ी।
कोऊ कहे ललन गहाव मोहि सोहिनी कोऊ कहे लाल चढ़ि जाउ सीढ़ी॥
कोऊ कहे ललन देखो मोर कैसे नचे कोऊ कहे भ्रमर कैसे गुंजारें।
कोऊ कहे पौरि लगि दौरि आओ लाल रीझ मोतिन के हार वारें॥
जो कुछ कहें ब्रज-बधू सोइ-सोइ करत तोतरे बैन बोलन सुहावें।
रोय परत बस्तु जब भारी न उठत वे चूम मुख जननी उर सों लगावें॥
बेन कहि लोनी पुन चाहि रहत बदन हँसि स्व भुज बीच लै लै कलोलें।
धाम के काम ब्रज-बाम सब भूलि रहीं कान्ह बलराम के संग डोलें॥
'सूर' गिरिधर मधु चरित मधु पान कै और अमृत कछु आने लागे।
और सुख रंच को कौन इच्छा करै मुक्ति हू लोंन सी खारी लागे॥"

इस पद में त्रिलोकी-नायक श्री कृष्ण के प्रेम-पराश्रित चरित्रों द्वारा और ब्रजवासियों का उत्कर्ष और उनके जीवन की जिस सरसता का प्रतिपादन किया गया है उसको देखते हुए बैकुंठ, बैकुंठनाथ और उनकी मुक्ति तीनों ही वास्तव में अमृत के सामने नोंन सदृश ही हैं।

गो० श्री कल्याणराय जी जो गो० श्री विट्ठलनाथ जी के पौत्र थे और जिन्होंने दस वर्ष की अवस्था में ही करोड़ों रुपये की सम्पत्ति वाले मठों का अनादर कर 'ब्रज-माँगने' के रूप में, 'ब्रज' ही में रहना पसन्द किया था उनका ब्रज के गौरव विषयक एक पद इस प्रकार है—

हौं ब्रज-माँगनों जु ब्रज तजि अनत न जाऊँ।
बड़े-बड़े भुव-पति राज लोक-पति दाता सूर सुजान।
कर न पसारों सीस न नाऊँ या ब्रज के अभिमान॥
सुर-पति नर-पति नाग-लोक-पति मेरे रंक समान।
भाँति-भाँति मेरी आसा पुजिये ब्रज-जन सो जिजमान॥
बाबा! मैं व्रत करि-करि देव मनाये अपनी घरनी संयुत्त।
दियो है बिधाता सब सुखदाता गोकुल-पति के पूत॥
बाबा! हौं अपुनो मन भायो लैहों कित बौरावत बात।
औरन कों धन धन ज्यों बरखत मो देखत हँसि जात॥
अष्ट-सिद्धि नौ-निधि मेरे मन्दिर, तुव प्रताप ब्रज-ईस।
कहत 'कल्याण' मुकुंद तात कर कमल धरो मम सीस॥

इस पद में 'ब्रज तजि अनत न जाऊँ' और 'कर न पसारों सीस न नाऊँ या ब्रज के अभिमान' आदि उल्लेखों से ब्रज की महत्ता और गौरव जो वर्णन किया है वास्तव में बेजोड़ है। ब्रज साक्षात् भगवद्धाम है उसमें रहना साधारण गौरव की बात नहीं है। उसमें भी किसी से याचना न करनी और ब्रज के आश्रय को छोड़ कर किसी भी अवस्था में अन्यत्र न जाना भगवान् की कृपा के बिना सम्भव नहीं है। इसी दृष्टि से वैष्णव लोग, साधु-सन्त आदि ब्रज में निवास करते हैं। यह ब्रज की महत्ता का परिचायक है।

इसी प्रकार अष्टछाप के कृष्ण दास जी ने भी 'ब्रज-महिमा' में यह पंक्तियाँ लिखी हैं—

"कोटि कल्प कासी बसे, अयोध्या कल्प हजार।
एक निमिष ब्रज में बसे, बड़ भागी कृष्णदास॥"

गो० श्री पुरुषोत्तम जी स्याल वालों ने भी ब्रज की महिमा के अनेक काव्य किये हैं, उनमें एक 'ब्रज-परिक्रमा' भी है। उसमें वे लिखते हैं—

"धन्य मथुरा धन्य श्री वृन्दावन धन्य-धन्य यशोदा माई।
जाकी महिमा अगम-निगम है प्रगटे कुँवर कन्हाई॥
बारह बन बारह उपवन की लीला गाइ सुनाई।
'श्री पुरुषोत्तम प्रभु' करत सकल बन आवागमन मिटाई॥"

इसमें कहा है कि चौरासी कोस ब्रज की परिक्रमा से ८४ लाख योनि का आवागमन मिटता है। यह कथन ब्रज की महिमा की अवधि स्वरूप है।

वैसे तो नागरी दास, अभय राम, कृष्ण जीवन लछी राम आदि अनेक कवियों ने ब्रज और ब्रज की एक-एक वस्तु, पदार्थ, प्राणी मात्र की महिमा लिखी है किन्तु स्थानाभाव से उनमें से कुछ के उद्धरण ही यहाँ दिये जा रहे हैं—

नागरी दास ने ब्रज की महिमा इस प्रकार गाई है—

ब्रज सम और कोऊ नहिं धाम।
या ब्रज सों परमेसुर हू के सुधरे सुन्दर नाम॥
कृष्ण नाम यह सुन्यो गर्ग तें कान्ह-कान्ह कहिं बोले।
बाल-केलि रस मगन भये सब, आनन्द सिंधु कलोले॥

× × ×

ब्रज संबंधी नांव लत ए ब्रज की लीला गावे।
'नागरिदास' हि मुरलीवारो, ब्रज कौ ठाकुर भावे॥

अभय राम भी इसी भावना से ओत-प्रोत हैं —

"एक ब्रज रेणुका पे चिंतामणि वारि डारौं,
वारि डारूँ विश्व सेवा-कुंज के बिहार पै।
ब्रज की पनिहारिन पै रती, सची वारि डारूँ,
रंभा कू वारि डारूँ गोपिन के द्वार पै॥

ब्रज की लतान पै कलपतरु बारि डारूँ,
बैकुंठ हू कू बारि डारूँ कालिंदी की धार पै।
कहै "अभैराम" एक रावे जू कों जानत हूं,
देवन कू बारि डारों नन्द के कुमार पै॥"

भारतीय अन्य भाषाओं में ब्रज का महत्त्व—भारत की सभी भाषाओं की जननी संस्कृत है। उसी में शास्त्रादि की रचनाएँ हुई हैं। हमारे भारत के महान् आचार्यों ने भी अपने भावों को इसी भाषा में व्यक्त किया है। अतः सबसे पहले हम इसी भाषा के ब्रज सम्बन्धी कुछ विवरणों को देखेंगे—

भारतीय संस्कृति और ब्रज-भक्ति के महान् प्रवक्ता महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के प्रयत्न से ब्रज की महिमा बहुत बढ़ी। गौड़ीय, हरिदासी, हरिवंशी सम्प्रदाय के भक्तों ने भी इस महिमा के बढ़ाने में अपना-अपना योग दिया। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने सर्वप्रथम वि० सं० १५४८ में वृहद्वन में श्री गोकुल की स्थापना की थी। इसी गोकुल को आपके सुपुत्र श्री विट्ठल नाथ जी ने एक सुन्दर ग्राम के रूप में बसाया जिसकी सुन्दरता का वर्णन "भक्तमाल" के कर्त्ता नाभादास जी ने भी किया है। इस गोकुल की महिमा को श्री विट्ठल नाथ जी ने अपने 'गोकुलाष्टक' नामक ग्रन्थ में गाया है।[1]

इस अष्टक के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री विट्ठल नाथ जी इस गोकुल को श्री कृष्ण की विहार-स्थली के रूप में साक्षात् 'गो-लोक' मानते थे। इस मान्यता को पूर्वोक्त शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्टि मिलती है।

इसी प्रकार श्री विट्ठल नाथ जी के पाँचवें पुत्र गो० श्री रघुनाथ जी ने अपने 'महारसाब्धि' नामक संस्कृत काव्य में नन्दगाम का जो वर्णन किया है वह ब्रज की आधिदैविकता को स्पष्ट करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रज और 'गो-लोक' एक ही वस्तु है। जैसा कि—

"अभूदपि पदच्युतो विधिरभूतपूर्वः स्वयं
न याति सह लीलया न स हली लयादन्वहम्।
चकास्ति जगतीगुर्णैनिजगतीरसंमेलय—
असौ धरणिमण्डले भरतखण्डलेशो ब्रजः॥४॥" प्रथम सर्गः

अर्थात्—इस पृथ्वी-मण्डल में भरत-खण्ड के स्वामी रूप (अर्थात् भरत-खण्ड के श्रेष्ठ पोषक रूप) होकर 'ब्रज-मण्डल' विराजमान् हैं। जहाँ ब्रह्मा जी भी अपने पद से च्युत हो गये थे। यह 'ब्रज-मण्डल' ब्रह्माजी की सृष्टि से परे की वस्तु है। अर्थात् ब्रह्मा जी की सृष्टि-घटना से वह सम्पूर्ण पृथक् है। वह फिर अपने अलौकिक गुणों से अपनी प्रभावावली के द्वारा धरणि-मण्डल में रहता हुआ भी उससे भिन्न है। जिसमें

---

१. श्रीमद्गोकुल सर्वस्वं, श्रीमद्गोकुल मंडनम्
श्रीमद्गोकुल दक्तारा, श्रीमद्गोकुल जीवनम्॥१॥ इत्यादि।

श्री कृष्ण सदा-सर्वदा बल्देव के साथ लीला करते हैं। उन लीलाओं की विच्युति प्रलय काल में भी नहीं होती है। अर्थात् नित्य-रूप से व्रज की स्थिति है।

इसी प्रकार कृष्ण-चरित्र के जितने भी संस्कृत ग्रन्थ हैं वे सब व्रज की महिमा को प्रकट करने वाले हैं। यदि उन ग्रन्थों की एक सूची तैयार की जाय तो उसका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन सकता है। अस्तु।

संस्कृत से अतिरिक्त व्रज और व्रज-भक्ति की महिमा बंगला, मैथिली, गुजराती एवं राजस्थानी भाषा के साहित्य में भी भरी पड़ी है। उक्त भाषाओं के महा कवियों में विद्यापति, नरसिंह, शामल, प्रीतम, दयाराम एवं मीरा आदि प्रमुख हैं। उनकी सहस्रावधि रचनाएँ व्रज की महिमा को प्रकट करती हैं। इन भाषाओं की व्रज सम्बन्धी रचनाएँ किसी रूप में व्रजभाषा के अष्टछापादि महाकवियों की रचनाओं की ही छाया रूप हैं। हाँ! भाषा-माधुर्य, शैली की प्रौढ़ता और प्रकारों की विविधता की दृष्टि से वे अपनी-अपनी भाषा में चमत्कारपूर्ण मानी जा सकती हैं। उदाहरणार्थ गुजरात के अन्तिम महाकवि दयाराम ने पूर्वोक्त

"कहा करौं बैकुंठ हि जांइ।"

पद की छाया रूप से गाया है कि—

"व्रज वहालुं रे बैकुंठ नहिं आवुं,
मने न गमे चतुर्भुज थावुं त्यां तो नंद ना कुंवर क्यांथी लाऊँ?"

इत्यादि।

(८) **व्रजभूमि की भारतीय 'दर्शन' को देन**—अब हमको यह और देख लेना चाहिए कि इस 'व्रजभूमि' ने भारतीय 'दर्शन' को क्या दिया? यदि उसने इस क्षेत्र में भी कुछ न कुछ दिया है तो अवश्य ही उसकी महत्ता पर चार चाँद लग जाते हैं। क्योंकि 'दर्शन' एक शुष्क विषय है। उसको सरस बनाया जाय तभी जन-सामान्य में इसके प्रति आकर्षण हो सकता है। अन्यथा वह विद्वानों तक ही सीमित रह जाता है।

कृष्णावतार के पश्चात् जब कलि इस पृथ्वी पर आया तब धर्म के नाम पर समाज में हिंसा, मदिरा-पान और अनेक प्रकार की स्वार्थ-वृत्तियों का बोलबाला हुआ। उसको मिटाने के लिए भगवान् ने बुद्ध का अवतार धारण कर बुद्धिवाद या शून्य-वाद की स्थापना की। इस 'वाद' में ईश्वर और वेद दोनों के अस्तित्व को अस्वीकार किया गया है। इसमें प्रत्यक्षदर्शी 'जड़वाद' के रूप में मानवता की स्थापना की और वेद के स्थान पर बुद्धि की ही प्रतिष्ठा हुई। जब तक 'बौद्धवाद' नया-नया रहा तब तब लोगों ने इसे पसन्द किया किन्तु जब इसमें भी बुद्धि की चंचलता के कारण स्वार्थ-वृत्तियों के पोषण की ओर ही समाज के नेतागण प्रवृत्त हुए तब भगवान् शंकर ने शंकराचार्य के रूप में प्रकट होकर मायावाद की स्थापना की। इस वाद में बुद्धि के स्थान पर वेद की प्रतिष्ठा तो की गई किन्तु ईश्वर की पूर्ण और स्वतन्त्र सत्ता में माया की प्रधानता रखी गई। इससे जगत को मिथ्या भ्रम-जाल मानते हुए ईश्वर की केवल परमार्थिक सत्ता को ही स्वीकार किया। इससे 'बौद्धवाद' का तो उन्मूलन हुआ

किन्तु समाज को आत्म-सन्तोष नहीं हुआ। क्योंकि दृश्यमान् पदार्थ और अनुभव में आने वाले तत्त्वों को मिथ्या किस प्रकार माना जाय ? यह 'खण्ड-ज्ञान' 'केवलाद्वैत' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इससे संन्यास की ओर लोगों की प्रवृत्ति बढ़ी और वास्तविक संन्यास के अनधिकारी लोग पाखण्ड में रत हुए। तब भारतीय समाज जो वास्तविक तत्त्व का अन्वेषक था वह इससे असन्तुष्ट हुआ।

इसी प्रकार समय-समय पर वेदों के अध्ययन और मनन द्वारा विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत आदि दर्शन भारतीय समाज में उपस्थित हुए किन्तु सब के साधन पक्षों में कर्म-प्रधान उपासना का बोल-बाला रहा। इससे मनुष्य जीवन कृत्रिम-सा अनुभव में आने लगा। समय ने पलटा खाया और इन्हीं दर्शनों को आधार बना कर अनेक संत-महंत एवं आचार्यों ने नवीन भक्ति-मार्ग की नींव डाली। और अपने-अपने विचारों के अनुसार निम्बार्क, गौड़, रामानन्दी आदि भक्ति की नवीन धाराएँ चल पड़ीं। इन में कृष्ण-भक्ति की जितनी धाराएँ प्रवाहित हुई उन सभी ने अपने साधन-पक्ष में ब्रजभूमि का आश्रय लिया और ब्रज की कृष्ण-भक्ति को प्रधान स्थान दिया। अस्तु, विष्णु स्वामी सम्प्रदाय को आधार बनाकर शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुगामी महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने उक्त सभी भक्ति-धाराओं से भिन्न अपनी स्वतन्त्र सगुण भक्ति की स्थापना की। इस सगुण भक्ति धारा में आपने ब्रजभूमि के प्रेममय कृष्ण-चरित्रों का ही सम्पूर्ण अवलम्बन लेकर श्रीमती ब्रजांगनाओं, ब्रज-सीमंतिनियों को इस धारा के गुरु रूप में स्वीकार किया। यही नहीं आपने श्री कृष्ण एवं गोपी जनों की दैनिक जीवन-चर्या को अपने "शुद्धाद्वैत-भक्ति-दर्शन" में स्थान दिया और उसी को भक्ति की फलात्मक साधन-सेवा का रूप दिया।

जिस प्रकार गोपी जन सूर्योदय पूर्व अपने घरों में उठ स्नानादिक से निवृत्त होकर दही-माखन आदि तैयार करतीं और प्रातःकाल में ही नन्दालय में आकर श्री कृष्ण की अरोगावती थीं उसी प्रकार महाप्रभु ने उसी भावना के अनुरूप 'मंगला' के समय का निर्माण कर वही माखन, मिश्री, दूध, दही आदि के भोग की अपनी सेवा में व्यवस्था की है। फिर माता यशोदा भगवान् को विविध प्रकारों से शृंगार करती थीं उसी प्रकार ऋतु-समय के अनुसार इस सेवा में 'शृंगार' की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार दधि, मंथन, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग आरती और शयन की वैसी ही व्यवस्था है जैसी ब्रज में माता यशोदा, गोपी-ग्वाल, श्री कृष्ण की उस समय में करते थे।

ब्रज में लोक-भावना के अनुसार होरी, दिवारी, हिंडोरा आदि के त्यौहार जिस प्रकार माने जाते हैं उसी प्रकार इस सेवा में भी महाप्रभु ने उन त्यौहारों का निर्माण किया है। स्थानाभाव से यहाँ विशेष न लिखकर इतना ही सूचित करना पर्याप्त होगा कि ब्रजभूमि की जितनी भी सरस भावनाएँ हैं, उन सबों को उनके मय आचार के महाप्रभु ने अपनी सेवा में स्थान दिया है। इससे शुद्धाद्वैत भक्ति-दर्शन में पूर्ण सरसता प्राप्त हुई है। अन्य भक्ति-दर्शनों में भी जितने अंशों में ब्रज-भूमि की जितनी रागात्मकता की भावनाएँ स्वीकृत हुई हैं, उतने अंशों में वे भी सरसता को प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार बौद्धवाद से चला हुआ नीरस दर्शन अन्तिम शुद्धाद्वैत के निर्गुण भक्ति-दर्शन में पूर्ण सरसता को प्राप्त हुआ। उसका एक मात्र कारण व्रजभूमि, व्रज-जन, व्रज की भावनाएँ और व्रज-किशोर श्री कृष्ण चन्द्र का ही पूर्ण अवलम्बन है।

यदि इस लोक में व्रजभूमि, श्री कृष्ण, श्री राधा, गोपी-गोप आदि प्रकट न हुए होते तो भारतीय दर्शन ही नहीं शृंगार-शास्त्र, कवि लोग और भक्ति-मार्ग निरर्थक से रहते। इससे ज्यादा व्रजभूमि की महत्ता क्या हो सकती है कि जहाँ निरंजन निराकार ब्रह्म सगुण साकार होकर अपनी "नित्य-लीलाओं" द्वारा समस्त विश्व को सरस बना रहे हैं और तीनों काल में अपने भक्ति-रस का मकरंद फैला रहे हैं। जिस मकरंद की सुवास लेने को असंख्य प्राणी विश्व भर में से सदा इस व्रजभूमि में आते रहे हैं और इस व्रजभूमि की धूलि को अपने मस्तक पर लगते रहे हैं। भक्ति में व्रज का यह स्थान और महत्त्व है। व्रज का यह रूप व्रजभाषा के अष्टछापादि महाकवियों की रचनाओं में छाया हुआ है। भाव की दृष्टि से उनकी रचनाओं में और कोई खास विशिष्टता हमारे देखने में नहीं आई है। हाँ, भाषा शैली और प्रकारों की दृष्टि से वे चमत्कार पूर्ण कही जा सकती हैं। अस्तु।

भारतीय दर्शनों का संक्षिप्त परिचय—कृष्ण का तिरोधान होने के पश्चात् भारत में धर्माचार्यों का युग चलता है। 'आचार्य देवो भव' 'आचार्य मांविजनियात्' आदि सूत्रों के आधार पर कलियुगी धर्म-ग्लानि समाज में जब-जब आई तब-तब कोई न कोई भगवदवतार रूप आचार्य का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने ज्ञान द्वारा समाज में से धर्म की ग्लानि को हटा कर पुनः धर्म की प्रतिष्ठा को स्थापित किया है। इसीलिए समाज उन आचार्यों को ईश्वर के अवतार ही मानता रहा है। ऐसे आचार्यों में बुद्ध प्रथम थे। उनको श्रीमद्भागवतकार ने भी अवतार कहा है। आर्य लोग उनको आज भी भगवान् का अवतार मानते हैं। उन्होंने कृष्ण के तिरोधान के पश्चात् ब्राह्मणों ने वेद के नाम पर जो पाखण्ड चलाया उसको मिटाने के लिए शून्यवाद की स्थापना की। उसमें उन्होंने ईश्वर, वेद आदि के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया और बुद्धि-वाद पर जोर देकर मानव-धर्म की प्रतिष्ठा की। सत्य, दया, अहिंसा, परोपकार की दुहाई दी। प्रारम्भ में तो लोग इस 'वाद' से आकर्षित अवश्य हुए किन्तु जब इसमें बुद्धि की अल्पज्ञता, चंचलता और शून्यता के कारण आत्म-शान्ति का स्थायी और वास्त-विक आधार-आश्रय न मिला तब लोग इस 'वाद' से असन्तुष्ट हुए और पुनः पाखण्ड-कार्यों में रत हुए। तब शंकर का अवतार हुआ और उन्होंने इस शून्यवाद को प्रच्छन्न बौद्धवाद (शून्यवाद व बुद्धिवाद) से ही अनेक युक्तिओं द्वारा खण्डन किया, माया का कर्तृत्व स्थापित किया और बौद्धवाद से लोगों को हटा कर पुनः वेद के प्रति समाज में आस्था उत्पन्न की। इससे पुनः ईश्वर और वेद को समाज में स्थान प्राप्त हुआ और लोग बुद्ध के नास्तिकवाद के फंदे से बाहर निकल आये। शंकर का दर्शन 'केवलाद्वैत' कहलाया। उसमें 'बुद्धि' की जगह आत्मा का 'खण्डज्ञान' प्रधान रहा। अब समाज पुनः वेदाध्ययन करने लगा। किन्तु इस 'खण्डज्ञान' से आत्मा की संतुष्टि नहीं हुई। इस मत में ईश्वर को निरंजन निराकार बतलाया गया। इसमें ईश्वर ज्योतिस्वरूप माने गये।

: ७ :

भगवान् श्री कृष्ण और उनका लीला-क्षेत्र ब्रजमण्डल

पो० श्री कंठ मणि शास्त्री, कांकरोली

श्री कृष्णावतार—वेद वेदान्त प्रतिपाद्य परम तत्त्व, सच्चिदानन्द पूर्ण पुरुषोत्तम का भक्तोद्धारार्थ आविर्भूत त्रिभुवन कमनीय स्वरूप ही श्री कृष्ण है। सर्वत्र व्यापक वह परब्रह्म जब आधिदैविक स्वरूप में स्वकीय रमणेच्छा से अग्नि के समान बहिः प्रकट होता है तब प्रमेय बल से ही ग्राह्य बनता है, अन्यथा श्रुतियाँ उसे "यदद्रेश्य मग्राह्य मगोत्र मवर्ण मचक्षुः श्रोत्रम्" कहकर ही गतार्थ हो जाती हैं। अनुग्रहपरवश वह रसतत्त्व पूर्णपुरुषोत्तम स्वकीय श्रीस्वरूपिणी अनन्त शक्तियों के साथ जब आनन्दातिरेक से अनायास क्रियमाण विभिन्न कार्यकलापों का कर्त्ता कारयिता बनता है—

"कृषिमवाचकः शब्दोणश्च निर्वृति वाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म "कृष्ण" इत्यभिधीयते॥"

की परिभाषा में आता है। सर्वत्र अनुस्यूत कृष्ण की सत्-चित्-आनन्द की अलोक सामान्य संयुक्ति ही श्री सहित कृष्ण श्री कृष्ण रूप में आविर्भूत होती है, और इसका एकमात्र प्रयोजन भक्तों का मानसिक निरोध सम्पादन ही होता है।

भगवन्निश्वासात्मक वेद चतुष्टय की समस्त श्रुतियाँ संभूय अचिन्तयानन्त शक्तिशाली अद्भुत कर्मा अतएव विरुद्धसर्वधर्माश्रय ब्रह्म का ही प्रतिपादन करती हैं। जिनमें "सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म" से लेकर "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता", और "सर्वतः पाणिपादान्तं" "सर्वतोक्षिशिरोमुखं" आदि तटस्थ और स्वरूप प्रतिपादक सभी लक्षणों का समावेश हो जाता है। वैसे तो यह "रसो वै सः" रसतत्त्व आध्यात्मिक दिव्य अक्षर स्वधाम में ही रमण करता है, पर भक्तेच्छोपात्तरूप होने के कारण दिव्य देश-काल के वातावरण में जगत् में भी अपनी आधिदैविकता का साक्षात्कार कराने के लिए भी पूर्ण क्षमता रखता है। ऐश्वर्यादि षट्-धर्मों के अभिव्यंजन, समस्त कलाओं के समवाय का परिदर्शन अथच "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्" की अप्रतिहत सामर्थ्य का परिचय भगवान् श्री कृष्ण के नरलोक मनोहर स्वरूप में ही होता है। परब्रह्म का अनुभव, दर्शन, अवतरण, आविर्भाव या साक्षात्कार प्राकट्य आदि यच्च यावन्मात्र शब्द जगदुद्धारक भगवान् श्री कृष्ण के स्वरूप गुण-लीलाओं में समाकर साभिप्राय होते हैं।

अजन्मा का जन्म, अशरीरी का शरीर ग्रहण, निराकार की साकारता आदि जैसी कुछ प्रश्नात्मक धारणाएँ तर्क प्रतिहत बुद्धि वाद के आदि काल की बातें थीं, जब तक कि श्रुति-वचनों, गीतोक्त सूक्तियों, ब्रह्मसूत्रों और भागवत की सैद्धान्तिक पदा-

वलियों का समन्वय युग नहीं आया था। ज्ञान की आदि युगीन प्रथमावस्था में परतत्त्व की ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् यह संज्ञाएँ संघर्षमयी प्रतीत होती थीं। ब्रह्म को परमात्मा, परमात्मा को भगवान् और भगवान् को श्री कृष्ण रूप में कहते मस्तिष्क पर भार सा पड़ता था। पर जैसे ही कर्म ज्ञान भक्ति के उत्तरोत्तर प्रकाश की किरण फूटती गयीं आस्तिक जगत् ने।

"वदन्ति तत् तत्वविदः तत्वं यज्ज्ञान मव्ययम्।
ब्रह्मेति परमात्वेति भगवानिति शब्दते॥"

और

"एते चांशकलाः पुसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं"...भाग०

के रूप में उसके मंजुल दर्शन कर आत्मा को पावित किया, जो संशयों का अपाकरण, प्रश्नों का समुचित उत्तर अथच वाद-विवाद का सुन्दर समाधान था।

भगवदवतार को लोक-भाषा में जन्म-धारण भी कहते हैं, पर भगवान् का यह जन्म उनके कर्म, लीलाएँ दिव्य और सर्वातिशायी होते हैं। विरुद्ध सर्व धर्माश्रय परब्रह्म के यह जन्म, कर्म, गुण, प्राकृत और अप्राकृत दोनों होते हैं। अप्राकृत तो इसलिए कि जड़ात्मिका भौतिक प्रकृति का इन पर कोई प्रभाव नहीं, प्राकृत इसलिए कि वे सब भगवान् की आनन्दाकारिणी स्वीय प्रकृति से ग्रहीत होते हैं। "प्रकृति स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्म-मायया" और यह दिव्य प्रकृष्टाकृति प्रकृति—

"भूमिरापोनलोवायुः खं मनो बुद्धि रेवच।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा॥"

इस गीता-वाक्य द्वारा भगवतास्वयं निर्दिष्ट है।

सांसारिक जीवात्मा के समान प्रतिक्षण क्षीयमाण शरीर न होकर भगवान् वपु आनन्दमय रसमय होता है, विषव्ययाकुल बहिर्मुख इन्द्रियाँ न होकर उनका करण कलाप अन्तर्मुख, चिन्मय और आनन्दन होता है। चंचल अवितृप्त मन न होकर सुस्थिर एवं सत्य संकल्पात्मक होता है। वह "श्रोत्रस्य श्रोत्रं, मनसो मनो यद् वाचोह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषः चक्षुः" होता है। गीता की परिभाषा में—

"सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च॥"

के रूप में व्यक्त होकर विरुद्ध सर्व-धर्मों के आश्रय रूप में सामने आता है। वह न तो प्राकृत है और न प्राकृतेन्द्रिय ग्राह्य ही। उसके लिए गुड़ाकेश की भाँति "दिव्यं ददामि ते चक्षुः" की योग्यता अपेक्षित होती है।

प्रश्नोपनिषद् में आत्मा की सोलह कलाओं का उल्लेख कर "उसे षोड़श कला पुरुष" कहा गया है–(१) प्राणों की प्राणन शक्ति, (२) श्रद्धा की प्रतिष्ठा, (३) आकाश की व्यापकता, (४) पवन की पावनता, (५) तेज की अप्रतिहत शक्ति, (६) जल की आप्यायकता, (७) पृथ्वी की धारणा शक्ति जहाँ उसके विराट् स्थूल रूप का प्रतिष्ठान करती हैं, (८) इन्द्रिय और (९) मन की करणता, (१०) अन्न की सर्वबीजता (११) बल की प्रतिष्ठा, (१२) तप, (१३) मन्त्र, (१४) कर्म, (१५) लोक और (१६) नाम के तत्तद् गुण कर्म स्वभाव भगवान के सूक्ष्म आध्यात्मिक विग्रह का साक्षात्कार

कराते हैं। गीतोक्त अष्टम प्रकृति "अहंकार" की सात्विकी शुद्ध सुदृढ स्थिति भगवान् के उस लोकातीत मनोज्ञ रूप को प्रकट करती है, जो—

"यस्मात् क्षर मतीतोहं अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥"

के रूप में प्रतिफलित है। यह "अहं" तात्विक सत्ता का आध्यात्मिक आधिदैविक पक्ष है, जिसका अन्य सहचर "ममत्व" है और जिसके बिना अवतार की सम्भावना ही नहीं की जा सकती। यही 'अहं' और 'मम' तत्त्व का सांसारिक रूप अहंता ममता है जो यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, देहाध्याय के सम्पर्क से जीवों को बन्धनकारी माना गया है। सांसारिक क्षुद्र अणु से लेकर यह व्यापक ईश्वरीय परम-तत्त्व तक समाया है। प्रापंचिक अहंता ममता विकृत, सीमित, कालबाधित और क्षुद्र है; वहाँ ब्राह्मी अहन्ता ममता दिव्य देश-काल गुणातीत और अविकारी है। पारमार्थिक-सत्ता रूप में इन दोनों का अस्तित्व न होता तो ईश्वरावतार की कल्पना ही नहीं हो सकती थी? भगवद्गीता के "तदात्मानं सृजाम्यहं", "संभवामि युगे युगे", "कालः कलयतामहं", "मम तेजोंश सम्भवम्", "प्रकृति विद्धि में पराम्" आदि वाक्य इसी की पुष्टि करते हैं। और यही कारण है कि परब्रह्म परमात्मा अवतार धारण करता है। यह ईश्वरीय 'अहंता' 'ममता' पूर्णावतार और उनके समक्ष अन्य अवतारों के कार्य में तो अधिकतया दृष्टिगोचर होती है जब वे स्वयं लीला-नाट्य करते हुए—

"सकृदेव प्रपन्याय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥" —वा० रा०

× × ×

"तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोयं मे व्रत आहितः॥"—भाग०

इत्यादि वाक्य प्रणत जनानुग्रहकातर हो कर श्री मुख से उच्चारित करते हैं। भगवान् के अंशावतार, कलावतार, पूर्णावतार धारण करने की यही मूल भित्ति है। जहाँ जब जसी जितनी आवश्यकता होती है वे प्राकट्य लेते हैं, विविध कार्य-कलापों द्वारा विश्व की उत्पत्ति, स्थिति, संहृति का आयोजन करते हैं, और अपने मनो-मुग्धकारी नाम-गुण-कर्मों से स्वकीय आनन्द को निरानन्द जगत् में प्रतिष्ठित करते हैं। एक स्थान पर उपनिषद् में कहा गया है—

"स एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगात् वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
उपैति चान्ते विश्व पादौ स देवः स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु॥"—श्वेता०

इस मन्त्र में भगवान् की रूप-लीला और नाम-लीला दोनों का मौलिक वर्णन है। कहा गया है कि "परोक्षतया निर्दिष्ट जो (यः) निरस्त साम्यातिशय त्रिविध द्वैत वर्जित (एकः) वर्णनातीत (अवर्णः) होकर भी स्वकीय विविध विचित्र अप्रत-र्क्य योगमाया शक्तियों के साहचर्य से या उन्हें साथ लेकर (बहुधा शक्तियोगात्) आनन्द रसमय अद्भुत आकारों को (वर्णाननेकान्) धारण करता है। (दधाति) और यह सब इस लिए कि उसमें असंख्य जीवों के अनेक पुरुषार्थ, अनन्त कामनाएँ,

और न जाने क्या-क्या भरा हुआ है जो ये "यथामां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहं" के अनुसार सर्वकाम होकर प्रणत जनों के मनोभिलषित पूर्ण करता है, और जो भक्तों के लिए "गतिर्भर्ताप्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्" सभी रूप में निहितार्थ धरोहर है। अपने चैतन्य गतिशील ब्रज-लीला क्षेत्र में अनुग्रह परायण होकर आत्म-रमण करता है। (उपैति चान्ते विश्वम् आदौ) और इसी प्रकार जो वाक् सृष्टि में व्यावहारिक रूप धारण कर विविध नाम-लीला का विकास करता है, हम लोगों को शुभ प्रेरणा से सदा संयुक्त करता रहे, अपने चरित्र के प्रति आकृष्ट कर प्रापंचिक पदार्थों से हटाकर हमारे मानस का निरोध करता रहे।"

भगवान् का स्वरूपावतार कृत, त्रेता, द्वापर इन्हीं तीन युगों में होता है, वे ऐश्वर्यादि षट् गुणों में से क्रमशः ज्ञान-वैराग्य द्वारा सत्ययुग में, यश श्री के द्वारा त्रेता में, और ऐश्वर्य-वीर्य द्वारा द्वापर में धर्म-परिरक्षा करते हैं, जिसके अनुसार उन-उन युगों में तादृश चरित्रों का परिदर्शन होता है। इन ६ धर्मों में से किसी धर्म के अवशिष्ट न रहने से अथच संरक्षक के अभाव में कलि में धर्म की ग्लानि होती है और जन अभद्र रुचि होकर केवल स्वार्थ-परायण हो जाते हैं। कृत युग में केवल सत्व से, त्रेता में रजोगुणयुक्त सत्व से, द्वापर में सत्वसम्बन्धाकांक्षी रज तम से धर्म का परिरक्षण हुआ करता है। कलि में न तो सत्व अवशेष रहता है, और न तत्सम्बन्धित अन्य गुणों का, एतावता उस समय धर्मग्लानि सहज है। सदाचरण, सहत्कृपा, भगवत्प्रेरणा आदि से तामस जन तम से निकल कर रज में, रज से निकल कर सत्व में और सत्व से निकल कर जब निर्गुणता में परिनिष्ठित होते हैं, तब गीता की "निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" की स्थिति आती है। दयामय श्रीहरि के अनुग्रह से निःसाधन जीवों को ऐसी स्थिति सहज ही प्राप्त हो जाती है, उनका गुणों से सहसा उद्धार हो जाया करता है। यह सौभाग्य अधिकांश लीला श्रवण और दर्शन चिन्तन से अधिगत होता है जैसा कि आगे कहा जायगा।

अवतार-प्रयोजन—अखिल विश्वकारण परमात्मा के अवतार ग्रहण का प्रयोजन तो मुख्यतः उनकी अज्ञेय इच्छा है, आत्मरमण ही उनका स्वभाव है, पर शास्त्र में वे स्वंय इस प्रकार भी निर्देश करते हैं—

> "एतदर्थोवतारोयं भूभार हरणाय च।
> संरक्षणाय साधूनां कृतोन्येषां वधाय च॥
> अन्योपि धर्म रक्षायै देहः संभ्रियते मया।
> विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित्॥"—भाग०

(१) भूभार-हरण, (२) साधु-संरक्षण, (३) दुष्ट-निराकरण, और (४) भक्ति-प्रवर्तन। इन प्रयोजनों में प्रथम तीन तो सर्वविदित हैं, जिनमें धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश भी आ जाता है, पर चतुर्थ प्रयोजन भक्त कुन्ती के शब्दों में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। प्रार्थना में उन्होंने कहा है—

> "तथा परम हंसानां मुनीनां अमलात्मनाम्।
> भक्तियोग-वितानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः॥"—भाग०

प्रकृति से सम्बन्ध होने के कारण प्राकृतिक गुणों के आधार पर जगदीश्वर

के अवतार कार्य में (१) दुष्ट-निराकरण तामस कार्य है, (२) भू-भार हरण राजस कार्य है, (३) साधु-संरक्षण सात्विक कार्य है, और (४) भक्ति-प्रवर्तन उनका निर्गुण कार्य है जो भक्ति-मार्ग की दृष्टि में सर्वोपरि गिना जाता है।

भगवान् के अवतार धारण के चारों प्रयोजन स्वतन्त्र और उनकी इच्छानुसार युगपत् और एकदा भी चलते रहते हैं। एक प्रयोजन से अन्य की सिद्धि नहीं हो सकती। केवल दुष्ट-विनाश से भू-भार का निरास नहीं हो सकता, क्योंकि पुनः-पुनः उनकी उत्पत्ति होते रहने से तादृश स्थिति आती ही रहती है। यदि इसी दुष्ट-विनाश के लिए भगवान् अवतार धारण करें तो उनकी दृष्टि में दुष्टों का कोई महत्त्व नहीं है। भगवदिच्छा से इनकी उत्पत्ति भी असम्भव कर दी जाय तो सर्व-मुक्ति-प्रसंग आ सकता है, और फिर लीला का महत्त्व ही नष्ट हो जाता है। अतः दुष्ट-विनाश के साथ भू-भार हरण भी एक अन्य प्रयोजन सिद्ध होता है। संरक्षण भी भगवदवतार का एकमात्र प्रयोजन नहीं, क्योंकि एक बार इस कार्य को पूर्ण कर देने पर असदुपद्रव से वही आपत्ति पुनः आ सकती है। अतः सद्बुद्धि के बाधक असदों का विनाश करना और साधु पुरुषों का संरक्षण दोनों ही प्रयोजन सिद्ध होते हैं। धर्म-रक्षा और अधर्म-विनाश दोनों की भी यही स्थिति है। अतः अवतार के सभी प्रयोजन मुख्य हैं जो भगवान् के अंश कलावतार पूर्णावतार आदि के द्वारा यथायोग्य सम्पन्न होते हैं। धर्म-स्थापन के अनन्तर भक्ति-प्रवृत्ति तो उनके पूर्णावतार का मुख्य प्रयोजन है, जो सब का फल और उनके स्वरूपानुरूप निर्गुण कार्य है। जिसमें वे दोष-निरसन पूर्वक गुणाधान के साथ जगतीतल में आनन्दमयता का साम्राज्य स्थापित करते हैं।

श्री कृष्णावतार का वैशिष्ट्य—अवतारों के मुख्य कार्य का दर्शन उनके सामयिक चरित्रों से होता है। प्राधान्येन उनका व्यपदेश किया जाता है। बुद्धावतार में केवल धर्म-रक्षा ही प्रयोजन है तो कल्कि में अधर्म-निवृत्ति ही। परशुरामावतार का प्रयोजन दुष्ट-निग्रह है तो बलराम के कार्य में भू-भार का हरण। पृथुल विक्रम पृथु अवतार में सत्परिपालन लोचन-गोचर होता है। भगवान् श्री कृष्ण के स्वरूप में तो सभी प्रयोजन स्पष्ट दीखते हैं। जहाँ वे अन्य कार्य अपने व्यूह-स्वरूपों से करते हैं, वहाँ भक्ति-प्रवृत्ति, प्रपत्ति-स्थापन और शरणागत-परित्राण तो इनके चरित्र में पदे-पदे सामने आते रहते हैं, उनकी कौनसी ऐसी लीला है जो बहुअर्थसाधिका नहीं है? अन्य अवतारों में जहाँ अंशत्व की परिस्फूर्ति होती है। श्री कृष्णावतार में पूर्णता का दर्शन। अन्य अवतारों में जहाँ क्वचित्क अज्ञान का सम्पर्क भी विदित हो जाता है, वहाँ यहाँ अखण्ड ज्ञान का समुद्र हिल्लोलित होता दीखता है। इसी प्रकार उनके स्वरूप में अनन्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री और वैराग्य के भी मूर्तिमान दर्शन होते हैं। श्री कृष्ण की यावन्मात्र लीलाएँ इन्हीं का विज्ञापन करती हैं। अतः भगवान् श्री कृष्ण ही अंशी, अवतारी, सकल कलानिधान पूर्ण पुरुषोत्तम हैं जो स्वेच्छया जगदुद्धारार्थ सारस्वत कल्प के अट्ठाईसवें द्वापर युगान्त में प्रादुर्भूत हुए। इस भगवद्वतार में नीचे लिखी तीन बातें सहज रूप से स्पष्ट परिलक्षित होती हैं।

(१) ऐश्वर्य-वीर्य-यश आदि छै गुणों की निरवधि परिपूर्णता और उनका

सहज विलास।

(२) सर्वलीलाओं की लोकोत्तरता के साथ स्वरूपात्मक सौन्दर्य की पराकाष्ठा और आत्मानन्दनमयी रसता।

(३) असाधनों को भी साधन बनाकर भक्तानुग्रह कातरता और सर्वोद्धार।

भगवान् श्री कृष्ण के यह धर्म और शक्तियाँ सहज हैं, परिपूर्ण हैं, अनन्त और त्रिकालाबाधित हैं। नरलीला में वे इनका बहुत कुछ संकोच करते हैं फिर भी वे जहाँ-तहाँ स्वाभाविक रीत्या प्रकट हुए बिना नहीं रहते। इसे चाहे ईश्वरता कहा जाय चाहे उनका असामर्थ्य, उनकी पूर्णता की झलक झलके बिना नहीं रहती। लोक सामान्य शैशव और बाल्यावस्था में भी किये हुए पूतना मारण, शकट भंजन, कालिय दमन, गोवर्द्धनोद्धारण, आदि चरित्र पामर जनों को भी अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहते। भागवत में वर्णित लीलाओं के श्रवण से विदित होता है कि किसी चारित्रिक अद्भुतता में जहाँ भक्तों को, प्रभु की ईश्वरता का बोध हुआ नहीं कि भगवान् तत्काल ही वैष्णवी माया का वितान कर देते हैं। संक्षेप में भगवान् श्री कृष्ण इस प्रकार के विमल चरित्रों द्वारा ही अपनी रसमयता को प्रकट करते हैं।

इस प्रकार जहाँ उनके चरित्र इत्थंभूतगुण हैं, उनका स्वरूप भी अतिशय विलक्षण और अनुपम सकल सौन्दर्य का निधान है। कहा गया है—

"स्निग्ध स्मितेक्षितोदारै र्वाक्यै विक्रम लीलया।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वांग रम्यया॥"

× × ×

'नित्यं निरीक्षमाणानां तदपि द्वारकौकसाम्।
न वितृप्यन्ति हि दृशो श्रियोधामांग मच्युतम्॥"

× × ×

"यन्मर्त्त्य लीलौपयिकं स्वयोग मायाबलं दर्शयता ग्रहीतं।
विस्मापनंस्वस्य च सौभगर्द्धः परं पदं भूषण भूषणांगम्॥" भाग०

जो स्निग्ध स्मित पूर्वक मधुर निरीक्षण के द्वारा, सत्य प्रिय उदार संलाप द्वारा, अपनी सुललित पराक्रम-लीला द्वारा अथच सर्वांग मनोहर शोभा को भी तिरस्कृत कर देने वाली आकृति के द्वारा मनुष्यालोक को आनन्द-निमग्न कर देते हैं, प्रतिदिन और प्रतिक्षण जिनके श्रीधाम अंग-सौष्ठव का निरीक्षण करते रहने पर भी द्वारका निवासी अपने नेत्रों की परितृप्ति नहीं कर पाते, देखते-देखते अघाते नहीं हैं, और जो स्वकीय योगमाया-बल को प्रत्यक्ष कराने के लिए मनुष्य-लीला के अर्थ परिग्रहीत परम धाम आसेचनक भूषणों को भी भूषित कर देने वाले स्वरूप सौन्दर्य (लावण्य) को देखकर स्वयं भी आदर्श के सन्मुख आश्चर्य-चकित रह जाते हैं, उन भगवान् श्री कृष्ण की त्रिभुवन कमनीय शोभा का क्या वर्णन किया जा सकता है? संक्षेपतः वही सौन्दर्य जो लोकोत्तर अप्रतिम और अनिर्वचनीय है, श्री कृष्ण के स्वरूप में विश्व प्रपंच का शाश्वत कल्याण करता है।

लीला और उसका फल—प्रश्नोपनिषद् में वर्णित परम चैतन्य की षोड़श कलाऐं पूर्णता और आनन्त्य के साथ अन्ततोगत्वा जहाँ कल्याणमय समष्टि में

विकसित होती है, वहीं परम-तत्त्व स्वेच्छा माया-शक्ति से अभिलषित रूप धारण करता है। वह "मोदः पूर्वपक्षः प्रमोद उत्तरः पक्षः आनन्द आत्मा ब्रह्म पुच्छं" प्रतिष्ठा से आगे बढ़कर" "रसो वै सः" की स्थिति में साकृति होता है, 'श्री कृष्ण' 'देवकीनन्दन' यशोदानन्दन 'नन्दनन्दन' कहलाने लगता है, शुद्ध सत्वात्मक वसुदेव से ब्रह्मविद्या देवकी में प्रादुर्भूत होता है, पारमार्थिक वसु धन का अंगज बनता है, धरा यशोदा को आल्हादित करने के लिए गोकुल में मर्यादा-पुष्टिमयी बाल-लीलाओं का अनुसरण करता है। इस प्रकार उसकी मोदप्रमोदमयी उभय स्थितियों का साक्षात्कार होता है। सर्वस्व समर्पण की प्रतिमूर्तिएँ 'चर्षिणी' शब्द वाच्य ऋक स्वरूपा गोप कुमारिकाओं के साथ वह माधुर्यानुभूति में पुष्टिस्थल वृन्दावन में अखंड रास-क्रीड़ा करता है, अद्भुत चरित्रों द्वारा समानशीलव्यसनी गोप-कुमारों और यादव-बन्धुओं के साथ ऐश्वर्य-शालिनी मथुरा राजधानी की मर्यादा-लीलाओं का दर्शन कराता है, ब्रजमण्डल और उसके बाहर भू-भार स्वरूप असुरों का निकन्दन करता हुआ व्यूह-कार्य द्वारा प्रवाह लीलाओं का सम्पादन करता है। इस प्रकार वह यथाधिकार सगुण और निर्गुण चरित्रों की सहज चेष्टा से विश्व के हृदय स्थानीय ब्रज-मण्डल को आनन्दसंप्लव में विलीन कर लेता है। व्यवहारार्थ अपने से पृथक् विश्व के कण-कण में रमण करता हुआ भी उसके बाह्य विग्रह में भी सर्वतोभावेन व्याप्त हो जाता है।

गूढ़ परब्रह्म भगवान् श्री कृष्ण के सभी चरित्र कौतूहल समन्वित, विनोद-भरित, रसपरिप्लुत होते हैं। शुद्ध सात्विक अन्तःकरण पर उनका सीधा प्रभाव पड़ता है। क्षण भर भी मन को सावधान कर श्रोत्रांजलि के द्वारा उस कथा-रस का एक बार भी पान किया जाय, तो वह स्वयं अपने प्रति साधक की लालसा को जागृत करने लगता है। "सद्यो हृद्यवरुद्धयतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् का यही स्वारस्य है।

यह चरित्र अनायास क्रियमाण क्रीड़ाएँ हैं, जो मुख्यतः दोषनिरासक एवं गुणधायक हो कर भक्तजन-हृदयपटल पर प्रतिफलित होती हैं। असत्संसर्ग जनित शारीरिक असदाचरण, इन्द्रियों के वैयग्य और मानसिक चांचल्य से जीव की भगवच्चरित्रश्रवण के प्रति रुचि नहीं हो पाती। अथ काम के प्रति लेलिहान तृष्णा के कारण जीवात्मा सांसारिक आसक्ति में फँस कर विमुख हो जाती है, भागवत-चरित्र के प्रति अनुराग होने का उसको अवसर ही नहीं आ पाता। देह गेहादि संसार-विषयिणी आसक्ति (प्रमाद) अथच शुश्रूषा के प्रति अनुरक्ति का अभाव (अ-रति) यह दो प्रबल दोष हैं जिनसे मानस-निरोध में महती बाधा पड़ती है। पर इसके विपरीत सत्संग के द्वारा जीव को यदि थोड़ा सा भी लीला-श्रवण का सौभाग्य मिल जाता है, उदरस्थ औषध के समान कर्णगत भगवदंश अपना प्रभाव प्रकट करने लग जाता है, आनन्दमय परमात्मा कल्याणकारिणी लीला विश्रुति शाश्वत रसपान के लिए जीवात्मा को आकृष्ट करने, उसके विक्षुब्ध मस्तिष्क में चिर-शान्ति की सरिता बहने लगती है। उसको सांसारिक अन्यतम विषम विषय-विभीषिकाओं की बाधकता का भान होने लगता है। एतावता जीव प्रापंचिक तृष्णा के मोह-जाल से विमुक्ति पाकर स्वस्थता का अनुभव करता है।

"अः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति।"— भाग०

द्वितीय दोष, भगवच्चरित्र श्रवण के प्रति अनुरक्ति का अभाव (अ-रति) है जो अन्तैश्वर्यशाली "लक्ष्मीसहस्त्र लीलाओं से सेव्यमान कलानिधि प्रभु के अचिन्त्य माहात्म्य और तज्जन्य स्वोपकारता के परिज्ञान में अरुणोदय से तमःपुंज की भाँति क्रमशः स्वयं ध्वस्त होता चला जाता है। भगवान् स्वकीय लीला द्वारा भक्त के मनोमन्दिर में हृद्य मधुर स्वरूप की स्थापना करते और अन्यासक्ति से उसको बचा लेते हैं। अथान भक्त बहिः प्रतीयमान यावन्मात्र विश्व को ईश्वरीय विग्रहान्तः पाती देख कर आश्चर्य-चकित रह जाता है। अन्यासक्ति का उसे प्रसंग नहीं आता। स्तन-पान करते समय भगवान् बाल-कृष्ण ममतामयी यशोदा को अपने रुचिरस्मित जृंभमाण मुखारविन्द में ही निखिल विश्व की झाँकी दिखा कर भी बाल-सुलभ चेष्टा द्वारा उन्हें स्वासक्त कर लेते हैं—

"सावीक्ष्य बीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् संजात वेपथुः।
संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सु विस्मिता॥"—भाग०

बालक के अद्भुत चरित्रावलोकन से माता यशोदा भी वेपथुमती हो जाती है, मृगशावाक्षी के विशाल लोचन काम नहीं देते, उनका निमीलन हो जाता है, अनन्त महिमा के आगे ज्ञान टिक नहीं पाता। इस प्रकार अन्य लीला-चरित्रों द्वारा भगवत्कथा-श्रवण के प्रति उदीयमान अरति का समूल घात होता है।

उक्त 'संसारासक्ति' और 'श्रवणविराग' इन दो महान् दोषों की निवृत्ति के अनन्तर भगवल्लीला कतिपय गुणों का आधान करती है। वह शुद्धि-विधायिका होने के कारण अन्तःकरण को काम-क्रोधादि से विरहित कर निर्मलता प्रदान करती है। अनन्तगुणैकधामा भगवान् के अन्तःस्थ होने पर फिर किन गुणों का प्रतिफलन न होगा? पूतनासुपयः पान, शकट-तृणावर्त-मोक्ष आदि लोकातीत चरित्रों का श्रवण अथच अनन्त अपरिमित सामर्थ्य के द्योतक नामों का स्मरण भागवत गुणों की सर्व-प्रथम अभिव्यक्ति करते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि भगवान् श्री कृष्ण की लीलाएँ मानव-हृदय की मोदमयी कोमल भावनाओं की अभिव्यंजिका हैं। सत्वसंशुद्धि से जहाँ उनके विश्व-वंदित चरण-कमलों में सहज दास्य का समुदय होता है, भक्ति, रति, प्रेम, स्नेह के परिपाक से वात्सल्य एवं दाम्पत्य का विलास भी होने लगता है। भगवान् और भगवदीय भक्तों के प्रति सख्य-भाव की भी जागृति। ज्ञान के सहारे उनके परिणामों का निर्वचन नहीं किया जा सकता। पूर्णपुरुषोत्तम भगवान् श्री कृष्ण की यह सब लीलाएं मनोहारिता, अनुपमता और वैचित्र्य में स्वयं वर्णनातीत होकर सहृदय हृदयैक संवेद्य रूप धारण कर लेती हैं। वे स्वभावतः दोषतिरोधायक और गुणाधायक होकर स्वरूपानन्द फलप्रसविनी हो जाती हैं।

"यच्छृण्वतोपैत्यरतिर्वितृष्णा, सत्वं च शुद्धयत्यचिरेण पुंसः
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यम्॥" भाग०

इस प्रकार लीला-श्रवण से भगवान् में रति का समुदय होता है, भागवत में एक स्थान पर कहा गया है—

"भगवान् ब्रह्म कात्स्न्र्येन त्रिरवीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रति रात्मन्यतो भवेत्॥"

सकलजन्दु:खतापहारी स्वयं भगवान् भक्त के मन में रति का उदय करते हैं। ज्ञान-क्रिया उभय कांडात्मक वेद का तात्पर्य ही परमात्मा में रति (अनुराग) का उदय करना है। यह रति लौकिक रति नहीं है, आध्यात्मिक भक्ति है। "श्रद्धारति-र्भक्ति रनुक्रमिष्यति" इस वाक्य में जिस क्रम का वर्णन है उसी क्रम से यहाँ उसकी उत्पत्ति अभिप्रेत है। दृश्यमान स्वरूप में आधिभौतिक भक्ति 'श्रद्धा' रूप में कही जाती है, इस श्रद्धा से जब आधिदैविकी माहात्म्य ज्ञान-पूर्विका भक्ति का सम्मिलन होता है तब वह आध्यात्मिक शब्दवाच्य हो जाती है। रूपान्तर में प्रथम अवस्था प्रेम, द्वितीय आसक्ति और तृतीय व्यसनावस्था की द्योतक है।

"ततः प्रेम तदासक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत्"— भक्तिवर्द्धिनी

लीला-भेद से स्वरूप-भेद धारण करने वाले नरलीलावपु भगवान् श्री कृष्ण जिस प्रकार यदुकुल चूड़ामणि, वासुदेव देवकीनन्दन हैं, उसी प्रकार नन्दनन्दन यशोदोत्संग ललित भी हैं। दोनों के स्वरूप में मूलतः कोई अन्तर नहीं है, अन्तर है तो लीला के वैचित्र्य से। कार्य-शक्ति की अभिव्यक्ति अनभिव्यक्ति से भगवान् श्री कृष्ण अपने चतुर्व्यूहों के समष्टि भाव अद्भुत कर्तृत्व तथा विरुद्ध सर्वधर्माश्रयता से लोकवेदातीत पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। वे "यमेवैषवृणुते तेन लभ्यः" की दृष्टि में साधनों से अप्राप्य, स्वेच्छा अनुग्रह से प्राप्य हैं, सुलभ हैं। अपने दिव्य जन्म कर्म अभिधान से भक्तों के देह प्राण इन्द्रिय अन्तःकरण जीवात्म स्वरूप से उनके प्रीणनार्थ रमण करते रहते हैं। तादृशी लीलाओं का आश्रय लेते हैं। "भजते तादृशीः लीला याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्" जिससे प्रणतजन उनके अनुरागी-जन बन जाते हैं। गीता के शब्दों में—

"तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्ति ज्ञान निर्धूत कल्मषाः ॥"

की स्थिति को प्राप्त करते हैं। और भागवत की परिभाषा में—

"तन्मनस्का स्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।
तद् गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥"

जैसी पावन अवस्था को अलंकृत करते हैं। कहना न होगा, यह परमोच्च अवस्था प्रभु के लीला-गान, अनुकरण और अहर्निश स्मरण से ब्रज-सीमन्तिनियों को ही प्राप्त हुई थी जो लोकवेद की मर्यादा का अतिक्रमण कर अकुतोमय प्रेममार्ग की पथिक बनीं थीं।

लीलाओं का आनन्त्य–रस रासेश्वर भगवान् श्री कृष्ण की यावन्मात्र लीलाएँ जैसे नित्य हैं उसी प्रकार निरतिशय आनन्द प्रदायिनी हैं। उनके अवतार गुण कर्म नाम स्वरूप सभी एक से एक विचित्र हैं, अनुपम हैं रस-भरित हैं। प्रभु के अंशावतार आवेशावतार आदि के कार्यों में एक धारावाहिकता होती है। उनमें लीलावैचित्र्य का अनुभव नहीं होने पाता, वे सीमित से संकुचित से प्रतीत होते हैं, पर पूर्णावतार के लीला-वैचित्र्य की सहस्त्रशः प्रस्फुटित किरणें अज्ञानध्वान्त को ध्वस्त कर प्रपंच को दिव्य आत्मीयता से आलोकित करती रहती हैं। "ये यथा माँ प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" का सामूहिक अर्थ पूर्णावतार में ही व्यक्त होता है। विचित्रता का यह मूल स्रोत भक्तों की गुणमयी और

निर्गुण भावना से टकरा-टकरा कर स्रोतस्विनी का रूप धारण करता चलता है। प्रभु के तत्तदनुरूप मायाविडम्बनात्मक आयोजन, अप्रतिहत ऐश्वर्यादि गुणों के साम्य वैषम्य, अथवा सच्चिदानन्दमयी क्रमिक आंशिक, पूर्णत्व की संपृक्ति से अनुमेय आनन्त्य देश-काल की परिधि से बाहर हो जाते हैं, उनकी गणना नहीं हो सकती। अधिकारी भेद के अन्तर्गत भक्त-अभक्त विद्वेषी आदि के रूप में इसमें जिस विपुलता का समावेश होता है उससे भगवान् का यह लीलाक्षीराब्धि आनन्द-पवन से सर्वदा तरंगायित होता रहता है। हृदय शेषशायी लक्ष्मीसहस्र लीलासेव्यमान कलानिधि पूर्ण पुरुषोत्तम इसमें विराजमान रहते हैं।

अनायास स्वेच्छया क्रियमाण भगवान् श्री हरि की विनोदमयी क्रीड़ाएँ 'लीला' कहलाती हैं। वे उनके पूर्णत्व आत्मकामत्व की द्योतक, भक्ति के हृदय-कमल की विकासक और अनिर्वचनीय आनन्द-सौरभ की प्रसारक होती हैं। उनकी लीलाओं में कितनी ही स्वरूपान्त पातिकी मूल लीलाएँ हैं, तो कितनी ही अवतार सामयिक वयोवस्था निरूपक, जिन्हें देश-काल के अंगीकार से व्यवहारिकता प्राप्त होती है। ज्ञान पक्ष की गौणता के साथ भक्ति पक्ष में जब गूढ़ नराकृति परब्रह्म श्री कृष्णावतार में भक्तजनमनः सन्तोषार्थ स्वरूप धारण करते हैं, देश-काल वय के अनुरूप बाल, कुमार, प्रौढ़, गोकुल, मथुरा व्रज द्वारका आदि की लीलाओं का प्राकट्य होता है।

लीला और नाम के भेद से स्वरूप का भेद भी गिना जाता है, जो तत्वतः न होकर भावना पर आधारित होता है। पर इसे स्वीकार किये बिना छुटकारा नहीं है, और इसलिए "रूप नाम विभेदेन जगत क्रीड़त्यो यतः" कहा जाता है। त्रिगुणात्मक विभिन्न अभिव्यक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की बात छोड़ देने पर भी भगवान् के अवतारों लीला-भेद से स्वरूप-भेद दृष्टिगोचर होता ही है। लोकमर्यादा पुरुष भगवान् श्री राम और पुष्टि पुरुष श्री कृष्ण, और उनकी सहचरी आद्यशक्ति जगज्जननी जानकी, रसरासेश्वरी वृषभानुजा श्रीराधा या भगवत्पत्नी रुक्मिणी में परमार्थतः कोई भेद नहीं है फिर भी श्री कृष्ण न तो जानकीजानि है और न श्रीराम रुक्मिणी-वल्लभ। स्पष्टतः स्वरूपभेद दोनों में परस्पर संमिश्रण नहीं होने देता। रामावतार की ताड़का ताड़का है, कृष्णावतार की पूतना पूतना, पर श्री राम और श्री कृष्ण परमार्थतः भिन्न न होते हुए भी लीला कार्य-भेद से भिन्न रूप में दर्शन देते हैं। दोनों चरित्रों का संकलन करते हुए यद्यपि एक स्थान पर कहा गया है—

"यः पूतनामारणलब्धकीर्तिः काकोदरो येन विनीत दर्पः।
यशोदयालंकृत मूर्ति स्यात् नाथो यदूनामुत वा रघूणाम्॥"

यहाँ अर्थ (तत्त्व) की अभिन्नता के साथ नाम (शब्द) का भी अभेद है, परन्तु लीला-भेद से स्वरूप भेद यहाँ भी अपनी झाँकी दिखाए बिना नहीं रहता। तात्पर्य यह कि भगवान् की जितनी लीलाएँ हैं, उतना ही उनका स्वरूप-भेद स्वीकार करने में जो भावना-पक्ष को सौन्दर्य प्राप्त होता है, उतना ज्ञानपक्ष में नहीं। इस तरह यदि भगवान् के भक्त किसी एक लीला-स्वरूप के प्रति अनन्य आसक्ति से उन्हें भजते हैं, तो उन्हें "इत्थं भूत गुणो हरिः" के सिवाय और क्या कहा जा सकता है? भागवत में कहा है—

"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूत गुणो हरिः ॥"

देह गेहादि असद्विषयों की वासनाओं से ऊपर उठकर, गुणमयी कामना से विरहित और सर्वेन्द्रिय व्यापार-विवर्जित होकर केवल मनन-क्रिया परायण जन (मुनिजन) आत्म-रमण होते हुए भी जिनकी भक्ति से छुटकारा नहीं पा सकते, बिना किसी प्रयोजन के भी जिनकी सेवना में प्रवृत्त होते रहते हैं, वे प्रभु वास्तव में इसी प्रकार के हैं, 'उरुक्रम' होने से वे अपनी विविध ललित गतियों, चेष्टाओं से अपना अद्भुत-कर्मत्व जो प्रकट किया करते हैं। आकर्षण कर लेना उनका सहज स्वभाव है। एतावता उनकी लीलाओं का पार पाना भी कठिन है। "शेषोऽद्युनापि समवस्यति नास्य पारम्" सहस्रों जिह्वा होकर भी उनके गुणों का गान नहीं किया जा सकता।

लीला-कार्य-विभेद से वैकुण्ठ भगवान् अंशादि चतुर्धा अवतार ग्रहण करते हैं।

१. **अंशावतार स्वरूप**—नृसिंह, राम परशुराम वासुदेव मुक्तिदाता के रूप में प्रत्यक्ष होकर सामयिक मुख्य प्रयोजन की सिद्धि करते हैं।

२. **कलावतार स्वरूप**—मत्स्य, कूर्म, वाराह बन कर सामयिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

३. **आवेशावतार स्वरूप**—वामन, बुद्ध, कल्कि होकर सामयिक समस्याओं का निराकरण करते हैं, और—

४. **विभूति अवतार स्वरूप**—नारद व्यास आदि का विग्रह धारण कर अवान्तर काल में धर्म-ज्ञान-भक्ति का प्रचार कर लोकानुग्रह का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

गो, देव, द्विज, साधु और भक्तों के ऊपर अनुग्रहार्थ पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूप में श्री हरि चतुर्व्यूह का कार्य सम्पादित करते हैं। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, संकर्षण और वासुदेव इन व्यूहों के द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम जो कार्य करते हैं वह उनके उस कार्य से अनुमेय होता है। चारों व्यूह पूर्ण पुरुषोत्तम के स्वरूप में ही अन्तर्हित होते हैं, और इनका प्रत्यक्ष कार्य-परिदर्शन श्री कृष्णावतार के चरित्र में ही होता है अतः उन्हें अवतारी कहा जाता है। शेष अवतार इसी दृष्टि को लेकर कहा गया है "एते चांशकलाः पुन्सः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।" यद्यपि भगवान् साधारण अवतारों में तावत्कार्य के लिये ही प्रकट होते हैं, पर उनकी पूर्ण पुरुषोत्तमता की झलक······ अनुग्रह का कार्य कहीं-कहीं अन्य अवतारों में भी प्रकट हो जाती है। नृसिंहावतार में दुष्ट हिरण्यकशिपु के संहार के बाद भक्त प्रह्लाद के ऊपर अनुपम वात्सल्य-प्रदर्शन इसी प्रकार है। वामनावतार में देवों की प्रयोजन-सिद्धि के अनन्तर बलि पर निग्रह के साथ अनुग्रह इसी का उदाहरण है। श्री रामावतार में शबरी के नैवेद्य का अंगकार, सेतु-बन्ध, विभीषण-शरणागति और साकेत वासियों को स्वधाम की प्राप्ति ऐसे ही अतुलित कार्य हैं जो मर्यादा के ऊपर केवल अनुग्रह परवशता (पुष्टि) से किये गये हैं। भगवान् श्री कृष्ण के चरित्र में तो ऐसे अनुग्रह के कार्य पदे-पदे लोचन-गोचर होते हैं।

धेनु-रूप धारिणी भक्त धरिणी की अभ्यर्थना पर उसका भार हटाने के लिए जब सारस्वत कल्प के द्वापरान्त में पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्ण का आविर्भाव हुआ, भूतल अलंकरण के समय तक उन्होंने विविध लीलाओं का अनुभव और प्रत्यक्ष दर्शन कराया, उनका लीला-परिकर भू-मण्डल पर अवतरित होगया। भगवान् के अन्तरंग सखा, पार्षद गोप रूप में प्रकट हुए तो स्वरूपानन्द का अनुभव करने के लिए निगम की ऋचाओं ने व्रज-सीमन्तिनियों का स्वरूप धारण किया। यावन्मात्र देवगण असुर-निकन्दन के लिए यादव-गण में आकर निवास करने लगे, तो अक्षर ब्रह्मधाम व्रज-वृन्दावन के रूप में अवतरित हो गया। यत्र-तत्र विविध चरित्रों के लिये आवश्यक परिकर भूतल पर विराजमान होगया।

सर्वगुणोपेत परम शोभन काल में प्राकट्य हो जाने के बाद कारागृह में भगवान् ने वसुदेव जी को प्रथम पुष्टि रहित मर्यादा वासुदेव स्वरूप में दर्शन दिये। अम्बुजेक्षण, चतुर्भुज, शंखगदायुदायुध अनन्त श्री विभूषित अद्भुत बालक के स्वरूप में और पूर्व दृष्ट समाधि स्वरूप में जब वसुदेव जी को विस्मय-सा हुआ भृत्यातिहर करुणामय प्राकृत शिशु (पूर्ण-पुरुषोत्तम) पुष्टिलीला रूप में दर्शन देने लगे। अतः जन्म-स्थान में उनकी मर्यादा-पुष्टि-लीला का साक्षात्कार होता है।

गोकुल में नन्दराय यशोदा के ऊपर कृपा प्रदर्शन में श्री कृष्ण अपना चतुर्व्यूह युक्त पुरुषोत्तम स्वरूप व्यक्त करते हैं। वहाँ व्यूह-कार्य और पुष्टि कार्य दोनों विद्यमान हैं। अरिष्ट···सूतिकागृह···शिशु-लीला, बाल-लीला गो-चारण, निकुन्ज-लीला, गोवर्धनोद्धरण व्रज वृन्दावन महारास में सर्वदा पुष्टि-स्वरूप से भगवान् रममाण रहते हैं।

जन्म के समय व्रजोत्सवात्मक दधि-कर्दम लीला में नन्दांगण में गो, गोप, गोपी सभी में उनके स्वांशावेश का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

पूतना-शकट-तृणावर्त-वत्सासुर-बकासुर आदि के वध में संकर्षण कार्य युक्त पुरुषोत्तम का स्वरूप परिलक्षित होता है। पूतना को मातृगति प्रदान में पुष्टि-लीला का चमत्कार सामने आता है।

यमलार्जुन भंग भगवान् का संकर्षणक व्यूह का कार्य है। नल कूवर मणिग्रीव प्रसंग से वे अनिरुद्ध व्यूह रूप में और उन पर अनुग्रह व्यक्त करने में मुक्ति-दाता वासुदेव व्यूह का कार्य सम्पादित करते हैं।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण स्वकीय बाल-लीला और कौमार-लीला में अपने मुख्य और व्यूह स्वरूप से विविध नाट्य कर भक्तों को आनन्दित करते हैं।

सर्वोद्धार प्रयत्नात्मा भगवान् श्री कृष्ण अपने रूपों से जहाँ अवस्था भेद से बाल-लीला, प्रौढ-लीला, रास-लीला आदि का नाट्य करते हैं, जो काल विभेद से परिगणित की जाती हैं। वहाँ वे देश-विभेद से भी अपनी लीलाओं में वैचित्र्य की स्थापना करते हैं।

देश-भेद से वर्गीकृत होने वाली लीलाएँ गोकुल-लीला, वृन्दावन-लीला, मथुरा-लीला और द्वारका-लीला नाम से विख्यात होती हैं। इन क्षेत्रीय भगवल्लीलाओं में भगवदभिप्रेत रूपों के अनुसार भक्त विलक्षणता का अनुभव करते हैं। प्रवाह मर्यादा और पुष्टि के भेद से उनमें भावनानुकूल आस्वाद्य तथा तारतम्य का स्वरूप दृष्टि-

गोचर हुआ करता है।

१. गोकुल में आचरित लीलाएँ मर्यादा-पुष्टि लीलाएँ कहलाती हैं। नन्द-गृह में आपका मर्यादा-पुष्टि स्वरूप अष्टावरण संयुक्त है। यह अष्ट-आवरण गीता में कथित भूमि, आप, अनल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार प्रकृति है। यह आपकी दिव्य प्रकृति (प्रकृष्टा कृति) है जो लौकिक से अतिरिक्त अतएव अप्राकृत कहलाती है। इन आठ प्रकृतियों से संयुक्त मुकुन्द चतुर्व्यूहात्मा हैं।

२. वृन्दावन में पुष्टि-लीला है। एक आदि रास है जो अविच्छिन्न है, पश्चात् जिस-जिस रसिक जीव पर जैसी करुणा होती है वैसी ही लीला का अनुभव वे उसे कराते हैं। गुरुरास में केवल श्री पुरुषोत्तम हैं, वही प्रकट रस-रूप से आविर्भूत होते हैं। अपने व्यूहावतार के कार्यों को अन्तर्हित रखते हैं।

३. मथुरा में कालयवन दाह पर्यन्त जितनी भी लीलाएँ हैं मर्यादा-पुष्टि हैं। पीछे केवल मर्यादा है।

४. द्वारका में मर्यादा-लीला है।

इस प्रकार विविध देशों में विभिन्न लीला-चरित्रों द्वारा प्रभु तत्तदधिकार-परायण जीवों का कल्याण साधन करते, उन्हें अपने स्वरूप के प्रति आकृष्ट करते और स्वरूपानन्द का दान कर उन्हें कृतार्थ करते रहते हैं।

"अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग् विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।"—गीता

श्री हरि के लीला के अधिष्ठान, स्वयं उनका कर्त्तव्य, उनके लीला के साधन और विविध लीलाएँ सभी दिव्य विचित्र अनुपम सरस और सर्वोपरि होती हैं। वे आधिदैविक स्वरूप से स्वयं उनके रममाण होकर उनकी आलौकिकता का सम्पादन करते हैं, और इस प्रकार अनायास क्रियमाण उनकी क्रीड़ाएँ स्वजनों की भव-बन्ध-विमोचनी अथवा आनन्दपर्यवसायिनी सिद्ध होती हैं।

प्रादुर्भाव-लीला—भक्तोद्धारार्थ भगवान् अवतार लेकर नित्य स्वयं-ज्योति अक्षर स्वरूप स्वधाम को जब आधिभौतिक ब्रज-मण्डल में परिणत करते हैं, सर्व-व्यापक जगन्निवास जब क्रीड़ा-केन्द्र गोकुल को पावन करने चलते हैं, अवतार-कार्य में बाधक दुष्ट देश काल के भी दोषों की निवृत्ति करते हैं। उन्हें अपनी लीला के अनुकूल बना लेते हैं।

कंस के कारागृह में दिव्य अद्भुत बालक स्वरूप प्रभु श्री कृष्ण के दर्शन कर वसुदेव उनकी इच्छा से जब गोकुल ले जाने लगे, देवकीनन्दन, यशोदानन्दन बनने का उपक्रम करने लगे निबिड़ नीरदों की भयंकर वृष्टि और आवर्त शताकुल यमुना के प्रबल प्रवाह ने उनका मार्गावरोध किया। कलि दोष को खंडित करने वाली कलिन्द-नन्दिनी होने पर भी यमानुजा होने के कारण उस में काल कृत दोषों का समावेश हो गया। जन्म के समय सर्वगुणोपेत परमशोभन काल, गोकुल में माया प्राकट्य के अनुक्षण ही सघन वर्षणात्मक प्रावृट् रूप में परिणत हो गया। माया-मोहित इन्द्र के द्वारा प्रणोदित वर्षा-काल की विकरालता से काल कृत दोष भी समुपस्थित हो गया। इस प्रकार भयावह देश काल कृत उभय विधि दोषों के उद्दाम

प्रवाह ने भगवत्कार्य में बाधा उपस्थित कर दी। जलौघ की अगाधता में प्रचंड वायुवश वेगमयी ऊर्मियों के उत्थान पतन से यमुना फेनिल होकर अपावन हो गई। त्रिदोषग्रस्त विकराल प्रवाह ने शुद्ध सत्वात्मक वसुदेव के द्वारा उह्यमान भगवान् के पथ में बाधा खड़ी कर दी। पर भगवत्प्रादुर्भाव तो इन सब विपत्तियों के विनिवारणार्थ ही हुआ करता है, सो श्री पति के चरण-स्पर्श से निर्दोष होते ही रामावतार में सिन्धुपति समुद्र की भाँति कलिन्दनन्दनी ने मार्ग प्रदान कर दिया शेषाख्यधाम स्वयं अपने फणासहस्त्र से वृष्टि का निवारण करने लगे[1]—भक्तोद्धार कार्य में आने वाली समस्त विपदाएँ तत्क्षण दूर हो गईं। किसी ने कहा है—

"विश्व का प्रकाश-पुंज पाणि में प्रदीप्त था तो—
सूचीभेद्य संतमस आकर अड़ें तो क्या ?
संसृति समुद्र का समीप दृढ़ सेतु था तो—
नीर का गंभीर क्रूर पूर उमड़े तो क्या ?
'देशिकेन्द्र' जिसका नाम लेते कट जाते फंद—
भौतिकावरोध यदि संकट टरें तो क्या ?
गोद में समोद वसुदेव उस ईश को ले—
भानु-नन्दिनी के यदि पार उतरे तो क्या ?"

इस प्रकार अक्लिष्ट कर्मा प्रभु के नन्द-गोकुल में निवास होते ही माया का स्थानान्तरित हो गया, वसुदेव सद्यः प्रसूता माया को चुपचाप लेकर मथुरा चल दिये। यशोदोत्संग-लालित वह परमतत्व स्वकीय बाल-चेष्टितों से ब्रज-परिकर को मुग्ध करने लगे। नन्द-महोत्सव में ब्रज-मण्डल उल्लसित हो गया।

नन्द-महोत्सव—सकल गुणनिधान परमैश्वर्य सम्पन्न श्री हरि के प्राकट्य से उनका लीला-क्षेत्र व्रज-मण्डल भी ऐश्वर्य-मंडित हो गया। व्रजाधीश नन्द के मन्दिर में ही क्या, समस्त गोकुल में वैभव मूर्तिमान होकर नृत्य करने लगा। महामना नन्द परमाह्लादित होकर मंगल-स्नान और महार्घ वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, वेदज्ञ विप्रों द्वारा विधिवत् पितृदेवार्चन करते हुए शिशु के स्वस्त्ययन का कार्य संपादित करने लगे। पयस्विनी, तरुणी, सवत्सा समलंकृत असंख्य धेनुओं के दान, रत्ननिकर, सुवर्णराशि और महामूल्य वस्त्राभरणों के अटम्बर सहित तिल पर्वतों के प्रत्यर्पण से ब्रज में दान की सरिता सी उमड़ पड़ी। जहाँ-तहाँ सूत मागध-बन्दी-जन यशोगान से, गायक संगीत के मधुर आलापों से द्विजवृन्द सौमंगल्य श्रुति-मधुर श्रुति-वचनों से जय-जयकार करने लगे। भेरी पटह शंख वीणा झाँझ आदि विविध वाद्यों के मनोहर कलरव से नन्दांगण में अनुपम आनन्द की वर्षा सी होने लगी, गृह, वीथी, मार्ग चत्वर, हाट, बाट चित्र ध्वज पताका तोरण वन्दनवारों से सज उठे। चैल, पल्लव, तोरण, कदली-खंभ कंपन द्वारा आत्मोल्लास को व्यक्त करने लगे। वत्स वृष, धेनु, गोपों में—बाल, तरुण, वृद्ध सभी में नवीन जीवन का संचार हो गया। वस्त्र कांचन

---

१. मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा, गंभीर तोयौघ जवोर्मि फेनिला।
भयानकावर्त शताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियःपतेः। —भाग०

माला आदि आभूषणों से सजधज कर गोप-गोपियाँ मंगल उपायन ले ले कर नन्दगृह में एकत्रित हो गये, हार्दिक परमानन्द और दिव्य अलंकार वस्त्रों की आभा से आभासित ब्रज-ललनाएँ नवकुंकुम किंजल्क से अभिरंजित मुखारविन्द की शोभा बिखेरती हुई व्यालोल कुण्डल और पृथुल पयोधरों पर विलुलित मौतिक-रत्न हारों के कारण साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप में देदीप्यमान तड़ित-त्वरित गति से नन्दालय में पहुँचने लगीं। जहाँ-तहाँ श्रद्धा, प्रेम, आदर, सत्कार का लास्य होने लगा। हरिद्रा, चूर्ण, सुवासित तेल, गन्ध, कुंकुम, दूध, दही, नवनीत के प्रक्षेप, परस्पर विलिपन और अभिवर्षण से "नन्द के आनन्द भयो जै कन्हैया लाल की" ध्वनि में आनन्द बधाई का समुद्र उमड़ गया। श्रीशुकाचार्य के शब्दों में—

"तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः समृद्धिमान्।
हरेर्निवासात्म गुणै रमाक्रीड़मभून्नृप॥"

श्री कृष्ण के जन्मोत्सव से नन्दराय का ब्रज सकल समृद्धियों का निकेतन हो गया। अपने चांचल्य को चरितार्थ करने के लिए रमा ब्रज को क्रीड़ांगण बनाने में तल्लीन हो गई। दुरित दुःखहारी ब्रजबिहारी श्री कृष्ण के निवास और दिव्य गुणों के विकास से ब्रज में ऐश्वर्य की इयत्ता ही नहीं रही। गोपिकाओं द्वारा जंगीयमान गीत "जयति ते धिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि" अक्षरशः पहले ही चरितार्थ हो गया। प्रभु श्री कृष्ण आत्मगुण-ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य की प्रख्यापक बाल-लीलाओं द्वारा भक्त-जन मानस का निरोध सिद्ध करने लगे।

पूतनासुपयः पान—लीला नरवपु धारी कृष्ण स्वकीय लीलाओं द्वारा भक्तजनों की आन्तर बाह्य अविद्या की निवृत्ति करते हैं। काम चारिणी पूतना सुन्दर स्त्री-वेश धारण कर नन्द-गोकुल के बालकों का घात करने के लिए प्रयत्न करती है। बालक कृष्ण को ढूँढ़ने के लिए जैसे ही वह नन्दराय जी के मन्दिर में पहुँची, एकान्त पाकर कृष्ण को उठाकर विषोल्वण स्तन-पान कराने लगी। भगवान् स्तन-पान के साथ उसके प्राणों का भी पान कर गये। यद्यपि वह गत प्राण होकर पछाड़ खाकर गिर पड़ी फिर भी भगवत्स्पर्श से उसे मातृ-गति प्राप्त हुई। इस चरित्र से प्रभु अपने पराक्रम लीला का स्वरूप लोक के सन्मुख रखते हैं।

आध्यात्मिक ज्ञान में देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण यह चतुर्धाध्यास तथा स्वरूप विस्मृति, यह पंचपर्वा अविद्या का स्वरूप है। जिसका आधिभौतिक रूप पूतना है। पूतना मारण में प्रभु किसी साधन और अवस्था का सहारा नहीं लेते, और यही कारण है कि ब्रजवासियों को इस कार्य से आपके महात्म्य की अवगति नहीं हो पाती। इसे वे देवी घटना समझ कर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं, और मन्त्रादि के द्वारा संमार्जन कर बालक की रक्षा करने लगते हैं। इस कार्य को कृष्ण मुग्ध-भाव से ही सम्पादित करते हैं जिससे ब्रज-जनों को लोकोत्तर ज्ञान नहीं होने पाता। पूतना प्राण-शोषण के समय भी वे कोई विशाल रूप धारण नहीं करते। पालना में झूलते शिशु ही बने दीखते हैं।

अपने एक ही चरित्र से भगवान् अनेक प्रयोजन सिद्ध करते हैं, लोक-दृष्टि

से उनका आधिभौतिक चरित्र, शास्त्र प्रतिपादित आध्यात्मिकता का रूप धारण कर लेता है। श्री कृष्ण पूतना-वध के द्वारा उन सभी बालकों का उद्धार करते हैं, जो उसने अपने उदरस्थ कर लिये थे। इसका नाम पूतना है, यह जन्मादि सभी वैदिक संस्कारों से पूत जीवों का भी नयन करने वाली है। अविद्या अपना प्रभाव संस्कृत असंस्कृत सभी पर डालती है और उन्हें वह अपनी लपेट में ले लेती है, पर भगवान् अपनी पराक्रम शक्ति के द्वारा सभी का समुद्धार कर देते हैं। ब्रज के जन पूतना आगमन और उसके प्राणापगम की बात सुनकर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। भगवान् के प्रति किये गये इस दुष्ट कार्य से भी भगवान् पूतना को माता की गति प्रदान करते हैं, और इस प्रकार उनकी दिव्य दयालुता का स्वभावतः प्रकाश होता है। "लेभे गतिं धात्युचितां ततोन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम।"

शकट-भंजन—एक दिन औत्थानिक अभ्युदय कर्म में लोक-प्रथा के अनुसार बालक श्री कृष्ण को दूध-दही नवनीत आदि रस-पूरित घटों से लदे हुए शकट के नीचे सुलाया गया। उसमें असुरावेश हुआ जानकर उन्होंने उसे अपने मृदुल चरण के आघात से उलट कर विध्वस्त कर डाला। विविध रसों की उपस्थिति में भी स्तन्यार्थी बालकृष्ण सन्तुष्ट न हो सके, रुदन करते हुए उन्होंने सभी विकृत रसों के साथ आसुरी भावना को भी विनष्ट कर डाला। यावन्मात्र गोप "कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात्" कहते हुए आश्चर्य-चकित हो गये।

यावन्मात्र धरामण्डल "रसो वै सः" परब्रह्म की प्रकृति (प्रकृष्ट) कृति है वह भी रस पूरित 'रसा' है, यों तो उसमें रसों के सात समुद्र भरे हुए हैं, पर वे आधिभौतिक हैं, और जब इन आधिभौतिक रसों को आध्यात्मिक रसता से उत्कृष्ट स्थान दिया जाता है, तब वे स्वयं अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। अधिष्ठान के साथ विनष्ट हो जाते हैं। रसों का आध्यात्मिक रूप आनन्द कहलाता है। आनन्दवल्ली उपनिषद् के अनुसार मनुष्यानन्द की अपेक्षा देव, गन्धर्व आदि के आनन्द शतगुणित बताए गये हैं। सर्वोपरि आत्मानन्द और ब्रह्मानन्द गिनाया गया है, पर इससे अगणित अपरिमित परमानन्द, भगवद् भजनानन्द है, भगवत्स्वरूपानन्द है। परम स्वरूप भगवान् की कक्षा में सभी रस निम्न कोटि के हैं। भगवान् जहाँ अपने स्वरूप और लीला द्वारा रस-दान कर रहे हों! अन्य रसों की कोई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति के लिए जब श्री कृष्ण स्वयं स्तनार्थी बनते हैं, माता यशोदा लौकिक कार्यासक्त हो जाती है, भक्त की अन्याश्रयता देख कर प्रभु रुदन करने लगते हैं। उसकी निरोध-सिद्धि के लिए अपने ज्ञान भक्ति रूपी मृदुल चरण पल्लव के आघात से प्राकृत रस और उसकी प्रतिष्ठा दोनों को उलट देते हैं और इस प्रकार भगवद्बाहिर्मुख्य से आपतित आसुरभाव की विनिवृत्ति हो जाती है। चरणों के मृदु आघात से ही संसार-शकट के देश काल गति रूप दोनों चक्र, 'अहं' दंड से पृथक् अस्त-व्यस्त हो इधर-उधर जा पड़ते हैं। शकट का कूबर (उच्च स्थान) भी साथ ही विनष्ट हो जाता है।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण विविध कामना भावों से भरे संसार शकट का नाश कर अपनी यशोलीला द्वारा भजनानन्द के प्रति—स्वरूप सेवा के प्रति—भक्तों का

आकर्षण कर लेते हैं, स्वयं वात्सल्य रस का अनुस्वाद करने लग जाते हैं—

"रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥" —भाग०

तृणावर्त-वध—इसी प्रकार भगवान् भक्तों की मानसिक आसक्ति के लिए अपने छहों गुणों की परिचायक लीला द्वारा भौतिक बाधाओं का निवारण कर आध्यात्मिक विपत्तियों से भी उनका परित्राण करते हैं। गोकुल में उठा हुआ प्रबल अन्धड़ इसी प्रसंग का एक उदाहरण है—

तृणावर्त सर्व-जन लोचन-वंचक जातिगत क्रौर्यादि स्वभाव का आधिभौतिक रूप है जो चक्रवात रूप धारण कर सर्वत्र व्याकुलता उत्पन्न कर देता है। अज्ञानान्धकार, ज्ञान के तीनों अंशों का (१) वेद्यांश, (२) इन्द्रियांश, और (३) अन्तःकरणांश का आच्छादन कर लेता है, जिसके कारण भक्त स्वयं स्थापित तत्व का भी पता नहीं लगा पाता। एक समय यशोमति स्वकीय आरोह में आरूढ़ शिशु का लालन कर रही थीं कि, "अणोरणीयान प्रभु" सहसा "महतो महीयान्" बन गये। पर्वत-शिखर जैसे उनके भार को सहन न कर सकने के कारण भार-पीड़िता ब्रजेश्वरी ने ज्यों ही उनको भूमि पर लिटाया कंस-प्रणोदित 'तृणावर्त' दैत्य चक्रवातस्वरूप से समस्त गोकुल को त्रस्त करने लगा। उसने वेद्यांश के अपहरण रूप में गोकुल के समस्त पदार्थों को ढ़क लिया, इन्द्रियांश के अपहरणरूप में ब्रजवासियों के लोचनों में धूल भर दी, और अन्तः-करणांश की अपहृति में वह घोर घोष करता हुआ चारों ओर व्याप्त हो गया। सब कुछ तिरोहित हो जाने पर माता यशोदा स्वयं अपने हाथों विराजमान किये हुए श्री कृष्ण को भी भूल गयीं।[1]

जिस प्रकार एक भगवज्ज्ञान से सर्वज्ञान होता है उसी प्रकार उनके अमरिज्ञान से सभी की विस्मृति भी। सो गोकुल में उस समय यही हुआ। तृणावर्त ने सभी पर आवरण डाल कर अपने अभीप्सितार्थ की सिद्धि करनी चाही। वह श्री कृष्ण को अति लघु समझ कर आकाश में ले उड़ा था। कुछ समय के बाद पांसु-वर्षण की समाप्ति पर नन्दसूनु की अनुपलब्धि से जब गोपिकाएँ और यशोदा अश्रुमुखी होकर रुदन करने लगीं तब उन्हें निःसाधन जान कर भगवान् ने अपना "महतो महीयान्" रूप धारण कर लिया, जल-ग्रहण द्वारा दैत्य को निर्गत लोचन बनाकर ब्रह्मशिला पर जा पटका। अन्तरिक्ष से पतित वह कराल दैत्य विशीर्ण सर्वावयव होकर सदा के लिए शान्त हो गया।

इस प्रकार भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी इस लीला द्वारा भक्तों के हृदय में यशो-लीला का स्थापन किया। माता यशोदा बालकृष्ण को पाकर कृतकृत्य हो गईं।

नाम संस्कार—अनन्त नामा भगवान् के नाम भी अनन्त हैं। फिर भी लोक व्यवहारगोचर होने के लिए उनका संस्कार भी किया जाता है। वे श्री रूपिणी नामकरण लीला के द्वारा अनेकों अभिधानों से यशः प्रसिद्धि द्वारा अपने भक्तों का साक्षात् कराते रहते हैं।

---

१. (१) गोकुलं सर्वमावृण्वन् (२) मुष्णन् चक्षूंषि रेणुभिः
(३) ईरयन सु महाघोर शब्देन प्रदिशो दिशः (भाग० ।)

यदुकुलाचार्य महामुनि गर्ग गुण कर्मों के अनुरूप प्रभु की ईश्वरता का प्रतिबोध कराते हुए कहते हैं—

"तस्मान्नन्दात्मजोयं ते नारायण समो गुणै।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥"

इस प्रकार श्री कृष्ण अपनी शैशव लीलाओं द्वारा सर्वजन नयनाह्लादक रूप से व्रज का उद्धार करते हैं और विभिन्न नामों में भरे हुए रहस्यों का स्मरण कर भक्त उनके पावन चरित्र का गायन करते हैं।

बालचेष्टित—प्रभु बाल-सौन्दर्य श्री के प्रत्यक्ष दर्शन करा कर तो व्रजवासियों को जैसा मुग्ध करते हैं, उतनी पराकाष्ठा अन्य चरित्रों में अनुभूत नहीं होती। वे बाल-सुलभ चेष्टित धाष्ट् उपालम्भप्रद लीलाओं का अनुकरण करते हैं। गो-दोहन के असमय ही धेनुओं के तर्णकों को छोड़ देते हैं। प्रभु न तो स्वयं क्षुधित रहना चाहते हैं और न गौओं की तरफ सस्पृह निरीक्षण करते हुए बछड़ों को ही भूखे रखना चाहते हैं। वे छूटते ही दौड़ कर दुग्ध-पान करने लगते हैं और बाल कृष्ण उन्हें हुड्ट लगाते देख कर प्रसन्न होते हैं। गृह की स्वामिनी गोपिकाएँ इस व्यति-क्रम से असमंजस में पड़ जाती हैं। श्री कृष्ण व्रजवासियों के घरों से दूध दही माखन की चोरी करते हैं तो कभी मर्कटों को खिला पिला कर गोपिकाओं को उपालम्भ देने को विवश कर देते हैं। दूध दही की मथनियाँ फोड़ कर विविध हाव-भाव चेष्टाओं द्वारा गोपि-काओं के मन में जो वे असन्तुलित स्थिति उत्पन्न कर देते हैं, उससे वे कुपित भी होती हैं, विमुग्ध भी। परवश जब माता यशोदा के समीप उलाहना लेकर पहुँचती हैं, श्री कृष्ण के मुखारविन्द की हास्य-भय सम्मिश्रित विलक्षण शोभा देखकर कर्त्तव्य का निश्चय नहीं कर पातीं। इधर माता भी श्याम सुन्दर के सलौने मुख को देख सब कुछ समझ कर भी उन को डाँट-डपट नहीं पातीं, मन ही मन मुस्कराकर रह जाती हैं—

"इत्थंस्त्रीभिः सभय नयनश्रीमुखालोकिनाभिः।
व्याख्या दार्था प्रहसितमुखी नह्युपालब्धुमैच्छत् ॥" —भाग०

महात्मा सूर के शब्दों में—

"मेरो गोपाल तनिक सो कहा करि जानै दधि चोरी।
हाथ नचावति आवति ग्वारिनि जीभ करै किन थोरी।
कब सींकि चढ़ि माखन खायो कब दधि-मटुकी फोरी।
अँगुरी करि कबहूँ नहिं चाखत घर हीं भरी कमोरी।
इतनी सुनत घोष की नारी रहसि चली मुख मोरी।
'सूरदास' जसुदा को नन्दन जो कछु करै सो थोरी ॥

भगवान् श्री कृष्ण की यह बाल श्री लीला बड़ी महत्त्वपूर्ण है। "श्रयो हि परमा-काष्ठा सेवका स्तादृशा यदि" इस अभियुक्तोक्ति के अनुसार उनके परिवार में भी इसी श्री गुण की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है और इसी कारण भगवान् के बाल-सखा भी सहज क्रीड़ा में माता यशोदा के पास जाकर "कृष्णो मृदं भक्षित वान्" मैया कन्हैया ने आज माटी खाई है" की शिकायत करने में झिझकते नहीं हैं, अन्यथा उनकी

क्या सामर्थ्य ? जो ब्रजेश्वर के पुत्र अपने नायक कृष्ण की ब्रजेश्वरी के आगे शिकायत कर सकते ?

माता यशोदा भी कृष्ण की परब्रह्मता का साक्षात् करने पर भी "कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः" कह कर कृष्ण को शिक्षा देने लगीं। वे सहज सलौने उन के मुख से पहले ही यावन्मात्र ब्रह्मांड का दर्शन कर चुकी थीं। पर श्री गुण की पूर्णता के कारण उन्हें "अदान्तात्मन्" कह कर सम्बोधित करने लगीं। माता के इस शिक्षण के समय भगवान् की जो वदन सौन्दर्य की छटा बिखरी वह कुन्ती के हृदय में सर्वदा के लिए बैठ गई थी। वे तो इस पर निछावर-सी हो गईं। एक बार श्री कृष्ण के दर्शन पर सहसा उनके मुख से निकल पड़ा था—

"गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद् या ते दशाश्रुकलिलांजन संभ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति॥"—भाग०

उदूखल बन्धन—भगवान् की ज्ञान-लीला का निरूपक उदाहरण है जिसमें वे बाल-नाट्य द्वारा माता को वात्सल्य-भक्ति का वास्तविक ज्ञान कराते हैं। स्तन-पान में अतृप्त बालक को छोड़कर जब यशोदा उफनते हुए दूध के प्रति आकृष्ट हो जाती है, तब भगवान् कुपित होकर दूध-दही के भांडे फोड़ देते हैं, स्वयं नवनीत खाने लगते हैं और कुछ अपने रामावतार के अनुचर मर्कटों को खिला देते हैं। स्तन-पान द्वारा वे अपने उदरस्थ उन जीवों को पुष्ट करना चाहते थे जो बाल-घातिनी पूतना के द्वारा माता का स्तन-पान किये बिना ही मार डाले गये थे, पर यशोदा ने इस भक्ति के वात्सल्य कार्य की उपेक्षा कर श्री कृष्ण को कुपित कर दिया। लौकिक अर्थ—हानि को सहन न कर सकने के कारण यशोदा शिक्षा देने के लिए कृष्ण को जब पकड़ने दौड़ी तो वे कुयोगियों—भौतिक अर्थ-लोलुपों—को अप्राप्य होने के कारण हाथ में न आ सके। तपः संसाधित योगियों के मन से भी अप्राप्य ब्रह्म, गोपिका यशोदा के कब वश हो सकता था ? अपरमेय तत्त्व के पीछे दौड़ती बुद्धि के समान वे भी श्रान्त, क्लान्त हो गईं। जब उनके पृथुल शरीर पर श्रम-बिन्दु झलक आए तब भक्त-वश्यता के कारण भव-बंध-विमोचक प्रभु स्वयं माता के प्रेम-दाम में बँध गये।

"दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत् स्वबन्धने।"

कृपा का बन्धन ही उन्हें बाँध सकता था, सो वे उसी में बँध गये।

भगवान् दामोदर की इस लीला में भक्तों को स्वभावतः उनकी साधना-ग्राह्यता का और परिपूर्ण व्यापकता का दर्शन होता है। बाँधने का साधन दाम (रज्जु) बार बार दो अँगुल न्यून ही होता चला गया। उनकी बँधनात्मक प्राप्ति में आदि अन्तता का अभाव सदा ही बना रहा है। पर कृष्ण तो सदानन्द हैं, हरि हैं, न स्वयं दुःखी होना चाहते हैं न अन्य को भी दुःखी देखना चाहते हैं, सो उन्होंने स्वकीय भक्तवश्यता का परिदर्शन कराया, और ऊखल में बन्धन को प्राप्त हो गये।

यमलार्जुन-उद्धार— इस नाट्य के द्वारा जहाँ उन्होंने वात्सल्य-रस का ज्ञान कराया वहाँ वैराग्य लीला का भी उदूखल के विकर्षण और आघात से प्रभु ने यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार किया जो श्री मद में मत्त हो जाने के कारण भागवत्-मुख्य नारद के शाप से वृक्षत्व को प्राप्त हो गये थे, और कृष्णावतार की प्रतीक्षा में खड़े-खड़े तपस्या

कर रहे थे। अतिशय सौन्दर्य एवं धनदात्मज होने से वैभव की अति प्रख्याति द्वारा उन्हें मद का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। मद होने पर महत्पुरुषों का अतिक्रम भी। अतः वे भागवत् नारद का अवहेलन करने के कारण शाप के भागी हो गये थे पर अपने भक्त की वाणी सत्य करने के लिए भगवान् श्री कृष्ण ने उन पर करुण दृष्टि डाली और तिर्यक् गत उदूखल के आकर्षण द्वारा दोनों का उद्धार कर दिया।

भागवत् संगति और भगवत्कृपा दोनों से मदोत्पन्न शाप की विनिवृत्ति हुई और दोनों गुह्यक अपनी वास्तविक पूर्व स्थिति को प्राप्त कर भगवद्भक्त बन गये।

जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है प्रभु श्री कृष्ण सदानन्द हैं, अपने नाम, चरित्र आदि के द्वारा आनन्द की प्रतिष्ठा करते हैं, और श्री हरि दुःखहर्ता रूप में जीवों के यावन्मात्र कष्टों की निवृत्ति भी। त्रिविध आनन्द की स्थापना करने में उनका स्वरूप, उनके कार्य, उनका स्मरण, श्रवण आदि सहायक होते हैं, उसी प्रकार वे त्रिविध दुःखों का विनाश करते हैं। व्रज में आकर जहाँ दुष्ट दैत्य अपने भयानक स्वरूप से लोक-संत्रास के कारण बनते हैं, भगवान् उनके आधिभौतिक स्वरूप का विनाश कर आध्यात्मिक रूप से भी उनकी निवृत्ति कर देते हैं।

वत्सासुर समस्त वत्सों का एकीभूत आसुर भाव है, जो सहमिलन द्वारा ललित क्रीड़ा में व्यतिक्रम उपस्थित करता है। श्री कृष्ण उसका विनाश कर वत्स-चारण कार्य को निरापद बनाते हैं।

बकासुर वत्स-पालकों का समूह गत दम्भ-दोष है जो भगवान् पर अपने तीक्ष्ण तुंडों द्वारा प्रहार करता है। वह लोभ और अनृत इन दोनों तुंडों से ही अपना शरीर पुष्ट करता है। श्री कृष्ण इन दोनों तुंडों को फाड़ कर दम्भात्मक बकासुर का नाश करते हुए वत्सों के समान वत्स-पालों को भी निर्दोष बना लेते हैं।

अघासुर स्वयं व्रज-मण्डल का पाप है। गोप बालकों के साथ बन-भोजन के अनन्तर सुख-क्रीड़ा में बाधक बन कर आता है। यह अन्न गत आलस्य दोष जब अपना विशाल मुख फैला कर सब को उदरस्थ करता हुआ, प्रभु पर भी अपना प्रभाव प्रकट करने की प्रतीक्षा करता है। अन्तः प्रविष्ट गोप बालकों के उद्धारार्थ श्री कृष्ण स्वयं उसके भीतर जाकर व्यापक विशाल रूप द्वारा उसका विनाश करते हैं।

इस प्रकार पाप के प्रभाव से अक्षत जीवों को निष्कलमष बना कर प्रभु अपनी क्रीड़ान्तर्गत कौमार-लीला से उनका उद्धार करते हैं।

लीला-केन्द्र ब्रज-मण्डल—सच्चिदानन्द पूर्ण पुरुषोत्तम का लीला-धाम ब्रज-मण्डल आधिभौतिकादि भेद से त्रिविध है, पर जब वे स्वयं अपने परिकर के साथ क्रीड़ा करने भूतल पर आविर्भूत होते हैं, उनका धाम भी धरा-मण्डल पर अवतरित हो जाता है। नित्य, देशकालापरिच्छिन्न वांग्मनोगोचरातीत, स्वयं ज्योति, सनातन, अक्षर दिव्य धाम-रूप से वह आधिदैविक है। इस स्वधाम का दर्शन भगवत्कृपा से ही सम्भव होता है। साधन द्वारा इसका अनुभव करना सर्वथा असम्भव है।

पूर्वपुण्योपार्जित शुभ कर्म से जीव को स्वगति का ज्ञान होता है। अनन्तर जब वह निर्दुष्ट हो जाता है उसकी प्राप्त्युपाय को समझ पाता है। इसके बाद क्रमशः शास्त्रानुसार साधनानुष्ठान से ही आत्म-प्राप्ति करता है। आत्म-प्राप्ति के बाद उस

को ब्रह्मभाव की उपलब्धि और ब्रह्मभावानन्तर भगवद्भक्ति का जब उसके हृदय में उदय होता है तब कहीं तादृश जीव को भगवज्ज्ञान की सम्प्राप्ति का सौभाग्य मिलता है। यहाँ जाकर वह भगवद्धामदर्शन की योग्यता पा सकता है। उस पर भी भगवत्कृपा सर्वोपरि है, पर यह सब जीवों के लिए कोटि जन्म से भी सम्भव नहीं है। अतः निःसाधन दशा से सन्तुष्ट होने पर प्रभु जब स्वयं चाहते हैं अपने जीवों को महती कृपा द्वारा सहज में ही उस दिव्य लीला-धाम का दर्शन करा देते हैं—

"दर्शयामास लोकं स्वं गोपानांतमसः परम्।"

इसका स्वरूप तृतीय स्कंद में इस प्रकार कहा गया है—

"तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारण कारणम्।
विष्णोर्धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः॥"—भाग॰

यही दिव्य गोलोक व्यापिवैकुंठ धाम है जो ब्रह्मानन्दमय हो जाता है।

"ब्रह्मानन्दमयोलोको व्यापि वैकुंठ-संज्ञितः
निर्गुणोऽनाद्यनन्तश्च वर्तते केवले क्षरे॥"—बृ॰ वामन

भगवान् के इस नित्य-लीला-धाम वृन्दावन में सब प्रकार की सम्पत्ति विद्यमान रहती है, जिससे इसकी अलौकिक ही शोभा है, यहाँ—

"यत्र निर्मल पानीया कालिन्दी सरितां वरा।
रत्न बद्धोमय तटा हंसपद्मादि संकुला॥"

निर्मल सुमधुर सलिलवाहिनी, हंसादि विविध पक्षिगण से परिवेष्टित, विकसित सरसिज पराग-राग से अनुरंजित, और मणिमय तट गत बालुका से सुशोभित, सरिद्वरा श्री यमुना महार्घ रत्नमय शिला-तटों पर अपनी ललित वीथियों से भगवच्चरणारविन्द का प्रक्षालन करती रहती है। जहाँ—

"यत्र गोवर्द्धनो नाम सुनिर्झर दरायुतः।
रत्नधातुमयः श्रीमान् सुपुक्षिगण संकुलः॥"

जहाँ कोमल तृण, जल, मधुर कन्द मूल, फल से गो-गोप-गोपी आदि ब्रजवासियों की सर्वविध सुख-सम्पदा का सम्पादक, अपने कल-कल करते हुए निर्झर संपात और स्वच्छ विशाल सुखद कन्दराओं के द्वारा सुख-सेव्य, विचित्र रत्न धातुमय हरिदासवर्य गिरिराज गोवर्धन, विलक्षण शोभा से विभूषित होकर, शुक-पिक-मयूर-मधुकरों के कलरव द्वारा भगवान् की परिचर्या स्तुति करता विराजमान है।

इस प्रकार समस्त ब्रज-मण्डल अपनी सर्वविध सम्पत्ति से भगवान् का क्रीड़ा-केन्द्र बन जाता है।

लोक में देश-काल से प्रभावित परिलक्षित होते हैं, पर यहाँ तो कुछ अन्यथा ही सामग्री होती है। यहाँ तो देश के गुणों का काल पर साम्राज्य छाया रहता है, और इस प्रकार अन्यथाकर्तुं समर्थ रूप भगवच्छक्ति का यहाँ साक्षात् होता है। प्राणिमात्र को दहला देने वाला भयंकर ग्रीष्म-काल यहाँ वृन्दावन के गुणों से बसन्त श्री की आभा बिखेरने लगता है। कहा है—

"सच वृन्दावन गुणैर्वसन्त इव लक्षितः।
यत्रास्ते भगवान् साक्षाद्रामेण सह केशवः॥" —भाग०

और यह सब षडगुणैश्वर्यसम्पन्न भगवान् केशव के अतुलित महिमा का साक्षात् प्रताप वृन्दावन में आकर स्फूर्जित होता है।

यह वृन्दावन-धाम गोपराजकुमार कृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। वे पौगंडवय की चारुता को अंगीकार कर स्वकीय सखा-मण्डली से वेष्टित वेणु-नाद करते हुए जब गो-चारण में चरण-पंकज-स्पर्श से इस पर सौभाग्य की वर्षा करते हैं, यह वृन्दावन काम रूप धारण कर दैहिक और परमार्थिक दोनों फलों को लुटाने लग जाता है।

श्री कृष्ण के वन-प्रवेश में इस अवनी की शोभा ही निराली हो जाती है। यावन्मात्र वन कुसुमाकर हो जाता है। चरणपंकज-पराग की विकासक यह वन-गमन-लीला भगवान् की सत्वप्रधान रजोलीला है, अतः सकल व्रज में सुरभित कुसुम-रज की अभिव्यक्ति हो जाना ही उसकी दिव्यता है। रज की प्रधानता के बिना बिहार की सम्भावना ही कहाँ? और इधर व्रज-बिहारी व्रज में जो विहार करना चाहते हैं, सो उनके चरण-विन्यास से सर्वत्र सुमन-रज की व्याप्ति होने लग जाती है।

"वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः।"

यह कुसुमाकर वृन्दावन मंजुल अलि-कुल-घोष से संकुलित, मृग-गणों के निर्भय संचार से आकुल, अव्यक्त कलरव परायण विविध विहंगमों के ललित विलास से पर्याकुल होकर व्रजराज-कुमार के मानस में वेणु-कूजन की प्रेरणा को अंकुरित करता रहता है। इसकी सुषमा से प्रेरित होकर वंशी-धर की कोमलांगुलियाँ वेणु के सुधा-पूरित छिद्रों पर थिरकने लगती हैं।

भूमिगत निस्तब्धता दोष को मधुर-मधुर अलि-गुंजन से निवृत्त कर यह वृन्दा-वन तृण-पुष्प-फलाढ्य हो कर महत्पुरुषों के निर्दोष गुणवत् मन के समान रूप धारण कर लेता है, जहाँ भगवल्लीला प्रख्याति की शीतलता भरी हुई है; लय विक्षेप रहित तरंगादिशून्य, शान्त सलिल-परिपूर्ण सरोवरों के बीच यों किलोल करता हुआ शतपत्र गन्ध पवन जहाँ भगमनोमन्दिर में विनोद की प्रतिष्ठा करता है; रसानुभूति से स्वच्छन्द रमणेच्छा का प्राकट्य करता है; धन्य है वह वृन्दावन जिसकी सुषुमा को निहार कर सकल सौन्दर्य-निधान श्री पति के मन में भी रस की उद्भूति होने लग जाती है।

"तन्मञ्जु घोषालि-मृगद्विजाकुलं, महन्मनः प्रख्यपयत् सरस्वता।
वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तु भगवान् मनो दधे॥"—भाग०

क्यों न हो! वह वृन्दावन भी तो भगवदीय ऐश्वर्यादि गुणों से अलंकृत है—भगवल्लीला का निकेतन जो है वह।

व्रज-रेणु—नन्दनन्दन की लीला-भूमि व्रज की रेणु में तो न जाने क्या आश्चर्य समाया हुआ है? उसका माहात्म्य न जाने कैसा विलक्षण है कि उसकी गाथा गाते-गाते बड़े-बड़े देवता महर्षि भी तृप्त नहीं होते। उस पर ज्ञानीगण आश्चर्य-चकित हैं, तो भक्त-गण विमुग्ध हैं, रसिक-जनों की तो कुछ न पूछिये वे तो इसमें ही रम जाना,

खो जाना चाहते हैं । भगवदीय जनों की पुरुषार्थ-परिसमाप्ति ब्रज-रेणुमय हो जाने में ही है । क्यों न हो ? वे तो उस मुख-माधुरी के उपासक चकोर हैं जिसकी बंकिम अलकावलियों पर गो-चारण के समय सरसिज-पराग को तिरस्कृत करने वाली ब्रज-धूलि विराजमान रहती है । गोपवेशधारी के ब्रजकर्दमलिप्तांग की सुषुमा का पान कर जो त्रिलोकी के वैभव को भी ठुकरा देते हैं ।

ब्रज-रेणु का यह माहात्म्य श्री कृष्ण के चरण-सरोज के सम्बन्ध से अनुक्षण अनुप्राणित होता रहता है, जो ध्वज-वज्र अंकुश पंकज आदि चिह्नों से अंकित है, और जो गो-चारण के समय संचरण करने पर उसमें स्पष्ट उभर आते हैं ।

भगवान् राम-कृष्ण को मथुरा राजधानी में लाने के लिए आए हुए अक्रूर तो स्पष्टतः चतुर्विध पुरुषार्थ के द्योतक ध्वजा कुलिश अंकुश और अम्भोज से शोभित, चरण-पल्लवों से पूत ब्रज-स्थली का दर्शन कर कृतार्थ हो गये। धर्माचरण से संप्राप्त अभ्युन्नति के परिसूचक ध्वज-चिह्न जिस ब्रजभूमि में अंकित हों, अर्थ की बीहड़ पर्वत राशि के पक्षच्छेद के लिए जिसकी पाँसुलों में कुलिश चिह्न का परिदर्शन होता हो, मदोन्मत्त काम गजेन्द्र की मतता विनिवारणार्थ जहाँ अंकुश-लक्ष्य का दर्शन होता हो, अथच मोक्ष की मधुर गन्ध की महक उड़ाने के लिए जहाँ सरसिज चिह्न विकसित हो उस ब्रजभूमि का उसकी पावन रेणु-कणिकाओं का प्रत्यक्ष चमत्कार देखकर अक्रूर जी कृतकृत्य हो गये, और इन्हीं चरण-रेणु के अभिवन्दन से उन्हें नन्दनन्दन के मुखार-विन्द दर्शन का सौभाग्य अधिगत हो सका था ।

रस-रासेश्वर भगवान् श्री कृष्ण के प्रेमसान्त्वना-सन्देश की पाती देकर ब्रज-सीमन्तिनियों के अनुपम भक्ति-भाव का आस्वाद लेकर रसोन्मत्त परम भागवत उद्धव हरि-कथा गायन करते हुए ब्रज में ही कतिपय दिनों तक रम गये, ब्रज-भक्तों की तन्मयता उनकी अतुलित भक्ति-अनिर्वचनीय भाव, सौम्य व्यवहार और प्रभु के प्रति दृढ़ासक्ति देख कर तो उद्धव पर ब्रज का रंग ही चढ़ गया । उन्हें भी तन्मनस्कता का मद सा चढ़ने लगा । वे अपने सखा श्याम सुन्दर से प्रत्यक्ष वियुक्त होने पर भी अन्तर से संयुक्त हो गये । उनके चरित्रों का गान तल्लीलाओं का स्मरण और लीला-क्षेत्रों के निरीक्षण से उद्धव अपने अगले कर्तव्य को भूल कर तो कुछ दूसरी ही योजना सोचने लगे । कर्ण-रोचन भागवतीय कथा और मनोरम ब्रज अवनी का विहार यही दोनों इनके जीवन के लक्ष्य बन गये ।

"सरिद्वन-गिरि-द्रोणी वीक्षन्, कुसुमितान द्रुमान् ।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥"—भाग०

भक्ति के दो प्रधान अंग श्रवण और दर्शन ही तो हरिदास उद्धव को भक्ति-रस में आप्लावित करने के साधन थे । सो वे जहाँ प्रतिक्षण भगवान् श्री कृष्ण के अनन्य दास गोप, गोपी-जनों में बैठ कर श्यामसुन्दर का संस्मरण कराते थे, अपनी रसना और कर्ण-पुटी को पवित्र करते थे, अलौकिक लीलाओं की आधार भूमि ब्रज की मंजुल शोभा निहार-निहार कर आत्म-विमुग्ध हो जाते थे ।

कलि-कलुष-निकृन्तनी श्री यमुना के मृदुल स्वच्छ स्फटिक बालुकामय पुलिन, उसका शान्त गम्भीर नीर का धीर प्रवाह और श्यामसुन्दर के कलेवर की आभा धारण

कर सलिल का अनोकहों के सुवासित सुमन लेकर चरण प्रक्षालनार्थ तरंगायित उद्यम देख कर उद्धव का मन मधुकर भी उन सुमनों पर मँडराने लग गया। वृन्दावन का सुषुमा और पानीय सूयवस-कन्दर-कन्द-मूलों से भगवत्सहचरों के सेवा-सौभाग्याधिकारी हरिदासवर्य गोवर्द्धन की छटा तो उनके नयनों में ऐसी समाई जो कभी हटाई न जा सकी। उभयत्र स्थित प्रत्यन्त पर्वतों की मध्यगत भूमि द्रोणी जहाँ बाल कृष्ण, नटखट गोपाल कृष्ण की दान-लीलाएँ होती थीं उद्धव को भुलावा देने लगीं। गोकुल में अमितः कुसुमित चम्पक, बकुल मल्लिका कदम्ब, रसाल की सघन वीथियों में श्यामल सुखद छाया पाकर उनका मन-कुरंग विश्राम करने लग गया। लीला-निकेतनों की अच्छच्छवि ने पीयूष तिरस्कारिणी कथा को प्रोत्साहन देकर तो उद्धव को ब्रज-ललनाओं की चरण-रज का उपासक बना दिया। वे हृदय की अनुभूति स्वर में शुष्क ज्ञान पर भक्ति की विजय पा कर गा उठे—

"आसामहो चरण-रेणु-जुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम्
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यं पथंचहित्वा
भेजुमुकुन्द-पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥"

ज्ञानिनामग्रगण्य उद्धव जी विचारने लगे कि मैं तो इन ब्रज-भक्तों के दासानुदासत्व की योग्यता भी नहीं रखता, इनकी स्थिति पर पहुँचना तो दूर। अधिकार से बाहर पदार्थ चाहने वाले का अधःपात होता है सो मुझे तो अपने स्वरूपानुरूप ही कामना करनी चाहिये। एतावता गोपिकाओं के चरण-रेणु सम्पर्कशाली इन गुल्म, लता औषधियों में से ही मैं 'किमपि स्याम्' कुछ हो जाऊँ। उच्च भावना में मनोरथ की परिसमाप्ति "क्या हो जाऊँ" कुछ पता नहीं? भगवान् स्वेच्छा से ही इनके बीच में कुछ न कुछ बनाने की कृपा तो करें, जिससे इन महाभागाओं के चरण-कमल संचार से उद्धत रज का मेरे मस्तक पर अभिषेक हो सके।

सो इस कमनीय कामना को लेकर उद्धव के ब्रज में रम जाने का मानसिक दृढ़ संकल्प ब्रज-रज के उस अनन्त दिव्य माहात्म्य का परिचायक है जो ब्रह्मादि देवों को भी अतिशय दुर्लभ है। जंगम प्राणी तो कदाचित् इस सौभाग्य से विमुख भी हो सकते हैं पर स्थावर नहीं। वे तो निश्चल भाव से एकत्र स्थित रह कर इसका सदा स्वागत करते रहते हैं सो परम भागवत उद्धव भी क्रियागति विहीन बनकर इसी ब्रज-रेणु की लालसा में वृन्दावन-निवास के प्रेमी बन गए।

वृन्दावन की रेणु के लिए वे न जाने क्या और कैसे बन जाना चाहते हैं? यह रज कोई साधारण थोड़े ही है श्रुतियों द्वारा चिरन्तन से विमृग्य है, स्वरूप-सुधा के वितरक श्री कृष्ण-मुकुन्द की मृदु पदवी तो इसी में जहाँ-तहाँ परिलक्षित हो सकती है।

"धन्यं वृन्दावने यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः।"

: ८ :

ब्रज-गौरव

पं० वनमाली शास्त्री, चतुर्वेदी, साहित्याचार्य, मथुरा

यों तो "ब्रज" शब्द के अनेक अर्थ हैं, पर "व्रजन्त्यस्मिन्" इस निरुक्ति के अनुसार गमन अर्थ वाली 'व्रज' धातु से "गोचर संचर वह व्रजव्यजापण निगमाश्च" (३।३।१२२ पाणिनि सूत्र) से 'घ' प्रत्यय जुड़ने पर "भुक्तों—मोक्ष-लाभ करने वालों का गन्तव्य देश, अर्थ होता है। "मुक्तानां परमा गतिः" यह शास्त्रीय वचन इसी-निर्दिष्ट अर्थ की पुष्टि करता है। अथवा "व्रजन्त्यनेन" इस निरुक्ति में उक्त गमनार्थक 'व्रज' धातु से "पुन्सिसंज्ञायां घः प्रायेण" (३।३।११८ पाणिनि सूत्र) से 'घ' प्रत्यय करने से निष्पन्न 'व्रज' शब्द का दूसरा अर्थ होता है "पुण्यात्माओं के गमन का साधन"। अतएव पुराणों में कहा है—"सिद्धिदः सिद्धि साधनम्।" भगवान् श्री कृष्ण का उत्पत्ति-स्थान तथा क्रीड़ा-स्थल होने से "व्रज-भूमि" अतीव पावन मानी गयी है। वेदों में 'व्रज' शब्द का उल्लेख मिलता है, बाद में विष्णु-सूत्र में भी 'व्रज' का स्पष्ट उल्लेख है।[1]

उपनिषदों में 'व्रज' शब्द तो नहीं देखा गया है, किन्तु वहाँ, "व्रज-कमल" की कर्णिका-रूप 'मथुरा' और दलरूप 'मधुवन' आदि का सुस्पष्ट उल्लेख है।

अथर्ववेदीय 'गोपालोत्तर तापिनी' उपनिषद् के एक उपाख्यान में गान्धर्वी जब श्री दुर्वासा ऋषि से श्री गोपाल कृष्ण के सम्बन्ध में पूछती हुई उनके स्थान की जिज्ञासा करती है, तब श्री दुर्वासा ऋषि ब्रह्मा और नारायण के संवाद से ज्ञात उन—श्री कृष्ण के स्थान का परिचय इस प्रकार देते हैं—

"सहोवाच तं हि नारायणो देवः। सकाम्या मेरोः शृङ्गे यथा सप्तपुर्यो भवन्ति तथा निष्काम्याः सकाम्या भूगोलचक्रे सप्त पुर्यो भवन्ति तासां मध्ये साक्षाद् ब्रह्मपुरी हीति।"

अर्थात् भगवान् श्री नारायण ने ब्रह्मा जी से कहा कि—"परम वैकुण्ठ में जैसे कि सब भोगों सहित सात पुरी हैं, वैसे ही भूगोल-चक्र में मोक्ष और भोग देने वाली अयोध्या, मथुरा आदि सात पुरी हैं। उन सात पुरियों में गोपाल पुरी-मथुरा, ब्रह्मात्मक और ब्रह्म-प्रकाशक होने से साक्षात् ब्रह्म रूप ही है।

"यथा हि सरसि पद्मस्तिष्ठति तथा भूम्यां तिष्ठति चक्रेण रक्षिता हि मथुरा

---

१. "व्रजं च विष्णुः सखिवाऽअपोर्णुते।"—विष्णु-सूक्त

तस्माद् गोपालपुरी भवति।"[1]

श्रीमद्भागवत में मथुरा में श्री कृष्ण की सदा उपस्थिति बतलाते हुए लिखा है—

"मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः।"

—श्री मद्भागवत १० स्कं, १ अ०, २८ श्लोक

'मथुरा' शब्द का अर्थ समझाते हुए श्री गोपालोत्तर-तापिनी उपनिषद् में लिखा है कि—

"मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।
तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते॥" —गोपालोत्तरतापिन

जगदीश्वर के लाभ के लिए जो ज्ञान बार-बार अन्वेषण करता है, उसी ज्ञान का सारभूत ब्रह्म जहाँ है, वह मथुरा कहलाती है। अर्थात् 'मथ्यते जगद् अनेन" इस विग्रह में विलोडन—मथन, अर्थ वाली 'मन्थ' धातु से उणादि 'कुरच्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होने वाले 'मथुर' शब्द का अर्थ है 'ज्ञान'। 'मथुरं-ज्ञानं, यस्यामस्ति सा' इस निरुक्ति में "अर्श आदिभ्योऽच्" (५।२।१२७ पाणिनि सूत्र) से 'अच्' प्रत्यय एवं "अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४ पाणिनिसूत्र) से टाप् होने से "मथुरा" शब्द बनता है।

यह तो हुआ वेद एवं उपनिषद् के अनुसार प्रस्तुत विषय पर विवेचन। अब पुराणों की ओर आइये, इन में स्थान-स्थान पर 'व्रज', व्रजभूमि, मथुरा-मण्डल अथवा 'व्रज' के अन्तर्गत-स्थल मथुरा, वृन्दावन आदि की तथा उनमें निवास करने वालों की भूरि-भूरि प्रशंसा पाई जाती है।

पद्मपुराण में—

"श्टणुतं दत्तचित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिजम्"।

(सावधान होकर 'व्रजभूमि' का रहस्य सुनिये) इस भाँति उपक्रम कर, व्रज के विषय में लिखा है कि—

"तस्मिन्नन्दात्मजः कृष्णः, सदानन्दाङ्ग विग्रहः।
आत्मारामश्चाप्तकामः, प्रेमाक्तै रनुभूयते"॥[2] —पद्म पुराण

वहीं आगे चलकर 'मथुरा-मण्डल' का निर्देश करके बताया है, कि—

"अत्रैव व्रजभूमिः सा, यत्र तत्त्वं सुगोपितम्।
भासते प्रेमपूर्णानां, कदाचिदपि सर्वतः॥"[3]

गर्ग-संहिता में एक यह कथानक है कि; "भूमि का भार उतारने के लिए देवताओं के प्रार्थना करने पर भगवान् श्री कृष्ण ने भू-लोक में अवतार ग्रहण की

१. सरोवर में कमल की भाँति भूमि में भगवान् के सुदर्शन-चक्र से रक्षित होने से मथुरा गोपाल पुरी है।

२. उस व्रज में श्रद्धालु लोग आनन्द स्वरूप, आत्माराम और सब कामनाओं के प्राप्त करने वाले नन्दनन्दन श्री कृष्ण का सदा अनुभव करते हैं।

३. (प्राकृत की भाँति प्रतीत होने वाले) इसी 'मथुरामण्डल' में वह व्रजभूमि है, जहाँ प्रेमपूर्ण भक्तों को गुप्त-तत्त्व कभी-कभी (भगवान् श्री हरि की जब कृपा होती है, तब) सब ओर भासित प्रतीत होता है।

प्रतिज्ञा कर अपनी प्राण-प्रिया श्री राधिका को यह समाचार सुनाया। उनने यह समाचार सुन कर कहा कि—"आपके वियोग में मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं," तब श्री कृष्ण ने आज्ञा की कि —"आपको साथ में लेकर ही मैं भूमि पर अवतार लूँगा।" इस पर श्री राधिका फिर बोलीं, कि —

"यत्र वृन्दावनं नास्ति, यत्र नो यमुना नदी।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति, तत्र मे न मनःसुखम् ॥"[1] —गर्गसंहिता १।३।३३

यह सुनकर भगवान् श्री कृष्ण ने गो-लोक से मनुष्य-लोक में ८४ कोस भूमि भेज दी। जैसा कि राजा जनक के प्रति श्री नारद मुनि के वचन से स्पष्ट है—

"वेद नाग[2] क्रोश भूमिः, स्वधाम्नः श्री हरिः स्वयम्।
गोवर्द्धनं च यमुनां, प्रेषयामास भू परि ॥"—ग० सं० १।३।३४

आगे चल कर वहीं (गर्ग-संहिता में) वृन्दावन-खण्ड में वर्णित है कि जब गोकुल में बहुत उपद्रव होने लगे तब व्रजाधीश श्री नन्द बाबा की असमञ्जसता देख-कर सन्नन्द ने प्रस्ताव रखा कि—"वृन्दावन के लिए प्रयाण किया जाय।" उसे सुन कर श्री नन्द बाबा ने पूछा कि "वह वृन्दावन कितनी दूरी पर और कैसा है?" इस पर श्री सन्नन्द ने उत्तर देते हुए कहा, कि—

"प्रागुदीच्यां बर्हिषदो-दक्षिणस्यां यदोः पुरात्।
पश्चिमायां शोणितपुरान्माथुरं मण्डलं विदुः ॥
विंशद्योजनविस्तीर्णं, सार्धयद्योजनेन वै।
माथुरं मण्डलं दिव्यं, व्रजमाहुर्मनीषिणः ॥"[3] —ग० सं० खंड २

इस मथुरा-मण्डल 'व्रज' को श्री कृष्ण ने अपना साक्षात् निवास-स्थान, एवं तीनों लोकों (भू, भुवः, स्वः) से उत्कृष्ट और प्रलय काल में भी अविनाशी कहा है। तथाहि—

"मथुरामण्डलं साक्षान्मन्दिरं मे परात्परम्।
लोकत्रयात्परं दिव्यं, प्रलयेऽपि न संहृतम् ॥"
—ग० सं० २, खं० १, अ० ४२

'व्रज' की महिमा का वर्णन करते हुए गर्ग-संहिता में लिखा है, कि—

"धन्यो व्रजो धन्य मरण्यमेतद् यत्रैव साक्षात्प्रकटः परोहिसः।"
—ग० सं० खं० ४, ५

'व्रज' 'मथुरा-मण्डल', के स्वरूप और माहात्म्य के विषय में श्री नारद पुराण में लिखा है, कि—

"विंशतिर्योजनानां तु, माथुरं परिमण्डलम्।
यत्रकुत्राप्लुतस्तत्र, विष्णुभक्ति मवाप्नुयात् ॥"
—ना० पु० उत्तर खं० ५६, अ० २००

---

१. जहाँ पर वृन्दावन, यमुना नदी और गोवर्द्धन पर्वत नहीं वहाँ मेरे मन को सुख नहीं।
२. ८४।
३. बर्हिषद् (बरहद) से पूर्वोत्तर, यदुपुर (शूरसेन के ग्राम) से दक्षिण और शोणितपुर (सोनहद) से पश्चिम में चौरासी कोस भूमि को विद्वज्जन 'माथुर मण्डल' और 'व्रज' कहते हैं।

श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) तो 'ब्रज-महिमा' से पर्याप्त भरा पड़ा है। उसमें कहीं साक्षात्, कहीं ब्रज-वासियों की प्रशंसा द्वारा और कहीं वहाँ की लता-पताकाओं की सराहना से स्थान-स्थान पर ब्रज की महिमा का वर्णन देखने में आता है। उदाहरणार्थ श्री कृष्ण और बलराम ने चाणूर और मुष्टिक को मार दिया है। उस समय ब्रज-ललना परस्पर कह रही हैं, कि—

"धन्या बत व्रजभुवोयदयं नृलिङ्ग,
गूढः पुराण पुरुषो वनचित्रमाल्यः।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणु,
विक्रीड्यार्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः॥"[1]

—भा० द० स्कं० पूर्वार्द्ध ४४, अध्याय १३

इन ब्रज-बालाओं की चरण-धूलि की मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ, जिनकी कि गायी गयी हरि-कथा का गान तीनों लोकों को पवित्र करता है। ब्रज-लता पताओं से प्रभावित उद्धव द्वारा भी ब्रज की महिमा का वर्णन इस उक्ति में देखिये—

"आसामहो चरण रेणु जुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्य-पथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥"[2]

—भो० पु० १०।४७।६२

इसी प्रकार ब्रज वसुन्धरा के प्रत्येक स्थल का महत्त्व शास्त्रों में भरा पड़ा है।

---

१. अहो सखी ब्रजभूमि बड़ी धन्य है, जिनमें पुराण पुरुष, श्री शंकर और श्री लक्ष्मी द्वारा पूजित चरण-कमल वाले श्री भगवान् मानव देह से आच्छन्न होकर वन को विचित्र फूल-मालाओं को धारण किये श्री बलदेव जी के साथ गाय चराते और वंशी बजाते हुए क्रीड़ा करते विचरते रहते हैं।

२. इन ब्रजांगनाओं की चरण-धूलि का सेवन करने वाली लता-पताओं में मैं भी कोई बन जाऊँ तो अच्छा हो।

द्वितीय खंड

ब्रज-यात्रा

: १ :

ब्रज-यात्रा का उदय और विकास

सेठ गोविन्ददास, संसद-सदस्य, जबलपुर

ब्रज-यात्रा की महत्ता—भारतवर्ष में तीर्थाटन की परम्परा बड़ी प्राचीन है और तीर्थ-यात्रा की इस भावना ने ही प्राचीन युग में जब कि आवागमन के साधनों का नितान्त अभाव था, इस देश को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में सँजोये रखने में बड़ा योग दिया था। चार धामों, और सप्त-महापुरियों की भावना, देश की इसी सांस्कृतिक एकता की धुरी थी। इसी प्रकार देश के दूरस्थ भागों से ब्रज के वन-उपवनों और श्री कृष्ण-लीला स्थलों की यात्रा भी इसी सांस्कृतिक एकता की एक प्रतीक है; जिसने समस्त श्री कृष्ण-भक्त वैष्णव समाज को विभिन्न भाषा-भाषी होते हुए भी और उन में रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-विचार और खान-पान का विभेद होने पर भी, उन्हें "ब्रज-भक्ति" के सांस्कृतिक सूत्र में बाँध दिया। इस दृष्टि से ब्रज-यात्रा का महत्त्व बहुत अधिक है।

यद्यपि इस देश में प्रति वर्ष सहस्रों धार्मिक यात्राय होती हैं, परन्तु ब्रज-यात्रा इन सब यात्राओं में अभूतपूर्व है, क्योंकि सम्भवतः यही एक मात्र ऐसी यात्रा है जहाँ प्रति वर्ष हजारों यात्री देश के अनेक भागों से एक निश्चित तिथि को एक साथ यात्रा आरम्भ करते हैं तथा ४० से ५० दिन तक एक दूसरे के निकट सम्पर्क में रहते हुए उसे एक ही तिथि को समाप्त करते हैं। सह-अस्तित्व, भ्रातृ-भाव और सांस्कृतिक-सहयोग की यह परम्परा सचमुच अनूठी है। साथ ही ब्रज-यात्रा की यह परम्परा है भी बहुत प्राचीन।

प्रकृति-पूजा की प्रतीक ब्रज-यात्रा—यदि हम अपने प्राचीन वाङ्मय के आधार पर ब्रज-यात्रा की परम्परा पर विचार करें तो इस यात्रा के स्वरूप के विश्लेषण से यह सहज ही कहा जा सकता है कि ब्रज-यात्रा की मूल भावना में वैदिक प्रकृति-पूजा के ही तत्त्व विद्यमान हैं और आर्यों द्वारा मूर्त्ति-पूजा को पूरी तरह ग्रहण किये जाने से पूर्व ही ब्रज-यात्रा की भावना विकसित हो गई थी। ब्रज-यात्रा में वास्तव में ब्रज के वन-उपवन, नदी, पर्वत, सरोवर, तड़ाग और यहाँ तक कि ब्रज की रज[1] भी वन्दनाय है जो वैदिक प्रकृति-पूजा का ही भक्ति-परक प्रतिरूप है। जहाँ-जहाँ भगवान् श्याम सुन्दर के चरणारविन्द पड़े और जिन वस्तुओं से भगवान् का संस्पर्श

---

१. मुक्ति कहै गोविन्द ते मेरी, मुक्ति बताय।
ब्रज रज उड़ मस्तक परे, मुक्ति, मुक्त है जाय॥

हुआ वही वस्तु ब्रज-यात्री के लिए परम पावन बन गई। सम्भवतः इसीलिए वल्लभ-सम्प्रदाय में आज भी ब्रज-यात्रा को 'वन-यात्रा' कहा जाता है। स्वयं आचार्य वल्लभ ने भी ब्रज के १२ वनों की ही यात्रा की थी[1] और गौरांग महाप्रभु तो वृन्दावन के लता-गुल्मों से लिपट-लिपट कर उनका आलिंगन करते-करते समस्त सुधि-बुधि ही भूल गये थे।[2] अपने 'ब्रज-भक्ति विलास ग्रन्थ' में श्री नारायण भट्ट जी ने भी ब्रज की प्रकृति का ही वर्णन अधिक विस्तार से किया है। उन्होंने यहाँ के वन-उपवन और पर्वतों का देवताओं जैसी श्रद्धा से वर्णन किया है और ब्रज के सरोवरों तक में स्नान व आचमन करने से पूर्व उनको नमस्कार करने तक के मन्त्र लिखे हैं। उदाहरण के लिए वृषभान कुण्ड (भानोखर) का प्रणाम मन्त्र इस प्रकार है—

"निर्धूतकिल्विषायैव गोपराजकृताय ते।
वृषभानु महाराजकृताय सरसे नमः॥"[3] —ब्रज-भक्ति-विलास

इन विवरणों से स्पष्ट है कि भगवान् श्री कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज की प्राकृतिक सुषमा ने इसे मूर्त्ति-पूजा के विकास से पूर्व ही वन्दनीय बना दिया था। बाद में इन स्थलों पर मन्दिरों के निर्माण और मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा ने उनकी और भी श्री-वृद्धि की होगी। परन्तु वैसे ब्रज-यात्रा में प्रकृति-पूजा की भावना ही सर्वोपरि है।

ब्रज-यात्रा का आरम्भ—स्वयं सोलह-कला पूर्ण परब्रह्म श्री कृष्ण की बाल-लीलायें भी ब्रज की इसी प्रकृति की गोद में हुई थीं और यहीं उनकी कलाओं का विकास हुआ था, सम्भवतः इसीलिए स्वयं भगवान् ब्रजराज को भी यह भूमि अत्यन्त प्रिय थी। हम भगवान् गोपाल कृष्ण की गोवर्द्धन-पूजा को भी प्रकृति-पूजा ही मानते हैं, जो ब्रजभूमि के वन, पर्वतों को देव-तुल्य महत्त्व प्रदान करने की ओर भगवान् का स्वयं का एक प्रयत्न था। ऐसी दशा में भगवान् श्री कृष्ण ने जिस दिन गिरिराज गोवर्धन को समस्त ब्रजवासियों के समक्ष देवत्व प्रदान कर उसे पूजा सम्भवतः उसी दिन से ब्रज में यहाँ के प्राकृतिक स्थलों की पूजा की भावना का बीज-

---

१. "महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी ने अपनी परिक्रमा में ब्रज के बारह वनों को ही प्रधानता दी। आपकी परिक्रमा सात दिन की होती थी। आप प्रति दिन १२ कोस की यात्रा करते थे।"
—"वल्लभीय सुधा" 'श्री ब्रज-परिक्रमा अंक' का आमुख ; ले० : श्री द्वारिकादास परीख

२. "थावर जंगम विपिन के प्रभुजू कों लखि जोइ।
देखि बन्धु-गण बन्धु कौं ज्यौं आनन्दित होय॥
आलिंगन प्रभुजू करैं प्रति तरु-लता सुजान।
करैं समर्पण कृष्ण कों सुमनादिक कर ध्यान॥

और आगे—
"वृन्दावन मधि भौ जितौ प्रभु कें प्रेम विकार।
कोटि ग्रन्थ करि शेष जी लिखें जु तिहि विस्तार॥"
श्री चैतन्यचरितामृत का कवि सुबल स्याम-कृत ब्रजभाषानुवाद ; पृष्ठ १५३-१५४

३. हे कल्मष को धोने वाले! हे गोपराज वृषभानु द्वारा निर्मित, हे भानु-सरोवर आपको नमस्कार है।

वपन हो गया, जिसका विकसित रूप ब्रज-यात्रा कही जानी चाहिए। ब्रज-यात्रा के प्रेरक के रूप में हम भगवान् कृष्ण को ही इस यात्रा का सूत्रधार कह सकते हैं।

श्रीमद्भागवत में 'ब्रह्मा-व्यामोह' के प्रसंग में एक कथा है, जिसके अनुसार भगवान् कृष्ण को गोप-कुमारों की झूँठी छाक खाते देखकर ब्रह्मा को मोह हो गया और वे भगवान् कृष्ण व उनके सखाओं, गौ-वत्स और गायों का हरण करके ले गये, परन्तु भगवान् कृष्ण द्वारा गौ-वत्सों की नई सृष्टि रच दी जाने पर ब्रह्मा को अपनी भूल ज्ञात हुई और उन्होंने पश्चात्ताप किया। जब ब्रह्मा मोह से निवृत्त होकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए तो भगवान् ने ब्रह्मा को क्षमा कर दिया। किन्तु इसी कथा में महाकवि सूर और 'प्रेम-सागर' के रचयिता लल्लू जी लाल का कहना है कि ब्रह्मा को ब्रज-यात्रा करने का आदेश भगवान् ने दिया था।[1] इस कथन का मूलाधार क्या है यह नहीं कहा जा सकता परन्तु यदि यह सत्य है तो भगवान् गोपाल कृष्ण के बाल्य-काल में ही ब्रज-यात्रा की यह परम्परा स्वयं उन्हीं के द्वारा स्थापित की गई मानी जानी चाहिए और सृष्टि-कर्त्ता ब्रह्मा जी इस कथन के अनुसार ब्रज के प्रथम यात्री हुए।

यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि क्योंकि ब्रह्मा द्वारा ब्रज-यात्रा की ही गई, इसका कोई ब्यौरा नहीं मिलता; अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने ब्रज-यात्रा की ही थी ? परन्तु यदि ब्रह्मा जी ने ब्रज-यात्रा न भी की हो तो भी ब्रज-यात्रा भगवान् श्री कृष्ण के समय में ही आरम्भ हो गई थी। पुराणों में भगवान् श्री कृष्ण के सखा उद्धव की ब्रज-यात्रा का भी वर्णन हुआ है, और भगवान् श्री कृष्ण की लीलाओं के एक महत्त्वपूर्ण पात्र देवर्षि नारद जी की ब्रज-यात्रा के विवरण भी पुराणों में उपलब्ध हैं, जिन का उल्लेख आगामी अध्याय में किया जा रहा है। ब्रज में कई स्थलों पर विद्यमान नारद जी के मन्दिर तथा उद्धव जी के कुण्ड और मूर्त्तियाँ भी यही प्रमाणित करते हैं कि इन देव कोटि और मनुष्य कोटि के प्राणियों ने ब्रज-यात्रा की थी। बाद में द्वारका में यदु-वंश के नष्ट हो जाने पर श्री कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने श्री मथुरा लौटकर यहाँ पुनः यदुवंशी-राज्य की स्थापना की व अपने प्रपितामह भगवान् श्री कृष्ण के लीला-स्थलों की यात्रा भी की और वहाँ मूर्त्तियाँ स्थापित कीं। इस यात्रा का विवरण भी आगामी अध्याय में दिया जा रहा है।

ब्रज-यात्रा का काल-निर्णय—इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रज-यात्रा श्री कृष्णावतार काल में ही प्रारम्भ हो गई थी। जैसी कि जन साधारण की धारणा है, भगवान् श्री कृष्ण अब से ५,००० वर्ष पूर्व इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे। यदि इस मत को माना जाय तो ब्रज-यात्रा की परम्परा भी अब से ५,००० वर्ष प्राचीन मानी जानी चाहिए, परन्तु अधिकांश इतिहासवेत्ता भगवान् कृष्ण का काल अब से लगभग ३,५०० वर्ष पूर्व मानते हैं। यदि यही मत माना जाता है तो भी ब्रज-यात्रा

---

१. "श्री मुख वाणी कहत, विलँब, अब नेंक न लावहु।
ब्रज-परिकमा करहु, देह कौ पाप नसावहु॥"—सूरदास कृत, बाल-वत्स हरण-लील।

की परम्परा ३५०० वर्ष-पुरानी कही जा सकती है ।[1]

सामूहिक ब्रज-यात्रा—परन्तु ऊपर ब्रज-यात्रा की जिस परम्परा का उल्लेख किया गया है, वे यात्रायें व्यक्तिगत ब्रज-यात्रायें ही थीं। महाप्रभु वल्लभाचार्य और गौरांग महाप्रभु की ब्रज-यात्रा भी इसी कोटि में आती हैं, किन्तु इसके बाद गुसाईं विट्ठल नाथ जी और नारायण भट्ट जी जैसे आचार्यों द्वारा सोलहवीं शताब्दी में ब्रज-यात्रा की इस परम्परा को सामूहिक रूप प्रदान किया गया ।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब ब्रज में भक्ति का केन्द्र आचार्य वल्लभ और महाप्रभु चैतन्य देव के समय ही स्थापित हो गया तो फिर सामूहिक ब्रज-यात्रा उनके समय में ही क्यों आरम्भ नहीं हो सकी ? इसके कारण निम्न हैं—

जैसा सभी जानते हैं बौद्ध धर्म के व्यापक प्रचार तथा यवन आक्रान्ताओं द्वारा ब्रज पर हुए अनेक आक्रमणों के कारण वहाँ की समस्त श्री उस समय क्षत-विक्षत थी और भगवान् श्री कृष्ण के समस्त लीला-स्थल अप्रगट हो गये थे। यहाँ तक कि ब्रज के बारह वनों की दशा भी बड़ी सोचनीय थी। ऐसी दशा में मार्ग-हीन इस वन-पथ में सामूहिक ब्रज-यात्रा सम्भव ही न थी और न उस समय किन स्थलों की यात्रा की जाय यही निश्चित था। स्वयं वल्लभाचार्य जी ने जब ब्रज के वनों की परिक्रमा की थी, तब ये वन थापाथूहर (नागफनी) के काँटों से आच्छादित थे जिन को आचार्य जी ने अपने सेवकों से कटवाया था।[2] वल्लभाचार्य जी ने ही वर्त्तमान गोकुल का स्थल निर्धारित करके उसे बसाया था और मथुरा के विश्रान्त-घाट से श्मशान को हटवा कर वहाँ बस्ती बसवाई थी। उधर महाप्रभु चैतन्य के पार्षद रूप सनातनादि गोस्वामियों ने वृन्दावन की, जो उस समय हिंस्र-पशुओं से युक्त था पुनर्स्थापना की।[3] इसके बाद जब संवत् १६०२ में श्री नारायण भट्ट जी के ब्रज पधारने पर ब्रज के अनेक लीला-स्थलों का पुनर्स्थापन हुआ। 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास जी के कथन से इस अनुश्रुति की संपुष्टि होती है कि भट्ट जी के पास श्री लाड़लेय जी का एक देव-विग्रह था, जिसे साथ लिये वे ब्रज-भ्रमण करते थे और वह श्री विग्रह उन्हें स्वयं बोल कर प्रत्येक स्थल का परिचय देता था जिन्हें भट्ट जी प्रगट करते थे।[4] वाराह पुराण के अनुसार भट्ट जी ने भगवान् कृष्ण के

---

१. इतिहासकारों के मत से पाण्डवों के पौत्र राजा परीक्षित का काल ई० पू० १४३० है। इस प्रकार सन् १९५९ में १४३० जोड़ देने से परीक्षित का काल ३,३८९ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है और भगवान् कृष्ण का काल लगभग ३,५०० वर्ष पूर्व माना जा सकता है।

२. देखिये "वल्लभीय सुधा" श्री ब्रज-परिक्रमा-अंक का आमुख, वि० सं० २०१३।

३. "The best named community (Bengali or Gouriyas Vaishnavas) has had a more marked influence on Bindraban than any of the others since it was Chaitanya the founder of the sect, whose immediate disceples were its temple builders."

—ग्राउस-कृत "मथुरा मेमोयर" पृष्ठ १८३।

४. "बोलि कै बतावैं यहाँ अमुक स्वरूप है जू, लीला कुण्ड धाम स्याम प्रगट दिखाये हैं।"

—प्रियादास

गुप्त स्थलों को प्रगट किया, ऐसा नाभादास जी का कथन है—

"गोपस्थल मथुरा-मण्डल, जिते वाराह बखाने।
किये नारायण प्रगट, सकल पृथ्वी ने जाने॥"

यही नहीं, भट्ट जी ने अकबरी दरबार के अर्थ-मन्त्री राजा टोडरमल की सहायता से ब्रज में स्थान-स्थान पर रास-मण्डल भी बनवाये[1] और ब्रज की पुनर्स्थापना का यह काम भट्ट जी ने संवत् १६०६ से पूर्व ही पूर्ण कर दिया था, क्योंकि संवत् १६०६ में वे अपना ग्रंथ 'ब्रज-भक्ति-विलास' समाप्त कर चुके थे, जिसमें सम्पूर्ण ब्रज-मण्डल का विस्तृत परिचय उपलब्ध है। इस प्रकार संवत् १६०० वि० के आस-पास सामूहिक ब्रज-यात्रा की पृष्ठ-भूमि तैयार हुई और उसमें भट्ट जी का बड़ा योग रहा। इसीलिए श्री ग्राउस महोदय ने अपने 'मथुरा मेमोयर' में श्री नारायण भट्ट जी को वन-यात्रा (ब्रज-यात्रा) का संस्थापक कहा है।[2]

गुसाईं विट्ठल नाथ जी और सामूहिक ब्रज-यात्रा—यहाँ यह विवेचन करना हमें अभीष्ट नहीं कि गुसाईं विट्ठल नाथ जी ने पहले सामूहिक ब्रज-यात्रा की या भट्ट जी ने, क्योंकि ये दोनों ही महापुरुष समान उद्देश्य से प्रेरित थे। हम उक्त दोनों महापुरुषों को ही इस सामूहिक ब्रज-यात्रा के प्रणेता मानते हैं और यह कहना चाहते हैं कि ब्रज-यात्रा की यह परम्परा संवत् १६२४ तक बहुत लोकप्रियता प्राप्त कर गई थी। क्योंकि गुसाईं विट्ठल नाथ जी की उक्त संवत् में की गई ब्रज-यात्रा का विस्तृत विवरण साहित्य में उपलब्ध है। कवि जगतनन्द[3] ने बड़े विस्तार से गुसाईंजी की इस यात्रा का वर्णन किया है, जिससे प्रगट होता है कि ये कवि भी गुसाईं जी के साथ इस यात्रा में उपस्थित थे; अन्यथा वह प्रत्येक दिन की यात्रा का ऐसा ब्यौरा उपस्थित नहीं कर सकते थे। अस्तु।

इस प्रकार संवत् १६०० के आस-पास ब्रज में यह सामूहिक यात्रा की परम्परा आरम्भ हुई और ब्रज-यात्रा के नियम भी निर्धारित किये गये। नारायण भट्ट जी ने ब्रज-यात्रा की जो विधि 'ब्रज-भक्ति-विलास' में लिखी है लगभग उन्हीं सब नियमों के अनुसार आज भी सभी सम्प्रदाय ब्रज-यात्रा करते हैं।

ब्रज-यात्रा के नियम—भगवान् कृष्ण की लीलाओं को ध्यान में रखते हुए वन-यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए। प्रदक्षिणा के मार्ग में स्थित वृक्ष, लता, गुल्म, गौ,

---

१. "ठौर-ठौर रास के बिलास लै प्रगट किये, जिये यों भगत-जन कोटि सुख पाये हैं।"
—भक्तमाल

२. "It was disciple Narain Bhatt, who first established the Banjatra."
—'मथुरा मेमोयर', पृष्ठ ८६

३. कवि जगतनंद सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए देखिये 'ब्रज-भारती' के वर्ष १६, अंक १ में श्री अगरचन्द नाहटा का लेख : पृष्ठ २१, तथा 'ब्रजभारती' के वर्ष १५, अंक ४ में श्री रतनलाल गोस्वामी का लेख, और विद्या-विभाग, कांकरौली से प्रकाशित ग्रन्थ 'जगतानंद'।

ब्राह्मण, मूर्ति, पाषाण, तीर्थ तथा भगवत्-स्थलों का परित्याग नहीं करना चाहिए और यथा विधि सबकी पूजा और सम्मान करना चाहिए। साथ ही कूर्म पुराण में कही गई मर्यादा के अनुसार रात का पहना हुआ वस्त्र धारण करके यात्रा करना वर्जित है। यात्रा में धुले हुए स्वच्छ वस्त्र धारण करने चाहिएँ और ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। रात्रि के समय ब्रज-यात्रा करना वर्जित है। यात्रा शौचादि कर्मों से निवृत्त होकर ही आरम्भ की जानी चाहिए। यात्रा में पग धीरे-धीरे व सम्हाल कर रखना चाहिए जिससे जीव-हिंसा न हो। जूठे जल, भोजन तथा तेल का स्पर्श यात्रा में वर्जित है। यात्रा-काल में रोग-ग्रसित हो जाने पर, स्त्री के रजस्वला हो जाने पर या सूतकादि के समय यात्रा नहीं करनी चाहिए। यदि ऐसा अवसर आ जाय तो उस समय यात्री यात्रा-मार्ग में ही निवास करे और उससे निवृत्त हो जाने पर आगे की यात्रा आरम्भ करे।

यात्रा में यात्री को अल्पाहार और रात्रि को व्रत रखना चाहिए। यात्रा में यव, चावल व धान का दान मुख्य है। मंत्र-पाठ करते हुए, हाथ-पाँव धोकर दान करना चाहिए। यात्रा के नियमों में यह भी कहा गया है कि वन-यात्री को शरीर को अधिक कष्ट न देकर ही प्रदक्षिणा करनी चाहिए, क्योंकि शरीर का दुःखी होना आत्म-घाती होता है और यात्रा भी सामान्य फल देती है तथा भगवान् भी क्रोधित होकर शाप देते हैं।[1]

इस प्रकार ब्रज-यात्रा की इस प्राचीन परम्परा को भक्ति-युग में विकसित होने का अवसर मिला, और यह ब्रज-यात्रा तब से आज तक प्रति वर्ष गो० पुरुषोत्तम जी तथा गो० गोपाल लाल जी द्वारा किये गये किंचित् सामयिक परिवर्त्तनों के साथ होती चली आ रही है, जिसका विशेष परिचय आगे दिया जा रहा है। हाँ, औरंगजेब जैसे शासकों के काल में कुछ समय तक यात्रा के इस सामूहिक क्रम में अवश्य विक्षेप हुआ था, जिसको बिना कोई महत्त्व दिये हम यहाँ तो केवल यही कहना चाहते हैं कि ब्रज-यात्रा की यह परम्परा बहुत ही प्राचीन है और श्री कृष्ण-भक्ति के क्षेत्र और ब्रज के लोक-जीवन में इसका महत्त्व अक्षुण्ण है।

---

१. नैव दत्वा शरीरस्य कष्टं शक्त्यनुसारतः।
कष्टं दत्वा शरीरस्य आत्मघात फलं लभेत॥
क्रुद्धो हरिर्ददौ शापं फल सामान्यमाप्नुयात्॥　　—'ब्रज-भक्ति-विलास'

: २ :

ब्रज-यात्रा की परम्परा

श्री चुन्नीलाल शेष, मथुरा

ब्रज-यात्रा की परम्परा पर विचार करने के लिए हमारे पुराण ग्रंथ ही एक मात्र महत्त्व पूर्ण साधन हैं। अतः यहाँ हम प्राचीन पुराणों के आधार पर ब्रज-यात्रा की परम्परा पर विचार करना चाहते हैं। इस प्रकार उपलब्ध विवरणों के आधार पर हम पहले भगवान् श्री कृष्ण के सखा उद्धव जी की ब्रज-यात्रा का वर्णन करेंगे जो भगवान् के मथुरा आ जाने के उपरान्त, उन्हीं की प्रेरणा से ब्रज गये थे और वहाँ उन्होंने कुछ मास रह कर ब्रज-भ्रमण किया था।

उद्धव जी की प्रथम ब्रज-यात्रा—श्रीमद्भागवत् अध्याय ४६ में लिखा है कि एक दिन शरणागतों का दुःख हरने वाले भगवान् श्री कृष्ण ने एक बार अपने प्यारे तथा एकान्त भक्त उद्धव जी का हाथ से हाथ पकड़ कर कहा[१] कि हे सौम्य उद्धव आप ब्रज जाकर ऐसा उपाय करो जिससे हमारे माता-पिता प्रसन्न हों और गोपियों को मेरे वियोग का जो संताप हो रहा है उसे भी मेरा संदेश देकर दूर करो।[२] ये सुन कर वे तत्काल ही यदुराज कृष्ण का संदेश शिरोधार्य कर, रथ पर सवार हो नन्द-राय जी के गोकुल को चल दिये।[३] उद्धव जी मार्ग की शोभा देखते हुए जब संध्या-समय गोकुल पहुँचे तो कृष्ण के प्रिय तथा अनुगामी उद्धव जी को आता देखकर उन्हीं को कृष्ण समझ नन्द जी ने पूजा की। श्री नन्द जी कृष्ण की लीलाओं का वर्णन कर उनका स्मरण कर अत्यन्त उत्कंठा के मारे प्रेम के आवेग में व्याकुल होकर मौन हो गये। इस प्रकार के वर्णन को सुनकर श्री यशोदा जी की आँखों से आँसू बहने लगे और स्नेह से उनके स्तनों से दूध टपकने लगा।[४]

---

१. "तमाह भगवान् प्रेष्ठं भक्त मेकान्तिनं क्वचित।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥२॥"

२. "गच्छोद्धव ब्रजं सौम्य पित्रोर्नौं प्रीतमावह।
गोपीनां मद्वियोगाधिं ममसंदेशैर्विमोचय ॥३॥"

३. "इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेश भर्तु राहतः।
आदायरथमारुह्य प्रययौ नंदगोकुलम् ॥७॥
प्राप्तो नंदव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ।
छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥८॥"

यहाँ से आगे ब्रज के सौन्दर्य का वर्णन है—

४. "यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च।
श्र ण्वन्त्यश्र ण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुत पयोधरा॥"

रात्रि भर नन्द-गृह में उद्धव जी ने निवास किया और प्रातःकाल वह गोपियों से मिले। इस स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म रीति से 'भ्रमर-गीत' का वर्णन है। किन्तु अन्त में भगवान् के संदेश से उनका विरह ताप दूर हो जाता है, तथा कृष्ण को परमात्मा समझ कर तथा अपनी आत्मा मानकर गोपी उद्धव जी की पूजा करती हैं।

उद्धव जी गोपियों का ताप मिटाने के लिए भगवान् की लीलाओं का वर्णन करते हुए कुछ मास गोकुल में रहे।[1] वे हरि-भक्त उद्धव जी, नदी, वन, पर्वत की गुफाओं और फूले हुए वृक्षों को देख कर उनके विषय में पूछताछ करके भगवान् का स्मरण करते हुए ब्रजवासियों को आनन्द देते रहे।[2] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उद्धव जी ने ब्रज में रहकर भ्रमण किया था, वहाँ के सब स्थलों को देख कर वे उनसे बहुत प्रभावित हुए थे और अन्त में वे यह कहने को विवश हुए थे, कि—

"वन्दे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥" (४७, ६४)

"जिनका श्री भगवान् की कथाओं सम्बन्धी गायन त्रिलोक को पवित्र करता है, उन नन्दराय जी के ब्रज की स्त्रियों की चरणों की रज की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ।"

ऐसी है यह उद्धव जी की ब्रज-यात्रा जिसको विन्दु-रूप से लेकर पुराणों तथा हिन्दी के भक्त-कवियों ने विशद् विवेचना की है।

उद्धव जी की द्वितीय ब्रज-यात्रा—श्रीमद्भागवतकार के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण ने जब अपनी द्वारका-लीला का संवरण किया तो उद्धव जी को बद्रिकाश्रम में तप करने की आज्ञा दी थी, परन्तु स्कन्द पुराण (श्रीमद्भागवत खण्ड) में वज्रनाभ जी की गोवर्द्धन में उद्धव जी से भेंट का उल्लेख उपलब्ध है। गोवर्द्धन में वज्रनाभ ने उद्धव जी से श्रीमद्भागवत की कथा सुनी थी। इस विवरण से प्रतीत होता है कि बद्रिकाश्रम जाकर भी उद्धव अपने सुहृद भगवान् श्री कृष्ण की बाल-लीला भूमि ब्रज को नहीं भूल सके। वे उससे अपना निकट सम्पर्क बनाये रहे और स्वयं यहाँ आये। यदि उद्धव जी बद्रिकाश्रम में ही स्थायी रूप से रह गये होते तो उनका राजा वज्रनाभ को गोवर्द्धन में कथा सुनाना सम्भव न था।

देवर्षि नारद की ब्रज-यात्रा

उद्धव जी के अतिरिक्त ब्रज के दूसरे यात्री के रूप में हम देवर्षि नारद का उल्लेख कर सकते हैं। नारद जी का यात्रा-काल भी पुराणों के अनुसार उद्धव जी की प्रथम ब्रज-यात्रा काल के आस-पास ही माना जा सकता है। नारद जी की ब्रज-यात्रा का यह प्रसंग पद्म पुराण और वृहद् नारदीय पुराण में उपलब्ध है।

---

१. उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः।
कृष्ण-लीला कथां गायन् रमयामास गोकुलम्॥४७, ५५॥

२. सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान्।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम्॥४७, ५७॥

पद्म पुराण (पाताल खण्ड) में लिखा है कि जब नारद ने सुना कि भगवान् श्री कृष्ण अपने परिवार सहित ब्रज में अवतार लेकर लीला विस्तार कर रहे हैं तो उनकी सहचरी, रास रसिकेश्वरी राधा के दर्शन करने वे ब्रज में पधारे। नारद घर-घर उस समय उत्पन्न होने वाली समस्त बालिकाओं के लक्षण देखते हुए ब्रज में भ्रमण करने लगे परन्तु उसमें कोई भी बालिका ऐसी न मिली जिसके लक्षण रास-रसिकेश्वरी से मिल सकें। अन्त में वह वृषभानु घोष के घर पधारे। वहाँ वृषभानु ने नारद जी को कितने ही बालकों का हाथ देखते हुए देख कर अपने पुत्र का भी हाथ दिखाया। नारद जी ने उसका हाथ देख कर बताया कि यह कृष्ण का सखा होगा। इस बात से कुछ प्रोत्साहित होकर उन्होंने अपनी मूक और बधिर लड़की को देखने की प्रार्थना की। नारद ने जाकर अन्दर देखा कि एक परम ज्योतिर्मयी कन्या पृथ्वी पर पड़ी हुई है। उसको देखते ही नारद जी पहचान गये कि यही कृष्णार्द्धांगिनी श्री राधा हैं। उन्होंने सबको बाहर जाने की आज्ञा दी और एकान्त पाकर उनकी प्रार्थना करने लगे। श्री राधा ने प्रसन्न होकर उन्हें किशोरावस्था में दर्शन देते हुए उनसे वर माँगने का आदेश दिया। नारद जी ने उनसे रास दिखाने की प्रार्थना की। श्री राधा ने उनको रात्रि के समय कुसुम सरोवर पर पहुँचने की आज्ञा दी। नारद वहाँ पहुँच कर एक अशोक वृक्ष के सहारे खड़े हो गये। जब रास का समय हुआ तब प्रिया प्रीतम रास-स्थल पर पधारे तो जितने भी लता-गुल्म आदि थे सभी नारी रूप में परिवर्तित हो गये और नारद जी ने देखा कि जिस अशोक वृक्ष के नीचे वे खड़े थे वह अशोक मंजरी नाम की सखी बन गया। नारद जी ने वहाँ रास देख कर अपने को धन्य माना।

नारद जी की एक अन्य यात्रा का उल्लेख 'वृहद् नारदीय पुराण' में मिलता है जो 'पद्म पुराण' से भिन्न है। इसमें नारद जी की जिस ब्रज-यात्रा का उल्लेख है, उससे उस समय के ब्रज के वन और उपवनों पर प्रकाश पड़ता है।[1] आगे इसी

---

१. आद्यं मधुवनं नाम स्नातो यत्र नरोत्तमः।
संतर्प्य देवर्षि पितृन्विष्णुलोके महीयते ॥६॥
अथ तालवनं देवी द्वितीयं वनमुत्तमम्।
यत्र स्नातो नरो भक्तया कृतकृत्यः प्रजायते ॥७॥
कुमुदारण्यं तृतीयं तु यत्र स्नात्वा सुलोचने।
लभते वांछितान्कामानिहामुत्र च मोदते ॥८॥
ततः काम्यवनं नाम चतुर्थं परिकीर्तितम्।
बहु तीर्थान्वितं यत्र गत्वा स्याद्विष्णुलोक भाक् ॥९॥
यत्तम विमलंकुण्ड सर्वं तीर्थोत्तमोत्तमम्।
तत्र स्नातो नरो भद्रे लभते वैष्णवं पदम् ॥१०॥
पंचम बहुलाख्यं तु वनं पापविनाशनम्।
यत्र स्नातस्तु मनुजः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥११॥
अस्ति भद्रवनं नाम षष्ठ स्नातोऽत्र मानवः।
कृष्णदेवप्रसादेन सर्वभद्राणि पश्यति ॥१२॥

पुराण के अध्याय ८० में लिखा है कि एक बार नारद जी यात्रा करते हुएं वृन्दावन में कुसुम सरोवर पर पधारे जो मथुरा के उत्तर-पश्चिम में है। यहाँ अष्ट-सखियों के कुण्ड के पास गोवर्द्धन पर्वत है।[1] यह वृंदा की तपोभूमि गोवर्धन से नन्दगाँव तक मथुरा के किनारे-किनारे स्थित है। यहाँ भगवान् मध्याह्न के समय सखियों सहित विश्राम करते हैं। यहाँ कुसुम सरोवर का आचमन कर संध्यादि से निवृत्त होकर नारद जी ने गोपी और गोपों को आते हुए देखा और जब दिन आधा प्रहर शेष रह गया तो उन्होंने 'अद्रुम-आश्रम' (नारद कुण्ड) में प्रवेश किया जहाँ उस आश्रम में रहने वाली वृन्दा देवी आगत भगवद्-भक्तों का फलों से स्वागत करती थीं। नारद जी उस तपस्विनी को प्रणाम कर पृथ्वी पर बैठ गये।[2] वृन्दा ने ध्यान योग से उठकर उन्हें आसन दिया, तब नारद ने कृष्ण-रहस्य जानने की इच्छा की।[3] वृन्दा ने उनका अभीष्ट जानकर अपनी सखी माधवी को ध्यान-योग से बुलाया तथा नारद की इच्छा-पूर्ति करने का आदेश दिया। माधवी ने उन्हें वृन्दासर में

खादिरं तु वनं देवि सप्तमं यत्र मानवः।
स्नान मात्रेण लभते तद्विष्णो परमं पदेम् ॥१३॥
महावनं चाष्टमं तु सदैव हरिवल्लभम्।
तद्दृष्ट्वा मनुजो भक्तया शक्रलोके महीयते ॥१४॥
लोहजंघ तु नवमं वनं यत्राप्लुतो नरः।
महाविष्णु प्रसादेन भुक्ति मुक्ति च विंदति ॥१५॥
विल्वारण्यं तु दशमं यत्र स्नातः सु मध्यमे।
शैव व वैष्णवं वापि याति लोकं निजेच्छया ॥१६॥
एकादशं तु भाडीरं योगिनामतिवल्लभम्।
यत्र स्नातुस्तु नरो भक्तया सर्वपापैर्विमुच्यते ॥१७॥
वृन्दावनं द्वादशं तु सर्वपापनिकृंतनम्।
यत्समं न धरा पृष्ठे वन मस्त्यपरं सति ॥१८॥

—उत्तर खण्ड, ७६वाँ अध्याय, मथुरा महात्म्य

१. एकदा नारदो लोकान्पर्यटमगवत्प्रियः ॥५॥
या वृंदारण्यं समासाद्यः तस्थौ पुष्प सर तटे।
पश्चिमोत्तर तो देवि माथुरे मंडने स्थितम् ॥६॥
वृन्दारण्यं तुरीयांशं गोपीकेशरहः स्थलम्।
गोवर्धनो यत्र गिरिः सखी स्थल समीपतः ॥७॥

—वृन्दावन-माहात्म्य, ८०वाँ अध्याय

२. यत्र वृन्दा स्थिता देवी कृष्ण भक्ति परायणा।
समागतानां सत्कारं विदधाना फलादिभिः ॥१४॥
तां दृष्ट्वा तापसी भद्रे नारदः साधु सम्मतः।
नमस्कृत्य विनम्रांगो निषसाद धरातले ॥१५॥

३. ततः स नारदस्तत्र सत्कृतो वृन्दयावसत्।
रहस्यं गोपकेशस्य तस्या जिज्ञासुरादरात् ॥१७॥

स्नान कराया जिससे वे नारी रूप होकर 'नारदी' संज्ञा को प्राप्त हुए ।[1] माधवी उसे बृन्दा के पास ले आई, जहाँ वृन्दा देवी उन्हें वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर भगवान् के रत्न-जटित महल में पहुँचा आई । इस 'केलि महल' में नारद ने श्री कृष्ण को ललितादि सखियों से युक्त देखा । भगवान् के बुलाने पर नारदी लज्जा से नत-मस्तक होकर उनके समीप गई जहाँ श्री कृष्ण ने उसके साथ रमण कर और आलिंगन दे विदा किया ।[2] फिर वह कुसुम सरोवर पर आ गईं । यहाँ माधवी ने उन्हें दक्षिण-पश्चिम कुण्ड में स्नान कराकर पुन: पुरुष रूप में परिणित कर दिया ।[3] बृन्दा की आज्ञा से सरोवर के पूर्व दक्षिण में भगवान् के दर्शन की पुन: लालसा से वे तप करने लगे । वृन्दा देवी इनको नित्य-प्रति आहार के लिए फल भेजा करती थीं । एक दिन नारद जी ने आकाश-मार्ग में विचरते किसी का सुन्दर शब्द सुना । नारद जी उस शब्द रस को ढूंढने की चेष्टा करने लगे किन्तु उसका पता न लगने पर उन्होंने बृन्दा से पूछा । वृन्दा ने उन्हें कुब्जा-कृष्ण का अति गोपनीय रहस्य बताया और कहा कि उसके अतिरिक्त इस रहस्य को और कोई नहीं जानता । यदि वह इस रहस्य को जानना चाहें तो तप करें । उन्होंने यह भी कहा कि एक समय मध्याह्न में श्री कृष्ण स्वामिनी जी सहित उनके यहाँ पधारे तथा विश्राम किया ।

यह एक रहस्य है जिसे सब कोई नहीं जानते किन्तु कुछ प्रकाशित रहस्य अथवा स्थल हैं जहाँ भगवान् ने लीलाएँ की थीं । इसमें ब्रह्म कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, नव प्रकाशित तीर्थ अरिष्ट कुण्ड, श्री कुण्ड, चन्द्र सरोवर, वत्स तीर्थ, अप्सरा कुण्ड, रूप कुण्ड, काम कुण्ड, कदम खण्डी, विमल कुण्ड, भोजन थारी, बलि स्थान, वृहत्सानु (बरसाना), संकेत स्थल, नन्दगाँव, किशोरी कुण्ड, कोकिलावन, शेषसायी, अक्षय वट, राम कुण्ड, चीर घाट, भद्र-वन भांडीर-वन और विल्व-वन का नाम आया है । इन

---

१. ययौ वृन्दांतिकं भद्रे संविधाय तदीप्सितम् ।
अथासौ नारदस्तत्र सन्निमज्योद्गतस्तदा ॥२५॥
ददर्श निजमात्मानं वनितारूपमद्भुतम् ॥
ततस्तु परितो वीक्ष्य नारदी सा शुचिस्मितातम् ॥२६॥

२. ततस्तया समाहूता नारदी सा तदंतिकम् ।
प्राप्ता विश्वासिता स्वस्था नीता चापि स्थलांतरम् ॥२७॥
रत्न प्राकार खचिते भवने वनिता कुले ।
प्रापय्य तां निवृत्तासौ सामि ताभि सुसत्कृता ॥२८॥
विशाखादि सखी वृंदैरास्वास्याऽऽल्यैकया ततः ।
प्रापिताभ्यंतरं देवि सापस्यदगो पिकेश्वरम् ॥३०॥
इत्यां तस्यां निवृत्तायां समाहूता प्रियेण सा ।
नारदीपत्येशं लज्जा नम्रांतिकं ययौ ॥३१॥
रसिकेन समाश्लिष्य रमयित्वा विसर्जिता ।
क्रमेणैव तु संप्राप्तः सा कौसुमं सरः ॥३२॥

३. सा पुनस्तत्र माधव्या मज्जिता दक्ष पश्चिमे ।
पुंभावमभिसंप्राप्तो नारदो विस्मितोऽभवत् ॥३३॥

स्थलों के दर्शन करने से मुक्ति प्राप्त होती है। यहाँ के समस्त पशु, पक्षी, कृमि-कीट-पतंग सदा राधा-कृष्ण का नाम उच्चारण करते रहते हैं। वृन्दावन में पुरुष भाव स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता। यहाँ गोपियाँ सदा पहरा दिया करती हैं तथा कोई भी पुरुष इसमें प्रवेश नहीं कर सकता।

वज्रनाभ द्वारा व्रज-यात्रा

इन पुराणों से भगवान् श्री कृष्ण की नित्य-लीलाओं पर पूर्ण रूप से प्रकाश पड़ता है किन्तु कुछ पुराण उनमें ऐसे भी हैं जो ऐतिहासिक इति-वृति पर प्रकाश डालते हैं। उसमें स्कन्ध पुराण मुख्य है। इसके (श्रीमद्भागवत खण्ड) वर्णन कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण, जहाँ अपना धार्मिक महत्त्व रखते हैं वहाँ उसका ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है। आज के युग में यह सिद्ध हो गया है कि भगवान् श्री कृष्ण एक कल्पना की वस्तु नहीं, इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति थे। इन्हीं कृष्ण की चौथी पीढ़ी में (कृष्ण-अनिरुद्ध प्रद्युम्न वज्रनाभ) वज्रनाभ का जन्म हुआ जिसको अर्जुन ने द्वारका से लाकर मथुरा का राजा बनाया। इसी वज्रनाभ का उल्लेख स्कन्ध पुराण (श्रीमद्भागवत अध्याय) में आया है।[1] इससे विदित होता है कि महाराजा परीक्षित के मथुरा पधारने पर वज्रनाभ ने उनसे शिकायत की कि उसे एक ऐसे स्थान का राज्य दे दिया गया है जहाँ केवल जंगल ही जंगल हैं और कोई व्यक्ति उस स्थान पर नहीं रहा। ऐसे जन-शून्य राज्य का राजा होना व्यर्थ है।[2]

मथुरा की यह निर्जनता अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यद्यपि इस पुराण में व्यवहारिक और नित्य-लीला का भेद यह कह कर बताने की चेष्टा की गई है कि जिन देवता और भक्तों ने उनके साथ इन व्यवहारिक लीलाओं में योग दिया,

---

१. महापंथ गते राज्ञि परीक्षित्पृथिवी पतिः
जगाम मथुरां विप्रा वज्रनाभ दिदृक्षया ॥५॥
पितृव्यमागतं ज्ञात्वा वज्रः प्रेमपरिप्लुतः ।
अभिगम्यभि वाद्य निनाय निज मन्दिरम् ॥६॥
परिष्वज्य स तं वीरः कृष्णैक गत मानसः ।
रोहिण्याद्या हरेः पत्नीर्ववन्दायतनागतः ॥७॥
ताभि सम्मानितोऽत्यर्थं परीक्षित् पृथिवी पतिः ।
विश्रान्तः सुखमासीनो वज्रनाभमुवाच ह ॥८॥
श्री परीक्षिदुवच—तात त्वत्पितृभिर्नूनम स्मत्पितृ पितामहाः ।
उद्धता भूरि दुःखौघादहं च परीक्षितः ॥९॥
न पारयाम्यहं तात साधु कृत्वोपकारतः ।
त्वामतः प्रार्थयाम्यङ्ग सुख राज्येऽनुभुज्यताम ॥१०॥

—स्कन्द पुराण, द्वितीय वैष्णव खण्ड, श्री भागवत माहात्म्य (प्रथम अध्याय)

२. माथुरे त्वभिषिक्तोऽपि स्थितोऽहं निर्जन वने ।
क्व गता वै प्रजाऽत्रात्या यत्र राज्या प्ररोचते ॥ —वही. श्लोक १५

वे यद्यपि भगवान् के अन्तर्ध्यान होने के साथ ही साधारण दृष्टि से अदृश्य अवश्य हो गये हैं, फिर भी वे उनकी नित्य-लीला में आज भी विद्यमान हैं किन्तु यदि हम तनिक भी उस समय की राजनीतिक परिस्थिति पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि जरासंध की निरन्तर चढ़ाइयों से यहाँ से निश्चय ही बहुत से मनुष्य ब्रज प्रदेश छोड़ कर अन्यत्र जा बसे तथा मथुरा से भागते समय रणछोड़ के सहयोगी, भक्त और प्रजा उनके साथ द्वारका चली गई तथा यहाँ ब्रज-मण्डल में निर्जनता छा जाने के कारण यहाँ जंगल ही जंगल हो गये ।

यहाँ की अवस्था देखकर राजा परीक्षित ने कृष्ण के क्रीड़ा-स्थलों पर उन्हीं के नाम से गाँव बसाने की सलाह दी किन्तु यह कार्य अत्यन्त कठिनता का था । कृष्ण को मथुरा छोड़े लगभग सौ वर्ष हो गये थे । चारों ओर जंगल ही जंगल था । इसमें स्थान विशेष का पता लगाना अत्यन्त कठिन था । इसलिए उन्होंने उसे गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (पुरानी गोकुल), नन्दीग्राम (नन्दगाँव) और वृहत्सानु (बरसाना) में अपनी छावनी बनाने की आज्ञा दी । इसमें यदि मथुरा और महावन को छोड़ दें तो सभी स्थान ब्रज की उत्तरी सीमा पर पड़ते हैं । इसी में आगे चल कर लिखा है कि इन दुर्गों में रहकर उन लीला-स्थलों, नदी, पर्वत, सरोवर, कुण्ड तथा वन आदि का सेवन करना चाहिए किन्तु प्रदेश के अन्दर के लीला-स्थलों का कोई पता नहीं लगता था । इस कार्य में गोपों के पिरोहित शाण्डिल्य ऋषि ने सहायता की[1] और उन्होंने उन सभी स्थानों को पहिचान दिया जहाँ भगवान् ने लीलायें की थीं । राजा परीक्षित और वज्रनाभ ने उन सभी स्थानों को बसाया, लीलाओं के नामों के अनुसार उन स्थानों के नाम रखे गये, उनके लीला-विग्रहों की स्थान-स्थान पर स्थापना की गई ।[2] भगवान् के नाम पर कुण्ड और कुए खुदवाये[3] तथा कुञ्ज और बगीचे लगवाये । शिव जी आदि देवताओं की स्थापना की गई तथा गोविन्द, हरिदेव आदि नामों से भगवद्-विग्रह स्थापित किए गए ।[4]

यह ब्रज की प्रथम खोज तथा वज्रनाभ की ब्रज की यात्रा कही जा सकती है ।

---

१. अथोरजं विहायाशु शांडिल्यः समुपागतः ।
   पूजितो ब्रज नामेन निषसादासनोत्तमे ॥१७॥

२. कृष्ण लीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः ।
   त्वया वासयता ग्रामान संसेव्या भूरयं परा ॥२७॥
   गोवर्द्धने दीर्घपुरे मथुरायां महावनें ।
   नन्दिग्रामे वृहत्सानौ कार्या राज्य-स्थिति स्वया ॥
   नद्यद्रि द्रोणि कुण्डादिकुञ्जलसं सेवतस्तव ॥
   राज्ये प्रजाः सुसंपन्नास्त्वं च प्रीतो भविष्यति ॥३८-३९॥

३. वज्रस्तु तत्सहायेन शाण्डिल्य ऽप्यनुग्रहात ।
   गोविन्द गोप गोपीनां लीलास्थानान्यनुक्रमात ॥२-४॥
   विज्ञायाऽभिधयाऽऽ स्थाप्य ग्रामानारासवहून ॥
   कुण्डकूपादिपूर्तेन शिवादिस्थापनेन च ॥५॥

४. गोविंद हरिदेवादिस्वरूपाऽऽरोपणेन च ।
   कृष्णैक भक्ति स्वे राज्ये ततान च मुमोदय ॥२-६॥

परन्तु राजा वज्रनाभ ने ब्रज के पुनर्स्थापन की जो चेष्टा कीं वे स्थायी न रह सकीं। बाद में देश में जैन धर्म और बौद्ध धर्म आदि के विकास के कारण, जिन का मथुरा स्वयं बड़ा केन्द्र बन गया था, भगवान् कृष्ण के लीला-स्थलों को सुविदित नहीं रखा जा सका। मुसलमानों के आक्रमण ने यहाँ की संस्कृति और वैभव को पूरी तरह ही ध्वस्त कर दिया।

इसलिए भक्ति-युग में सगुण कृष्ण-भक्ति का केन्द्र 'ब्रज' में स्थापित होने पर 'ब्रज' के पुनरुद्धार की ओर फिर ध्यान दिया गया। ब्रज को कृष्ण-भक्ति का केन्द्र बनाने का मुख्य श्रेय दो आचार्यों को है। इनमें दक्षिण की धारा के प्रवृतक थे आचार्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य तथा पूर्व की ओर के थे श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु। इन आचार्यों व इनके शिष्यों द्वारा 'ब्रज' के पुनरुद्धार के जो प्रयत्न हुए उन्हें ब्रज की दूसरी खोज कहा जा सकता है।

आचार्य महाप्रभुओं द्वारा 'ब्रज' की खोज

वैष्णव सम्प्रदाय के ग्रन्थों से पता लगता है कि सं० १५४९ फाल्गुन शुक्ला ११ को महाप्रभु वल्लभाचार्यजी को झारखण्ड में 'ब्रज' के आने की प्रेरणा हुई और वह ब्रज में आ गये। यहाँ आकर उन्होंने श्री नाथ जी का दर्शन किया और उनका पाटोत्सव कराया। इसी समय उजागर चौबे को साथ लेकर वे ब्रज में विभिन्न स्थानों पर गये।[1] वल्लभाचार्य[2] जब-जब अपनी यात्रा समाप्त करते तब-तब वह गिरिराज आकर श्री नाथ जी की सेवा और प्रबन्ध करते थे। उनके जीवन-चरित्र से तीन यात्राओं का पता लगता है जो सं० १५६८ तक समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार उनकी ब्रज की तीन बार यात्रा तो अवश्य ही होनी चाहिए और भी यदि कोई यात्रा हुई हो तो उसका पता नहीं चलता। वल्लभाचार्य ने ब्रज के जिन स्थानों पर ठहर कर श्रीमद्भागवत परायण किया वह 'बैठक' कहलाते हैं। समस्त भारतवर्ष में चौरासी बठकें हैं—सं० १५५० वि० में ब्रज में जिन स्थानों पर वे उजागर चौबे के साथ गये और वहाँ से लौटकर उनको १००) दक्षिणा स्वरूप प्रदान कर अपना पुरोहित बनाया, वह इस प्रकार हैं—

(१) गोकुल—गोविन्द घाट पर। यहाँ सं० १५५० वि० श्रावण शुक्ल ११ के दिन प्रथम बार गोकुल आने पर 'ब्रह्म-सम्बन्ध' की आज्ञा और श्री भगवान् को 'पवित्रा' पहिराये।

---

१. काकरोली का इतिहास, पृ० ४९।

२. 'यदुनाथ विजय' में वल्लभाचार्य जी की तीन यात्राओं का उल्लेख मिलता है—
प्रथम यात्रा—९ वर्ष में पूर्ण।
(अनुमानतः सं० १५४९ अथवा ५० से १५५८ या ५९ वि०।)
द्वितीय यात्रा—५ वर्ष में पूर्ण।
(अनुमानतः सं० १५५८ वि० अथवा ५९ से सं० १५६३, अथवा ६४ तक।)
तृतीय यात्रा—५ वर्ष में पूर्ण।
(अनुमानतः सं० १५६३ अथवा ६४ से सं० १५६८, अथवा ६९ तक।)
कांकरोली का इतिहास, पृ० ६४

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी

गुसाईं श्री विट्ठलनाथ जी

(२) **गोकुल**—भीतर की बड़ी बैठक जहाँ वे निवास करते थे।

(३) **गोकुल**—शैया मन्दिर की बैठक। यहाँ एक योगी दर्शनार्थ आया उसने गोकुल बसने और सात मन्दिर बनने की भविष्यवाणी की।

(४) **वृन्दावन**–बंशीवट के पास। यहाँ प्रभुदास जलोटा खत्री को स्थल का महात्म्य बताकर बिना स्नान किये ही सखड़ी प्रसाद खिलाया।

(५) **मथुरा**–विश्रामघाट पर। पहिले यह स्थान श्मशान था, जिसे हटाने के लिए वल्लभाचार्य ने कृष्ण दास मेघन द्वारा अपने कमण्डल से जल छिड़कवाया। इसके पश्चात् यहाँ असकुण्डा से लेकर सूर्य-कुण्ड तक बस्ती बस गई।

सं० १५५० वि० आश्विन कृष्ण १२ को उन्होंने उजागर चतुर्वेदी को पुरोहित बनाया और ब्रज-यात्रा आरम्भ की। वल्लभाचार्य ब्रज के जिन-जिन स्थलों पर गये और भागवत का परायण किया, उनका वर्णन इस प्रकार है।

मधुवन—कृष्ण कुण्ड पर कदम्ब के नीचे।

तालवन-कमोदवन—तालवन में किसी भगवत स्वरूप के न होने से भागवत की पारायण नहीं की, कमोदवन में पारायण की।

बहुलावन—कृष्ण कुण्ड के ऊपर उत्तर दिशा में वट वृक्ष के नीचे यहाँ के ब्राह्मणों की प्रार्थना पर वल्लभाचार्य जी ने मुसलमान हाकिम को चमत्कार दिखा कर बहुला गाय की पूजा प्रारम्भ कराई।

राधा कुण्ड-कृष्ण कुण्ड—राधा कुण्ड में स्वामिनीजी के महल के पास यहाँ एक निवास किया।

मानसी गंगा–घाट के ऊपर। कहा जाता है यहाँ छः महीना पूर्व से श्री कृष्ण चैतन्य बैठ कर भगवत् नाम का जप कर रहे थे। वे वल्लभ के आने पर उनसे मिले।

परासोली—चन्द्र सरोवर के पास।

आन्योर—सद्दू पाण्डे के घर में।

गोविन्द कुण्ड—श्री कृष्ण चैतन्य को 'कृष्ण प्रेमामृत' नामक ग्रन्थ प्रदान किया।

सुन्दर शिला—गिर्राज। यहाँ श्री नाथ जी का दीपावली और अन्नकूट का उत्सव किया।

गिरिराज—श्री नाथ जी के मन्दिर के दक्षिण भाग में एक चौंतरी। यहाँ सेवा करने के बाद आप विराजते थे। यहाँ प्रबोधिनी तक रहे। (यह बैठक प्रकट नहीं है)

कामवन–सुरभि कुण्ड या श्री कुण्ड। कहा जाता है आपने यहाँ रहने वाले एक ब्रह्म-पिशाच की मोक्ष कराई।

गह्वरवन, बरसाना—कुण्ड के ऊपर। यहाँ एक अजगर को देखा जिसे बहुत से चींटे खा रहे थे। महाप्रभु ने जल से सींच कर उसकी मोक्ष कराई। सेवकों के पूछने पर बतलाया कि यह वृन्दावन का एक महन्त था जिसने अपने शिष्यों से धन लिया पर उनके उद्धार का कोई मार्ग नहीं बतलाया। आज उसके शिष्य इस रूप में बदला ले रहे हैं।

संकेतवन—छोंकर के वृक्ष के नीचे।

नन्दगाँव—यहाँ छह मास तक निवास किया।

कोकिलावन—कृष्ण कुण्ड के ऊपर। यहाँ एक मास विराजे। यहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय के चतुरा नागा नामक एक साधु और उनके साथियों के आग्रह करने पर आचार्य चरण ने उन्हें भोजन कराया और प्रार्थना करने पर कहा कि कुछ वर्षों के बाद हमारे वंशज तुम्हें अपना शिष्य बनावेंगे।

भांडीरवन—माध्व सम्प्रदाय के महन्त व्यास तीर्थ ने उन्हें अपना शिष्य बनाना चाहा परन्तु वे इस कार्य में सफल न हो सके।

मानसरोवर—यहाँ वल्लभाचार्य ने दामोदर दास को अलौकिक दर्शन दिये।

यहाँ से जाकर गोकुल में नन्द-महोत्सव किया जिसमें वृक्ष में चादर बाँध कर नवनीत लाल जी को पालना झुलाया।

फिर विश्राम घाट मथुरा में आकर ब्रज-यात्रा पूरी की और अपने पुरोहित उजागर चौबे को १००) प्रदान किये।

वल्लभाचार्य के इन यात्रा-स्थलों को देख कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आचार्य महाप्रभु ने ब्रज स्थित उन्हीं १२ वन की यात्रा की जिसका उल्लेख नारद पुराण (उत्तर भाग ७९ अध्याय) में मिलता है किन्तु इसमें लोहजंघवन (लोहवन) का वर्णन नहीं है। महावन का भी उल्लेख गोकुल नाम से मिलता है। वर्तमान काल में महावन को ही प्राचीन गोकुल कहते हैं। सूरदास ने अपनी सूरसारावलि में बारह वनों का उल्लेख करते हुए इसी गोकुल का वर्णन किया है तथा निम्नलिखित नाम गिनाये हैं—

"यहि विधि क्रीड़त गोकुल में हरि निज वृन्दावन धाम।
मधुवन और कुमुदवन सुन्दर बहुलावन अभिराम॥
नन्दगाम संकेत खिदरवन और कामवन धाम।
लोहवन माठ वेलवन सुन्दर भद्र वृहद्वन गाम॥
चौरासी ब्रज कोस निरन्तर खेलत हैं बल-मोहन।
सामवेद रिगवेद यजुर में कहेउ चरित ब्रज मोहन॥"

—'सूरसारावलि १०८८-१०९०

वराह पुराण (अध्याय १५३ और १६२) में मधुवन, तालवन, कुन्दवन, कामवन, बकुलवन, मधुवन, खादिरवन, महावन, लोहजंघवन, विल्ववन, भांडीरवन, और वृन्दावन नाम से बारह वनों का उल्लेख आया है।

इस यात्रा से यह भी विदित होता है कि वल्लभाचार्य के ब्रज में पधारने के पूर्व माध्व, निम्बार्क और गौड़िया सम्प्रदाय के अनुगामी इसके पूर्व ही यहाँ आ चुके थे, जैसा कि श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु की ब्रज-यात्रा से विदित होता है। वल्लभाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से गोविन्द कुण्ड पर भेंट की तथा उनको 'कृष्ण प्रेमामृत' नामक ग्रन्थ भेंट किया। प्रयाग प्रदीप (पत्र ३०) से विदित होता है कि संवत् १५५७ वि० के लगभग चैतन्य महाप्रभु प्रयाग पधारे थे। इसी सम्बन्ध में एक अनुश्रुति प्रसिद्ध है कि जब चैतन्य महाप्रभु प्रयाग पधारे, एक दिन वल्लभा-

चार्य जी ने भिक्षा के लिए उन्हें निमन्त्रित किया तो वे कृष्ण-भक्ति में विह्वल होकर नाव में ही नाचने लगे और यमुना जी में गिर गये। लोगों ने उन्हें यमुना जी से निकाला तथा फिर उन्हें भोजन कराकर वापिस कर दिया। बल्लभकुल सम्प्रदाय की वार्ताओं के आधार पर इस भेंट का काल सं० १५५० वि० माना गया है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की उत्कट इच्छा थी कि ब्रज में लुप्त हुए तीर्थों का पुनः उद्धार किया जाय। 'चैतन्य-चरितामृत' (प्रथम अध्याय) में लिखा है—

"दोल यात्रा बइ प्रभु रूपे आज्ञा दिला।
अनेक प्रसाद करि शक्ति सञ्चिरिला॥
वृन्दावने जाओ तुमि रहिओ वृन्दावने।
एक बार इहाँ पाठाई ओ सनातने॥
ब्रजे जाइ रस-शास्त्र कर निरूपण।
तीर्थ सब लुप्त तार करिओ प्रचारण॥
कृष्ण सेवा रस-भक्ति करिओ प्रचार।
आमिओ देखिते ताहाँ जाव एक बार॥"

'भक्त-रत्नाकर' (पंचम तरंग) में लिखा है कि वज्रनाभ ने जिन ग्रामों को बसाया था तथा विग्रहों की स्थापना की या कुण्डों को प्रकाश में लाये थे वे कितने ही समय पूर्व गुप्त हो गये थे। उनका अन्वेषण करने के लिए आचार्य महाप्रभु (श्री कृष्ण चैतन्य) ने रूप और सनातन नामक दोनों भाइयों को ब्रज में भेजा। पुलिन विहारी दत्त (माथुर कथा, पृ० २७९) के अनुसार उन्होंने चौदह-पन्द्रह वर्ष यहाँ रहकर वाराह पुराण के अन्तर्गत आये हुए स्थानों का नाम देख कर कृष्ण-लीला सम्बन्धी स्थानों का अन्वेषण किया। कविराज कृष्णदास ब्रह्मचारी द्वारा रचित 'चैतन्य-चरितामृत' में चैतन्य देव की ब्रज-यात्रा का वर्णन हुआ है। इसी ग्रंथ का अनुवाद ब्रजभाषा में सुवल श्याम जी ने किया था। इस ग्रंथ के अनुसार चैतन्य देव की ब्रज-यात्रा का निम्न प्रकार है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की ब्रज-यात्रा—श्री चैतन्य महाप्रभु के निज शिष्य श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी के 'चैतन्य चरितामृत' के तीन भाग हैं, आदि, मध्य और अन्त लीला। इसमें मध्य लीलान्तर्गत १६ से १८ अध्याय तक उनकी ब्रज-यात्रा का वर्णन है। पुस्तक में यात्रा का समय नहीं दिया गया है किन्तु एक मोटा अनुमान लगाया जा सकता है। पुस्तक के सम्पादक पं० क्षीरोद चंद गोस्वामी के मतानुसार आदि-लीला उनकी २५ वर्ष की आयु तक की कथा है। मध्य-लीला में उनके ६ वर्ष तक भ्रमण का वर्णन और अन्त-लीला उनके शेष १८ वर्ष का जीवन-वृत्त है। श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म सं० १४०७ शाके में हुआ था। इस प्रकार उनका सन्यास लेकर भ्रमण का काल १४४२ शक सं० आता है। भ्रमण-काल में उनकी ब्रज आने की बड़ी इच्छा थी किन्तु उनके भक्त उनको आने ही नहीं देते थे। इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गये।[1] इससे उनकी ब्रज-यात्रा का समय सं० १४४४ शकः आता है।

---

१. "बहुत उत्कंठा मोरे जाइते वृन्दावन। तो मार हठे दुइ वत्सर ना केल गमन॥"

वर्षा व्यतीत होने पर विजया दशमी के दिन उन्होंने लीलाचल से बलभद्र भट्टाचार्य के साथ रात्रि समय अकेले ही प्रस्थान किया और भक्त लोग उन्हें फिर आकर न घेर लें इससे वे पथ छोड़ कर उप पथों के सहारे ही चलते थे। मार्ग में उन्हें हिंसक पशु भी मिलते थे। वे भी उनकी अभ्यर्थना करते थे। वे झारखण्ड होते हुए काशी, प्रयाग आये और वहाँ से फिर मथुरा की ओर चल पड़े।

मथुरा के निकट आकर उन्होंने दूर से मथुरा देखी, दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेमाविष्ट हो गये।[1] यहाँ आकर उन्होंने विश्राम घाट पर स्नान किया। जन्म-स्थान में केशवदेव के दर्शन किये, प्रणाम किया और प्रेमावेश में नाचने-गाने लगे।[2] यहाँ वे माधवेन्द्रपुरी के शिष्य एक सनाढ्य ब्राह्मण के घर ठहरे और वहीं भोजन किया। यहाँ फिर उन्होंने यमुना के चौबीस घाटों पर स्नान किया और यहाँ के स्वयंभू, विश्राम, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या, गोकर्ण आदि तीर्थों को विस्तारपूर्वक देखा तथा उसी ब्राह्मण को संग लेकर मधुवन, तालवन, कुमुदवन गये और वहाँ स्नान किया।[3]

यहाँ से आप वृन्दावन पधारे। कविराज ने वृन्दावन का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वह लिखते हैं कि प्रभु को देख कर समस्त प्रकृति प्रेम से पुलकायमान हो गई।[4]

इसी प्रकार उन्होंने बारह वनों का भ्रमण किया जिसका लिख कर वर्णन नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार वह भ्रमण करते हुए आटि गाँव आये। यहाँ उन्होंने लोगों से राधा कुण्ड की कथा पूछी किन्तु कोई न बता सका। साथ का ब्राह्मण भी नहीं बता सका। प्रभु ने तीर्थ को लुप्त जान कर उस स्थान पर अल्प जल में ही स्नान किया। और स्तवन करते हुए बताया कि यह कुण्ड प्रिया-प्रीतम की नित्य जल-केलि-क्रीड़ा स्थली सरसी (सरोवर) है जहाँ स्नान करने से कृष्ण राधा सदृश प्रेम-दान करते हैं। कुण्ड की माधुरी राधा की माधुरी और कुण्ड की महिमा राधा की महिमा

---

१. "मथुरा निकटे आइला मथुरा देखिया। दण्डवत् होइया पड़े प्रेमाविष्टे होइया॥"

२. "मथुरा आसिया केल विश्राम तीर्थ-स्नान। जन्म स्थाने केशव देखि करिल प्रणाम॥"

३. "यमुनाद चब्बीश घाटे प्रभु केल स्नान। सेई विप्र प्रभु को देखाय तीर्थ-स्नान॥
स्वयंभू, विश्राम, दीर्घ विष्णु, भूतेश्वर। महाविद्या गोकर्णादि देखिला विस्तर॥
वन देखिवार जदि प्रभु मन हेइल। सेइ त ब्राह्मण प्रभु संग ते लइल॥
मधुवन तालवन कुमुदवन गेइला। तहाँ-तहाँ स्नान करे प्रेमाविष्टे गेइला॥"

४. "प्रभु देखे वृन्दावने वृक्ष लता गण। अंकुर पुलक मधु अश्रु परिषण॥
फूल फल भरी डाल पड़े प्रभु पाय। बन्धु देखे बन्धु जेन भेट लैये आय॥
प्रभु देखे वृन्दावन स्थावर जंगम। आनन्दित बन्धु जेन देखे बन्धु गण॥

है।[1] यह कह कर कुण्ड की मिट्टी लेकर उन्होंने तिलक लगाया और भट्टाचार्य ने कुछ मिट्टी अपने साथ ले ली।

वहाँ से चलकर वे कुसुम सरोवर आये।[2] फिर गोवर्द्धन आये। गोवर्द्धन आकर उन्होंने हरिदेव जी के दर्शन किये।[3] प्रातःकाल मानसी गंगा में स्नान करके गोवर्द्धन की परिक्रमा को प्रस्थान किया।[4] गोविन्द कुण्ड पर पहुँच कर स्नान किये। वहाँ सुना कि यहाँ गोपाल जी का गाँठोली गाँव है।[5] गाँठोली पहुँच कर गोपाल जी के दर्शन किये और प्रेमावेश में आकर कीर्तन और नृत्य करने लगे। इस प्रकार गोपाल जी के तीन दिन दर्शन किये। यही गोपाल जी म्लेक्षों के भय से एक महीना मथुरा में श्री विट्ठलेश्वर (श्री बल्लभाचार्य के पुत्र) के घर में रहे।[6]

यहाँ से महाप्रभु कामवन गये। यहाँ केलि-स्थली देखकर, नंदीश्वर के दर्शन किये फिर सब कुण्डों में स्नान किया। फिर यहाँ लोगों से पूछा कि यहाँ क्या कोई देव-मूर्ति है? लोगों ने बताया कि यहाँ गुफा के भीतर माता-पिता के मध्य में त्रिभंगी स्वरूप का दर्शन है।[7] यह सुनकर उनको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और गुफा खोलकर दम्पति का ध्यान धर कर कृष्ण के सर्वाङ्ग का स्पर्श किया। सब दिन प्रेमावेश में नृत्य-गीत करते रहे और वहाँ से वे खिदरवन गये। यहाँ से शेषशायी जाकर लक्ष्मी जी के दर्शन किये।[8] फिर खेला तीर्थ होते हुए भांडीरवन आये और वहाँ से यमुना पार कर भद्रवन गये। यहाँ से श्रीवन, श्रीवन से लोहवन और लोहवन से महावन जाकर जन्म-स्थान के दर्शन किये। यमलार्जुन के दर्शन कर गोकुल आये और फिर गोकुल का दर्शन कर मथुरा आ गये। यहाँ जन्म-स्थान का दर्शन कर उसी ब्राह्मण के घर

---

१. एइ मत महाप्रभु नाचिते-नाचिते। आरि ग्रामे आसि बाह्य हैइल आचम्बित॥
राधाकुण्ड वार्ता प्रभु पूछे लोक स्थिने। केह नाहि कहे संगेर ब्राह्मण न जाने॥
तीर्थ लुप्त जान प्रभु सर्वज्ञ भगवान्। दुई धान्य क्षेत्रे अल्प जले केल स्नान॥
देखि सब ग्राम्य लोकेर विस्मय होइल मन। प्रेमे प्रभु करे राधा कुण्डेर स्तवन॥
सब गोपी हैइति राधा कृष्णेर प्रेयसी। तैछि राधाकुण्ड प्रिय-प्रियार सरसी॥
जेई कुण्ड नित्य कृष्ण राधिकार संगे। जले जल केलि करे तीरे रास रंगे॥
सेई कुण्ड जेई एक बार करे स्नान। तारे राधा सम प्रेम कृष्ण करे दान॥
कुण्डेर माधुरी येन राधार मधुरिमा। कुण्डेर महिमा येन राधार महिमा॥
२. तबे चले एला प्रभु सुमना सरोवर। तहाँ गोवर्धन देखि होइला विह्वल॥
३. मेये मत चलि एला गोवर्धन ग्राम। हरिदेव देखे तहाँ करिला प्रणाम॥
४. प्रातःकाल प्रभु मानस गंगाय करि स्नान। गोवर्धन परिक्रमाय करिला पयान॥
५. गोविन्द कुण्डादि तीर्थ प्रभु केल स्नान। तहाँ शुनि ले गोपाल गाठोली ग्राम॥
६. म्लेच्छ भये एला गोपाल मथुरा नगरे। एक मास रहिल विट्ठलेश्वर घरे॥
७. प्रस्तावे कहिला गोपाल कृपालु आख्याने। तबे महाप्रभु गेला श्री काम्यवने।

× × ×

तहाँ लीलास्थली देखि गेला नन्दीश्वर। नन्दीश्वर देखे प्रभु होइला विह्वल॥
पावनादि सब कुण्ड स्नान करिया। लोकेर पूछे पर्वत ऊपर जाइया॥
किछू देव मूर्ति होइ पर्वत ऊपरे। लोक कहे मूर्ति होय गोफार भितरे॥
दुई दिके माता-पिता पुष्ट कलेवर। मध्ये एक शिशु होय त्रभंगे सुन्दर॥
८. सब दिन प्रेमावेशे नृत्य गीत केला। तहाँ होइते प्रभु खदिरवन गेला॥
लीला-स्थल देखे तहाँ गेला शेषशायी। लक्ष्मी देखे एई श्लोक पढ़ेत गुसाई॥

आ गये। किन्तु यहाँ भीड़ अधिक रहती थी। इसलिए वे एकान्त में अक्रूर घाट पर रहने को आ गये। फिर वृन्दावन जाकर काशी-हृद में स्नान किया, द्वादशादित्य होते हुए केशी तीर्थ और वहाँ से रासस्थल पर आकर प्रेमावेश में प्रभु मूर्च्छित हो गये।[1] इस प्रकार ब्रज की यात्रा कर और कुछ दिन यहाँ रहकर माघ लगते ही वे प्रयाग के लिए रवाना हो गये।

इस प्रकार इस यात्रा में दो सम्प्रदायों का मुख्य हाथ रहा है। एक वल्लभ-कुल सम्प्रदाय का तथा दूसरे गौड़िया सम्प्रदाय का। दोनों ही सम्प्रदाय इस बात का दावा करते हैं कि ब्रज-यात्रा का प्रारम्भ उन्हीं के द्वारा हुआ है। गौड़िया सम्प्रदाय वाले तो इस बात को अनेक सबल प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि यात्रा का आरम्भ श्री नारायण द्वारा ही हुआ था।

श्री नारायण भट्ट का जन्म-काल संवत् १५८८ वि० है तथा सं० १६०२ उनका ब्रजागमन काल माना जाता है। जैसा कि हम पहले बता आये हैं श्री वल्लभाचार्य ने अपनी प्रथम ब्रज-यात्रा सं० १५५० वि० में की थी, तथा इसके पश्चात् उनकी दो और ब्रज-यात्राओं का उल्लेख मिलता है। सं० १६०० वि० में तो श्री गुसाईं विट्ठल नाथ जी के हस्त-लेख प्रमाण भी मिलते हैं जिनमें उन्होंने ब्रज की यात्रा की थी। फिर भी हम इस विवाद में नहीं जाना चाहते। हमारा तो मत है कि इन दोनों सम्प्रदायों के महात्माओं की लगन और अथक प्रयास से ही ब्रज का उद्धार हो सका।[2] इन महात्माओं ने जब ब्रज-यात्रा का प्रचार किया तो उन सभी साधनों को अपनाया जो कृष्ण-भक्ति प्रचार के चार स्तम्भ कहे जा सकते हैं। इन का उल्लेख यहाँ किया जाना आवश्यक है—

१. प्रवचन द्वारा।
२. कीर्तन द्वारा।
३. तत्सम्बन्धी रचनाओं द्वारा।
४. रासलीला के अभिनय द्वारा।

इन साधनों को अपने रूप में ढालने के लिए गुसाईं विट्ठल नाथ जी व गौड़िया महात्माओं ने देश के विभिन्न भागों में समय-समय पर अनेक यात्रायें कीं। इन यात्राओं का क्षेत्र दोनों का भिन्न-भिन्न था। गौड़िया सम्प्रदाय वालों ने बिहार, बंगाल, आसाम और मणीपुर के क्षेत्र में कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया। इनकी उपासना जुगल-

---

१. तबे खेला तीर्थ देखे भांडीरवन एला। यमुना ते पार होइया भद्रवन गेला॥
श्रीवन देखि पुनः गेला लोहवन। महावन गया जन्म-स्थान दरशन॥
यमुलार्जुन भंग्यदि देखिल सेइ स्थल। प्रेमावेशे प्रभु मन हेइला रलमल॥
गोकुल देखिया आइला मथुरा नगरे। जन्म स्थान देखि रहे सेई विप्र घरे॥
लोकेर संघट-देखि मथुरा छाड़िया। एकान्ते अक्रूर तीर्थ रहिल आसिया॥
आर दिन ऐला प्रभु देखिते वृन्दावन। कालीय ह्रद स्नान कर प्रार प्रस्कन्दन॥
द्वादश आदित्य हो इते केशी तीर्थ ऐला। रास-स्थली देखे प्रेमे मूर्छित होइला॥

२. आचार्य वल्लभ के बाद ही ब्रज की सामूहिक यात्रा की भावना विकसित हुई और आचार्यों ने जनता को सार्वजनिक रूप से यात्रा की प्रेरणा दी। गुसाईं विट्ठलनाथ जी व श्री नारायण भट्ट को ही ब्रज की सामूहिक यात्रा के आरम्भ का श्रेय है। —सम्पादक

उपासना थी तथा माधुर्य-भावना से ओत-प्रोत थी। इनमें निवृत्ति की भावना अधिक थी और वह सब सांसारिक सुखों को छोड़ कर भगवान् की 'नित्य-लीला' में सम्मिलित हो जाना ही परम-लक्ष्य समझते थे। वल्लभकुल सम्प्रदाय में यद्यपि श्री वल्लभाचार्य ने तीन-तीन बार पृथ्वी-परिक्रमा की जिसका उद्देश्य समस्त भारत में बालरूप कृष्ण की उपासना का प्रचार था। तन-मन-धन समस्त वस्तुओं का, अपने कुटुम्ब सहित, आत्म-समर्पण की भावना भगवान् के प्रति निहित थी किन्तु जिस बीज का रोपण श्री वल्लभाचार्य ने किया उसको वृक्ष रूप देने का श्रेय श्री गुसाईं विट्ठलनाथ जी को था। इन्होंने बार-बार राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र की यात्रा की, वहाँ की जनता को अपने सिद्धान्तों को समझा कर अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। उनका मार्ग प्रवृत्ति-मार्ग होने के कारण लोग सहज ही में इनके मत की ओर आकृष्ट हो गये और आज समस्त गुजरात और सौराष्ट्र इनके सेवक हैं। इस प्रकार इन दोनों का क्षेत्र एक प्रकार से विभाजित हो गया, गौड़िया सम्प्रदाय वाले पूर्व की, तथा वल्लभकुल सम्प्रदाय वाले पश्चिम की ओर अपना-अपना क्षेत्र बना कर कार्य करने लगे। ब्रज का पवित्र क्षेत्र उनका केन्द्र-विन्दु था जहाँ प्रत्येक वैष्णव आकर अपने को धन्य मानता है।

इन प्रवचनों के साथ-साथ इन लोगों ने अपने-अपने उपास्य देवों के विग्रहों को भी ब्रज में स्थापित किया जिनकी सेवा वे अपनी-अपनी प्रणाली द्वारा करते थे। दोनों के उपास्य श्री गोवर्धन में विराजते थे। एक में जहाँ नाम-संकीर्तन होता था वहाँ श्री नाथ जी के मन्दिर में अष्ट-सखाओं की वाणी का ध्रुपद प्रणाली में कीर्तन होता था जो उस समय का सर्वोत्कृष्ट शास्त्रीय-संगीत माना जाता था।

इस प्रकार सिद्धान्तों के पृष्ठ-पोषण करने को वे लोग विभिन्न ग्रंथों की रचना करते थे, जो लोगों को स्वाध्याय और चिंतन के लिए ज्ञान का अटूट श्रोत थे। गौड़िया सम्प्रदाय की जितनी भी रचनाएँ हुईं वे प्रायः संस्कृत और बंगला साहित्य की अमूल्य थाती हैं। कुछ रचनाएँ बंगला लिपि में लिखी जाकर ब्रजभाषा में रची गईं जो अभी 'ब्रज बुलि' नाम से प्रकाश में आई हैं। वल्लभ कुल सम्प्रदाय में जो रचनाएँ हुईं वे संस्कृत तथा ब्रजभाषा में रची गईं। गुजराती भाषा में भी अनेक ग्रंथों की रचना उनके सम्प्रदाय वालों ने की। इस प्रकार के साहित्य का यदि एक पुस्तकालय के रूप में संग्रह किया जाय तो एक बहुत ही विशाल पुस्तकालय बन जायगा। अन्तिम उपाय जो इन महात्माओं ने किया वह भगवान् के लीला सम्बन्धी प्रदर्शनों का था। इसी के लिए रास का पुनरुद्धार किया गया और उसके लिए विविध पद्य-मय लीलाओं की रचना हुई। पीछे से बंगाल में भी रासलीला आरम्भ हुई। यह रासलीला वहाँ 'जात्रा' कहलाती है। इसकी वेष-भूषा आदि ब्रज की रासलीला से पृथक् रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक यात्राओं के साथ इसका सम्बन्ध होने के कारण ही इसका नाम 'जात्रा' पड़ गया। आज भी ब्रज-यात्राओं में रास-मण्डली यात्रा का एक आवश्यक अंग मानी जाती है।[१]

---

१. धर्म प्रचार सम्बन्धी कार्यों में आज भी इन्हीं चार उपायों का प्रयोग किया जाता है। इससे प्रकट होता है कि उस समय इन लोगों की कितनी दिव्य दृष्टि थी तथा वे लोग अपने कार्य के प्रति कितने जागरूक थे।

वल्लभाचार्य की तीनों ब्रज-यात्राओं के पश्चात् जिनकी अन्तिम यात्रा सं० १५६८ वि० को समाप्त हो जाती है, उन्होंने कोई यात्रा नहीं की। उनका 'नित्य-लीला' प्रवेश सं० १५८७ वि० में हो गया था। इनके दो पुत्र थे श्री गोपीनाथ और गुसाईं विट्ठल नाथ। इसमें गोपीनाथ जी तथा उनके पुत्र पुरुषोत्तम जी का अल्प आयु में ही लीला-संवरण हो गया। इसके पश्चात् श्री विट्ठल नाथ जी ने श्री नाथ जी की सेवा आरम्भ की।

गुसाईं विट्ठल नाथ जी की ब्रज-यात्रा

सं० १६०० वि० भाद्र कृष्ण में गुसाईं जी ने अपनी मातृ श्री को साथ लेकर ब्रज चौरासी कोस की यात्रा की और वहाँ पर उजागर चौबे शर्मा को अपना पुरोहित बनाया। इसका वृतिपत्र उनके हस्ताक्षरों का लिखा हुआ अद्य विद्यमान है।

इस यात्रा का पूरा विवरण नहीं मिलता किन्तु जब उन्होंने दूसरी बार ब्रज-यात्रा सं० १६२४ में की तो उसका छन्दोबद्ध वर्णन कवि जगतनन्द ने किया है। यह यात्रा भादों बदी १२ सोमवार सं० १६२४ वि० को उठाई गई तथा ११ दिन में पूर्ण हुई है। ग्रंथ में इस यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

भादों कृष्णा १२—गोकुल में आज्ञा ली और मथुरा चले आये।

भादों कृष्णा १३—द्वादशी की रात को मथुरा में रह कर त्रयोदशी के प्रातःकाल विश्रान्त घाट पर स्नान कर उजागर चौबे से नियम लेकर संकल्प किया और यहाँ से जन्म-भूमि पर आकर भूतेश्वर पर आये। उजागर चौबे ने भूतेश्वर को 'दिव्य दृष्टि का भूप बताया'। आपने कहा कि हमें जो आज्ञा लेनी थी, ले ली। अब आप पधारो हम अकेले ही जायेंगे। यहाँ से आप मधुवन पधारे, जहाँ आपने पाक किया। फिर तालवन और कुमुदवन गये।

भादों कृष्णा १४—इस दिन आप सांतन कुण्ड, गन्धेसरा (गन्धर्व कुण्ड) और बहुलावन गये। फिर आरठ, राधा-कृष्ण कुण्ड, स्याम बट, कुसुम सरोवर, नारद-कुण्ड और वहाँ से श्री नाथद्वारा अर्थात् गिर्राज जी आ गये।

भादों कृष्णा १५—इस दिन हरदेव जी, चक्रतीर्थ, मानसी गंगा, ब्रह्म कुण्ड, दानी केशोराय, सन्कर्षन कुण्ड, गोविण्द कुण्ड से गांधर्व कुण्ड में स्नान करके गोविन्द राय के दर्शन करके, अप्सरा कुण्ड और रुद्र कुण्ड पर अपने मन्दिर में आकर प्रसाद लिया तथा उसी रात को गांठोली चले गये।

भादों सुदी १—इस दिन आदि बद्री, हिंडोला, इन्द्रोली में इन्द्र कुण्ड होते हुए कामवन पहुँचे और धर्म कुण्ड पर डेरा डाला।

भादों सुदी २—धर्म कुण्ड में स्नान किया, कामा की प्रदक्षिणा की। विमल कुण्ड, कामना कुण्ड, महोदधि, रत्नाकर, कालिरव, आँख-मिचौनी, अन्धकूप वट, सुरभि गुफा, खिसलनी सिला, थार-कटोरी चिन्ह, से चलकर चौरासी कुण्ड पर स्नान वंदना की। फिर डेरा पर आकर नन्दगाँव में दर्शन किये।

भादों सुदी ३—यहाँ सुनहरा गाँव में डेरा दिया। आँदिर देख कर देह कुण्ड पर न्हाये। यहाँ बल्देव और रेवती जी के दर्शन हैं। साँकरी खोरि जा कर, चिकसोली होते हुए भानपुर गए। यहाँ से मान-दान-गढ़ में दर्शन कर दान घाटी चढ़े। रतनकुण्ड

में आचमन लेकर, नौवारी, चौवारी, पीरी पोखर, संकेत, रास-चौंतारा होकर विघुला कुण्ड में स्नान किया। यहाँ नन्द-यशोदा के दर्शन करके मधुवन कुण्ड में दर्शन किये और जसोदा कुण्ड में स्नान किये। यहाँ नन्द-यशोदा, राम और कृष्ण का स्वरूप है। फिर ललिता कुण्ड, बजवारी, छछहारी कुण्ड देखते हुए दामोदरा और गोपेश्वरा पधारे। जहाँ अक्रूर उतरे थे फिर उस स्थान का दर्शन किया। पीछे ईसरा की पोखर देखी। फिर वह स्थान देखा (उद्धव-क्यारी) जहाँ उद्धव ने गोपियों को ज्ञान दिया था। फिर मधुसूदन कुण्ड पर दर्शन किये जहाँ भगवान् ने जल-विहार किया था। यहाँ से कदम खण्डी होते हुए मानसरोवर पर पाक अपने हाथ से किया। फिर खिदरवन आकर रात भर रहे।

भादों सुदी ४—फिर अनेक कुण्डों में स्नान करते हुए नागबल्ली का दान कर पिसोरा गये। फिर करहला, अजनोख, महराना होते हुए मुरबारी ताल गये जिस स्थान पर मुक्ता उत्पन्न हुए थे। फिर उस विलास वट के दर्शन किये जहाँ पक्षियों का भी प्रवेश नहीं है। फिर नन्द-यशोदा के साथ जहाँ भगवान् गाय देखने पधारे थे उस स्थान बठैन को गये। यहाँ बलभद्र कुण्ड, चरण पहाड़ी, शंखचूड़ वध-स्थल देख कर बच्छवन आये और रात भर विश्राम किया।

भादों सुदी ५— रासोली, वट वक्ष, भूमि के ईसानकोण में नन्द घाट पधारे, फिर खिदरवन होकर रामघाट आये, जहाँ बलराम जी ने प्रलंबासुर का वध किया था तथा श्री यमुना जी को खींचा था। फिर कात्यायनी देवी का दर्शन करके, चीर-घाट होते हुए नन्दघाट पर यमुना जी पार कीं। भद्रवन देख कर, मधुसूदन कुण्ड में स्नान करते हुए, भांडीरवन होते हुए खिजाली गाँव आये। भांडीर कूप देख कर अक्षय वट के दर्शन कर भोजन किये और वहाँ से बेलवन आ गये।

भादों सुदी ६—पिछली रात उठ कर मानसरोवर होते हुए माणिक शिला देखी। फिर पिपरोली गाँव में वह वट-वृक्ष देखा जहाँ श्री कृष्ण ने रास किया था। फिर लोहवन होते हुए ब्रह्माण्ड में नहाए जहाँ भगवान् ने यमलार्जुन की लीला की थी। मथुरा नाथ के दर्शन किये। नन्द कूप, श्याम और रोहिणी का मन्दिर देखा। सप्त-समुद्री का कूआ देखा। श्री यमुना जी में स्नान कर उत्तर घाट होते हुए आप गोकुल पधारे और भोजन किया और रात को आप मथुरा पधारे।

भादों सुदी ७—प्रातः समय आप दशाश्वमेघ घाट पर गये। वहाँ से अक्रूर स्थल (अक्रूर घाट), काली दह, निस्कन्ध होकर मदन मोहन चीर घाट, बंशीवट और धर्म कुण्ड देखा तथा वेणु कूप और गोविन्द देव जी के दर्शन कर आप फिर मथुरा आ गये। इस प्रकार आपने ११ दिन में ब्रज चौरासी कोस की यात्रा पूर्ण की।

इन दोनों ब्रज-यात्राओं में जो वल्लभाचार्य और श्री गुसाई विट्ठल नाथ जी ने कीं उसमें एक मौलिक अन्तर यह है कि वल्लभाचार्य की यात्रा में जहाँ थोड़े से स्थलों (ब्रज के वनों) का वर्णन आया है वहाँ श्री गुसाईं जी की यात्रा में बहुत से स्थलों (उपवनों) का उल्लेख है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि गुसाईं जी की यह यात्रा वल्लभाचार्य से लगभग ३५ वर्ष पीछे हुई। इसी बीच में और अनेक स्थलों को खोज निकाला गया। इसमें वल्लभ-कुल सम्प्रदाय का हाथ अधिक था अथवा गौड़िया

सम्प्रदाय का, यह कहना कठिन है किन्तु गौड़िया सम्प्रदाय वालों का कहना है कि इसका श्रेय श्री नारायण भट्ट को है जिन्होंने दक्षिण से आकर ब्रज के समस्त तीर्थों का उद्धार किया और 'ब्रज-भक्ति विलास' जैसे ब्रज-यात्रा के अपूर्व ग्रंथ का निर्माण किया। यह आज के लोगों का एक दृष्टिकोण हो सकता है जो अपने को ऊँचा दिखाने की चेष्टा करते हैं किन्तु श्री गुसाईं जी तथा श्री नारायण भट्ट में इस प्रकार की कोई भावना नहीं थी। उन दोनों का एक ही उद्देश्य था कि कृष्ण-भक्ति द्वारा ब्रज-भक्ति का व्यापक प्रचार हो। गौड़िया सम्प्रदाय के ग्रंथों से तो इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि नारायण भट्ट और गुसाईं विट्ठल नाथ जी की कभी भेंट हुई हो किन्तु वल्लभ-कुल सम्प्रदाय के ग्रंथों से पता चलता है कि सं० १५९० वि० में गोपीनाथ जी तथा विट्ठल नाथ जी ने नारायण भट्ट से लेकर श्री मदन मोहन जी का स्वरूप कार्तिक शु० ९ के दिन बंगालियों को सेवार्थ प्रदान कर दिया और उनसे श्री नाथ जी की सेवा छोड़ देने का आग्रह किया।[1] इस प्रकार इन दोनों महानुभावों की विचारधारा का सहज ही अध्ययन किया जा सकता है।

श्री नारायण भट्ट और ब्रज-यात्रा

कहा जाता है कि जब श्री नारायण भट्ट ब्रज में गोवर्धन के समीप राधा-कुण्ड पधारे तो श्री मदन मोहन जी ने प्रत्यक्ष होकर इन्हें दर्शन दिये तथा विग्रह के सेवक श्री ब्रह्मचारी को बताया कि श्री नारायण भट्ट नारद जी के अवतार हैं। सायंकाल तक यह बात सब स्थानों पर प्रसारित हो गई कि नारद के अवतार श्री नारायण भट्ट ब्रज में पधारे हैं। सभी ग्रामीण वहाँ उपस्थित होकर उनसे कुछ सेवा करने के लिए आज्ञा माँगने लगे। तब उन्होंने कहा कि यहाँ पर राधा कुण्ड है और लोगों के अविश्वास करने पर उन्हें चिह्न बता कर लोगों से खुदवा कर राधा कुण्ड प्रकट किया।[2] इसी प्रकार श्याम कुण्ड तथा दोनों कुण्डों का संगम स्थान प्रकट किया। इसके पश्चात् आपने मानसी गंगा, कुसुम सरोवर, गोविन्द कुण्ड, चन्द्र सरोवर तथा अन्यान्य कृष्ण-क्रीड़ा सम्बन्धित समस्त भू-कुण्डों का प्राकट्य किया।

आगे मथुरा पुरी में जाकर श्री कृष्ण जन्म-स्थान, वसुदेव जी का मन्दिर, कंस कारागृह, रंग-भूमि, कंस बध-स्थान, उग्रसेन का राज्य प्राप्ति स्थान, बलि महाराज का तपस्या स्थल, सप्त सामुद्रिक कूप, महा विष्णु, गतश्रम नारायण, दीर्घ विष्णु, वाराह मूर्ति, भूतेश्वर, गर्त्तेश्वर, महाविद्या देवी, सिन्दूर कुण्ड तथा अन्य-अन्य कुण्डों का उद्धार किया तथा बहुत काल से छिपे हुए ब्रज देवताओं को भी प्रकट किया।

---

१. कांकरोली का इतिहास, पृ० ८६।

२. श्री चैतन्य चरितामृत में महाप्रभु कृष्ण चैतन्य द्वारा राधा कुण्ड को प्रकट किये जाने का उल्लेख है—

राधाकुण्ड अरिष्ट की पूछी लोगन बात। कोऊ कहे न जानही सोऊ संग द्विज जात॥
तीरथ लोपत जान प्रभु सबके ज्ञाता आहि। बोये धान के खेत में कछु जल न्हाये ताहि॥
लखिकें ग्रामी-जननि के मन अचरज अधिकाय। स्तवन जु राधा कुण्ड कौ करें सु प्रभु भरिमाय॥

—कवि सुबल श्याम कृत श्री चैतन्य चरितामृत का अनुवाद; पृष्ठ १५५

मथुरा से महावन पधार कर आपने नन्द-यशोदा के निवास-स्थान, श्री कृष्ण के बाल-क्रीड़ा स्थल, यमलार्जुन-गति स्थान, ब्रह्माण्ड घाट, रमणवन, गोपियों का गृह समूह, श्री कृष्ण चौर्य लीला स्थान, दधि-वर्तन फोड़ने के स्थान, ऊखल-बन्धन-स्थान और श्री कृष्ण-बल्देव तथा गोपियों की क्रीड़ा-स्थली का उद्धार किया।

यहाँ से आप वृन्दावन पधारे और वंशीवट में स्थित कृष्ण-रास-स्थली को प्रकट किया। कालिय-दमन, वकासुर, अघासुर, केशी-वध स्थान, ब्रह्मा द्वारा गो-वत्स-गोपन स्थान, श्री कृष्ण द्वारा गो-वत्स स्वरूप धारण स्थान, ब्रह्मा-स्तुति स्थान, नन्द-घाट, चीर घाट, दुर्वासा स्थान, यज्ञ पत्नियों द्वारा श्री कृष्ण भोजन-स्थान, अरिष्टा-सुर वध-स्थल, शंखचूड़ वध-स्थान का निर्धारण किया।

पंच योजन विस्तीर्ण श्री वृन्दावन क्षेत्र में श्री हरि ने गो-गोपी बालकों के साथ विविध लीलाएँ की हैं। जहाँ गोवर्द्धन पर्वत, ब्रह्मगिरि (बरसाना), रुद्रगिरि (नन्दगाँव), वज्र कीलक, कामसेन पर्वत, सुवर्णाचल, विदग्ध पर्वत, अरोरा पर्वत, सखी गिरि (ललिता का जन्म-स्थान) तथा अन्यान्य पवित्र पर्वत विराजमान हैं और भी जहाँ-जहाँ नन्दादि गोपों का वास, स्थान, गोप और गोपियों के जन्म-स्थान के ग्राम, चारों ओर संकेतादि सोलह वट, बल्देव जी का रास-स्थल, विहार, वन, वन-उपवनों में श्री कृष्ण के रास-स्थल, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष नाम के वनों, प्रतिवनों, अधिवनों में श्री कृष्ण के रास-स्थल तथा अनेक कुंज-निकुंजों का उद्धार किया और भी आपने चरण पहाड़ी, पावन सरोवर, मुक्तारोपण स्थल, हाऊस्थान, दधि-मंथन स्थान, अक्रूर आगमन स्थान, उद्धव वचन, गो-दोहन स्थान, और बाल-क्रीड़ा स्थान समूह को प्रकट किया।

बरसाने में वृषभानु सरोवर, कीर्तिदा सरोवर, प्रिया कुण्ड, दोहनी कुण्ड, चिकित्सावन, दानलीला, मानलीला, विलास गढ़, साँकरी खोरि, गह्वरवन आपने पुनः स्थापित किये।

ऊँचा ग्राम में देह कुण्ड, श्याम कुण्ड, प्रिया कुण्ड, गोपी पोखरा, सखी कूप, खिसलनी शिला, चरणचिह्न, संकेत स्थान, कृष्ण कुण्ड, विह्वला देवी, त्रिवेणी, ललिता, विवाहादिक स्थान खोजे।

कामवन में काशी कुण्ड, गया कुण्ड, विमल सरोवर, भोजन थाली, चरण पहाड़ी, वाराह कुण्ड, अयोध्या कुण्ड, कुरुक्षेत्र, पंचतीर्थ, यज्ञ कुण्ड, धर्म कुण्ड, गरुड़ सरोवर, गोपाल कुण्ड, लंका कुण्ड आदिक कुण्ड समूह, आदि बद्री, व्यास सिंहासन, नर नारायण, गंगा, अलकनन्दा, चतुर्भुजादि मूर्ति, वाराहादिक मूर्ति, धर्मराज आदि देवमूर्ति, पंच-पाण्डवों की मूर्ति, मनसा देवी, कामेश्वर पुनर्स्थापित किये।

वृन्दावन में गोपेश्वर, और **गोवर्धन में** चकलेश्वर (चक्रेश्वर) बल्देवादि

नोट—श्री नारायण भट्ट द्वारा कथित ब्रज-मण्डल की भूमि इक्कीस योजन की है। दक्षिण तथा उत्तर के मध्य यमुना बहती है। यमुना जी की दोनों दिशाओं में ढाई हजार तीर्थ मौजूद हैं।

भट्ट जी ने टोडरमल से समस्त स्थल जो प्रकट किये थे उनके जीर्णोद्धार कराने के लिए टोडरमल से कहा और उन्होंने वैसा ही किया।

विग्रह जो वज्रनाभ के द्वारा स्थापित हुए थे तथा बहु वर्षों से आच्छिन्न होकर लुप्त हो गये थे, उन सब का प्राकट्य करने लगे।

श्री वल्लभाचार्य की यात्राओं से प्रतीत होता है कि उन्होंने जितनी बार पृथ्वी की परिक्रमा की उतनी ही बार उन्होंने ब्रज की भी यात्रा की थी तथा गुसाईं विट्ठल नाथ जी ने जितनी बार गुजरात यात्रा की उतनी ही बार ब्रज-यात्रा भी की प्रतीत होती है क्योंकि जो भी उल्लेख मिले हैं उनसे यही बात प्रकट होती है कि ब्रज-यात्रा करने के पश्चात् ही वह अपनी गुजरात और सौराष्ट्र की यात्रा पर निकला करते थे। उनके साथ उनके कितने शिष्य वर्ग अथवा सेवक होते थे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी यह निश्चय है कि इस प्रकार उनके साथ अनेक सेवक जो ब्रज-यात्रा की सुन कर इस अवसर से लाभ उठाना चाहते थे अवश्य आ जाते थे और उनके साथ यात्रा करते थे। दूसरी ओर श्री नारायण भट्ट अपने शिष्य वर्ग को लेकर निकलते तथा भगवत् नाम के कीर्तन तथा स्वरचित ब्रज विलास की कथाएँ कहते समस्त ब्रज की यात्रा करते थे। इस प्रकार ब्रज में यात्राएँ चल पड़ीं जिसमें एक के संचालक थे नारायण भट्ट तथा उनकी परम्परा तथा दूसरे के थे श्री गुसाईं जी व उनकी वंश परम्परा। आज भी ब्रज में दोनों यात्रायें चालू हैं। श्री नारायण भट्ट वाली यात्रा बंगालियों की यात्रा कहलाती है किन्तु आज-कल उसमें थोड़े से विरक्त बंगाली वैष्णव भाग लेते हैं। वल्लभ कुल सम्प्रदाय द्वारा संचालित यात्राएँ अत्यन्त विषद् और महत्त्वपूर्ण होती हैं जो कि ब्रज के जन-जीवन पर अपना व्यापक प्रभाव रखती हैं। इसी विषय पर हम यहाँ प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

श्री वल्लभाचार्य का मार्ग प्रवृत्ति मार्ग है। उसकी साधना घर में बैठ कर ही की जा सकती है किन्तु उसमें समर्पण की भावना निहित है। हमारा जो कुछ भी है वह सभी प्रभु के अर्पण है। वह तन, मन और धन को सब प्रभु का ही समझ कर उसमें अर्पण कर देता है। यह भावना गृहस्थों के इतने निकट है कि यदि वे इस पर आचरण करें तो पारिवारिक क्लेशों से सदा के लिए मुक्ति मिल सकती है। इस प्रकार इस धर्म का जन-जीवन में साधारणीकरण हो गया और इस सम्प्रदाय के प्रवर्तकों के वंशजों में जहाँ वृद्धि हुई उसके अनुपात से इनके अनुयायियों की वृद्धि भी अत्यधिक बढ़ गई। गुरु परिवार को मथुरा का सतघरा छोड़ कर अपनी-अपनी निधियों सहित राजस्थान तथा गुजरात और सौराष्ट्र में अनेक स्थानों पर हवेलियाँ स्थापित कर वहाँ स्थापित होना पड़ा। इस लिए यहाँ से एक नवीन मनोरथ के रूप में ब्रज-यात्रा प्रारम्भ हुई। गुसाईं बालक अपनी-अपनी निधियों को लेकर अपने मनोरथ की पूर्ति के हेतु अपने-अपने सेवकों सहित पधारने लगे।

अन्त में ब्रज-यात्रा की वर्तमान रूपरेखा हमारे सामने आई जिसे गुसाईं श्री गोपाल लाल जी महाराज[1] द्वारा बनाई हुई कही जाती है। इस यात्रा की विशेष बात यह है कि इस यात्रा में ४५ दिन का समय लगता है। इसमें उन स्थानों का भी

---

१. गुसांई विट्ठलनाथ जी ने सामूहिक ब्रज-यात्रा की जो परम्परा स्थापित की थी वह औरंगजेब के धर्मान्ध शासन-काल के उत्तरार्द्ध में बन्द हो गई थी। इसके बाद संवत १८०५ के लगभग मथुरा के गोस्वामी श्री पुरुषोत्तम जी ने इसे पुनः चलाया था। इस यात्रा का नवीन क्रम बाँधा गया।

निश्चय हो गया जहाँ-जहाँ यात्रा अपना पड़ाव डालती है। वर्तमान काल में यात्रा प्रायः भाद्र शुक्ल पक्ष की ६ या ७वीं को मथुरा में नियम लेती रही है और निम्न स्थानों पर अपना पड़ाव डाल कर कार्तिक कृष्ण पक्ष को ८वीं के दिन पुनः मथुरा आ जाती है। वर्तमान समय में यात्रा प्रायः निम्न स्थानों पर मुकाम डाले जाते हैं—

(१) श्री मथुरा मुकाम ४ दिन; (२) मधुवन, मुकाम २ दिन ; (३) शान्तनु कुण्ड, मुकाम १ दिन ; (४) बहुलावन, मुकाम १ दिन ; (५) अड़ींग, मुकाम १ दिन ; (६) कुसुम सरोवर, मुकाम १ दिन ; (७) चन्द्र सरोवर, मुकाम २ दिन ; (८) जतीपुरा, मुकाम ८ दिन ; (९) डीग, मुकाम १ दिन ; (१०) परमदरा या घाटा, मुकाम १ दिन ; (११) कामवन, मुकाम ३ दिन ; (१२) बरसाना, मुकाम २ दिन ; (१३) संकेत, मुकाम १ दिन ; (१४) नन्दगाँव, मुकाम ३ दिन ; (१५) करहेला, मुकाम १ दिन ; (१६) कोकिलावन, मुकाम १ दिन ; (१७) कोटवन, मुकाम १ दिन; (१८) कोसी, मुकाम १ दिन ; (१९) पैगाँव, मुकाम १ दिन; (२०) शेरगढ़, मुकाम १ दिन ; (२१) चीरघाट, मुकाम १ दिन (२२) बच्छवन, मुकाम १ दिन ; (२३) वृन्दावन, मुकाम ३ दिन; (२४) लोहवन, मुकाम १ दिन; (२५) दाऊजी, मुकाम १ दिन ; (२६) गोकुल, मुकाम २ दिन ; (२७) मथुरा, पुनः मुकाम २ दिन।

यह कार्य-क्रम प्रायः सभी यात्राओं में एक सा ही होता है किन्तु सुविधानुसार इसमें उलट-फेर कर मुकामों की संख्या तथा मुकामों के ठहरने के काल में परिवर्तन किया जाता रहा है।

भगवान् श्री कृष्ण के लीला-स्थल भी वन-उपवनों के साथ-साथ गोस्वामी पुरुषोत्तम लाल जी द्वारा ही ब्रज-यात्रा में सम्मिलित किये गये। यह यात्रा ५० दिन की थी। इसी यात्रा की परम्परा अब तक ब्रज में पुष्टि-सम्प्रदाय द्वारा प्रचलित है। बाद में गोस्वामी पुरुषोत्तमलाल जी के ही वंशज गो० ब्रजनाथ जी ने सं० १९४० के आस-पास ब्रज-यात्रा पर एक पुस्तक भी लिखी थी जिसमें उक्त यात्रा-क्रम का वर्णन है।

गो० गोपाल लाल जी ने जो गो० पुरुषोत्तम जी के ही भतीजे थे, अपने चाचा जी द्वारा स्थापित यात्रा-क्रम में कुछ परिवर्तन किये और यात्रा का समय भी ४० दिन कर दिया। वल्लभ सम्प्रदाय में वही क्रम निरन्तर चला आ रहा है

: ३ :

ब्रज-यात्रा के कुछ प्राचीन विवरण

श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

मथुरा-मण्डल—मथुरा-मण्डल या ब्रज-प्रदेश, पुरुषोत्तम श्री कृष्ण की लीला-भूमि है। श्री कृष्ण अब से करीब ५ हजार वर्ष पहले हुए माने जाते हैं। इतने लम्बे काल में मथुरा-मण्डल ने बहुत उतार-चढ़ाव देखे हैं। प्राचीन स्थान व मन्दिर आदि नष्ट होते रहे हैं कुछ स्थान कहाँ थे वे भूला भी दिए गये पर भक्ति-युग में इस प्रदेश का कण-कण धर्म और भक्ति की पावन धारा से सम्बन्धित व रससिक्त हो गया। श्री कृष्ण की जीवनी में जिन-जिन स्थानों या प्रसंगों का वर्णन आया, उन सब का प्रत्यक्ष सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से जोड़ दिया गया। इतनी प्राचीन बात के लिए कि कौन सी घटना कब हुई प्रमाण ढूंढ़ना शक्य न था। भक्त महा-पुरुषों ने अपनी अनुभूति या कल्पना से इन स्थानों की उद्भावना की और लीला या किसी प्रसंग विशेष से सम्बन्धित होकर यही सामान्य स्थान, तीर्थ के रूप में लाखों करोड़ों व्यक्तियों के श्रद्धा के केन्द्र बन गये। सैकड़ों वर्षों से करोड़ों व्यक्तियों ने भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से आकर ब्रज-यात्रा द्वारा अपने को पवित्र और धन्य माना है और आज भी वही श्रद्धा-परम्परा, भक्ति की पावन धारा लोक-हृदय को धार्मिक भावना से आप्लावित कर रही है, और इसी तरह भविष्य में भी करती रहेगी। बुद्धिवादी इस युग में भी ब्रज-यात्रा का महत्त्व बढ़ ही रहा है यह जानकर अधिक प्रसन्नता होती है।

'मथुरा-महात्म्य'—मथुरा-मण्डल ब्रज-प्रदेश का महात्म्य पुराणों में भी पाया जाता है। पता नहीं वे महात्म्य प्राचीन पुराणों में कब व किसके द्वारा जोड़े गये। बीकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी में 'मथुरा-महात्म्य' की दो प्रतियाँ हैं। जिनमें से ७६ पत्रों की प्रथम प्रति संवत् १६६५ में मथुरा में ही जहाँगीर के राज्य में नरसिंह ने लिखी। उसे वाराह पुराण का एक अंश होना कहा गया है। दूसरी ५३ पत्रों की प्रति टोडरमल रचित टोडरानन्द का एक अंश "मथुरा महात्म्य" के रूप में है। जयपुर के जैन भंडार में भी ५२ पत्रों की प्रति है। पता नहीं वह इन दोनों में से कौन से ग्रंथ का अंश है या कोई अन्य पुराण का है। बाराह पुराण के मथुरा-महात्म्य की दो हस्त-लिखित प्रतियाँ प्राच्य विद्या मंदिर बड़ौदा व उज्जैन में भी हैं, जिनमें से एक संवत् १६८५ लिखित १४५० श्लोक परिमित है और दूसरी ११०० श्लोक परिमित। 'टोडरानंद' तो १७वीं शताब्दी का ग्रंथ है। बाराह पुराण वाला "मथुरा महात्म्य" कितना पुराना है तथा अन्य स्कन्ध आदि पुराणों में भी मथुरा-महात्म्य का कोई खण्ड हो तो वह अन्वेषणीय है।

मथुरा कल्प—संवत् १३७०-८० के लगभग जैनाचार्य जिन प्रभसूरि ने मथुरा तीर्थ की यात्रा करके "मथुरा कल्प" प्राकृत भाषा में बनाया। उसमें प्रधान रूप से तो जैनों का जो मथुरा से सम्बन्ध रहा है उसी का वर्णन है फिर भी मथुरा और उसके आस-पास के प्रसिद्ध स्थानों, वनों और लोक-तीर्थों का निम्नोक्त उल्लेख मिलता है—

"तया य महुरा बारह जो अणाइं वीहा, नव जो अणाइं वित्थिण्णा, पासट्ठि अजउणाजलपक्खालियवरप्पायारविभूसिआ धवलहरदेउलवाविकूवपुक्खरिणि-जिणभवणहट्टोवसोहिआ, पंडतविविहवाउव्विज्जविप्पसत्था हुत्था।"

"इत्थ पंच थलाइं। तं जहा-अक्कथलं नीरथलं पउमत्थलं कुसत्थलं महाथलं।

दुवालसवणाइं। तं जहां—लोहजंघवणं महुवणं विल्लवणं तालवणं कुमुअवणं विंदावणं भंडीरवणं खइरवणं कामिअवणं कोलवणं बहुलावणं महावणं।"

"इत्थ पंच लोइअतित्थाइं। तं जहा—विस्संतिअतित्थं असिकुंडतित्थं वेकुंत-तित्थं कालिजरतित्थं चक्कतित्थं।" अ० विविध तीर्थतुल्य

उपरोक्त उद्धरणों में यहाँ के पाँच स्थल, १२ वन और ५ लौकिक तीर्थों के जो नाम दिए हैं वे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वल्लभीय यात्रा की परम्परा—वल्लभ सम्प्रदाय में उपलब्ध साहित्य पर आधारित, ब्रज-यात्रा सम्बन्धी विवेचन पहले अध्यायों में हो चुका है, जिसमें आचार्य वल्लभ और गुसाईं विट्ठल नाथ जी की यात्राओं की चर्चा विस्तार से हुई है। परन्तु गुसाईं जी के बाद भी ब्रज-यात्रा की यह परम्परा औरंगजेब के समय में कुछ समय बन्द होकर बाद में फिर भी कुछ साधारण परिवर्त्तनों के साथ चलती रही जिसका व्यौरा 'वल्लभीय सुधा' के ब्रज-परिक्रमा अंक (वर्ष ७, अंक ३-४) के आमुख में श्री द्वारका दास परीख ने निम्न प्रकार दिया है—

"ब्रज परिक्रमा का यह क्रम औरंगजेब के समय में बन्द हो गया था। सं० १७२६ में जब श्री नाथ जी ब्रज से मेवाड़ पधारे तब श्री केशवराय जी आदि अन्य भी सुप्रसिद्ध भगवद्-विग्रह ब्रज से अन्यत्र चले गये थे। इसलिए ब्रज में सामूहिक धार्मिक कार्य सब बन्द हो चुके थे। तब ब्रज परिक्रमा भी बन्द हो गई थी। उसके बाद मथुरा के गोस्वामी श्री पुरुषोत्तम जी (सं० १८०५) स्याल वालों ने पुनः इस ब्रज परिक्रमा को चलाया। आपने परिक्रमा का नवीन क्रम बाँधा जिसमें वन-उपवन और सभी प्रमुख-प्रमुख लीला-स्थलों का भी समावेश किया। वह परिक्रमा प्रायः ५० दिनों की थी। वह परिक्रमा गो० श्री पुरुषोत्तम जी के समय से ही पुनः प्रति वर्ष आज पर्यन्त वल्लभ सम्प्रदाय में चलती रही है।

इन्हीं श्री पुरुषोत्तम जी के वंशजों में गो० विट्ठल नाथ जी हुए हैं। उनके पुत्र गो० ब्रजनाथ जी थे, जिन्होंने श्री 'ब्रज-परिक्रमा' ग्रन्थ को अपने सेवकों के पास लिख-वाया। यह रचना उपर्युक्त "ब्रज-परिक्रमांक" में प्रकाशित है। गो० ब्रजनाथ जी का समय १६०३ से १६६० के आस-पास रहा है। अतः यह पुस्तक अनुमान से सं० १६४० के आस-पास की लिखी हुई है। इसमें श्री पुरुषोत्तम जी द्वारा चलाया

हुआ परिक्रमा का क्रम है। उन्होंने अपने पूर्वजों की प्राचीन परिपाटी के अनुसार पूरे ५० दिनों में इस परिक्रमा को पूर्ण किया है।

इन्हीं श्री ब्रजनाथ जी के भतीजे गो० श्री गोपाल लाल जी महाराज के आज के जीवों की अल्प सामर्थ्य और समयाभाव को देखकर इस परिक्रमा के क्रम को कुछ संक्षिप्त रूप में परिवर्तित किया है, जो आज प्रचलित है। इसमें ४० दिन का क्रम है। कुछ स्थानों को छोड़ दिया है।"

वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त ब्रज के अन्य भक्ति सम्प्रदायों के पास भी इस सम्बन्ध में जो सामग्री हो, प्रचार में आनी चाहिए।

जगतनन्द का ब्रज-वर्णन—वल्लभ सम्प्रदाय के कवि जगतनन्द ने 'श्री गोस्वामी जी की 'वन-यात्रा', 'ब्रज-वस्तु-वर्णन' और 'ब्रज गाँम वर्णन' नामक तीन रचनाएँ ब्रज के सम्बन्ध में बनाई हैं। इनमें से प्रथम में गोस्वामी विट्ठलेश जी ने सं० १६२४ भादों बदी १२ को 'वन-यात्रा' का विचार कर भक्तों के साथ जो यात्रा की थी उसका वर्णन ७६ पद्यों में किया गया है। दूसरी रचना में ब्रज के ८४ कोस की परिक्रमा में १२ वन, २४ उपवन, १० वट, ७ चरण चिन्ह, ५ पर्वत, ७ देवी, २ दासी, ८ महादेव, ४ कदम-खण्डी, ७ गुसाईं जी की बैठक, ६ बलदेव जी, २ ठकुरानी घाट, २ लीला, ३ हिंडोरा, ७ दानलीला, ४ सरोवर, ६ पोखर, २ ताल, १० कूप, १६ घाट, ७ डोल, १६ मन्दिर, ३३ रास-मण्डल, १५९ कुण्ड और ७५ ठाकुर, आते हैं। उन सबकी नामावली ८७ दोहों में दी है। इसमें कुल ४३२ ब्रज वस्तुओं की तालिका है। तीसरी रचना "ब्रज-ग्राम वर्णन" ११० दोहों में है। इस प्रकार ब्रज सम्बन्धी तत्कालीन अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों व मन्दिरों आदि की जानकारी कवि जगतनन्द के इन तीन ग्रन्थों से मिल जाती है। ये तीनों ग्रंथ शुद्धाद्वैत ऐकेडमी, विद्या-विभाग, कांकरौली से संवत् २००२ में प्रकाशित "जगतानन्द" नामक ग्रन्थ में छप चुके हैं। सम्पादक पो० कंठमणि शास्त्री की सूचनानुसार विद्या-विभाग, कांकरौली के संग्रह में ब्रज-यात्रा के एक गद्य वर्णन की भी प्रति है। वह उक्त 'जगतनन्द' के पद्यबद्ध 'वन-यात्रा' के समान ही है। गद्य वर्णन में संवत् १६२८ की यात्रा का वर्णन है और पद्य-रचना में संवत् १६२४ की यात्रा का। गद्य वर्णन ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

"संवत् १६२८ फागन् बदी ७ श्री गोकलवास की-घो, तदउपरांत एक समय भाद्रवा बदी १२ सेन आरती उपरांत श्री गुसाईं जी के प्रिय पुत्र श्री गोकुल नाथ जी को संग लेकें समर्द्ध के संकोच तें कोउ न जाने मथरा पधारे रात्रि मथुरा जाय रहे।"

बीकानेरी यात्रा-विवरण—वल्लभ सम्प्रदाय के यात्रा-वर्णन विस्तारपूर्वक हैं ऐसा तो नहीं, पर बीकानेर के एक भक्त महेश्वरी की ब्रज-यात्रा, जो उसने संवत् १७१३ में की थी, का विवरण २ वर्ष हुए अनूप संस्कृत लायब्रेरी के एक गुटके में मुझे देखने को मिला। मुझे वह विवरण बहुत महत्त्व का लगा। क्योंकि संवत् १७२६ में औरंगजेब ने मथुरा और ब्रज को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था, उससे यह १३ वर्ष पहले का यात्रा-विवरण है। इससे औरंगजेब के नष्ट करने से पहले

गोवर्धन, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन में कौन-कौन से मन्दिर, कुण्ड आदि यात्रा-स्थल थे तथा उस समय गोवर्धन जी[1] के मन्दिर में १० बार किस-किस समय व क्या-क्या भोग लगता था, इसका भी अच्छा विवरण मिलता है। १० बार के भोग में ८ बार दर्शन होते थे, ४ आरतियाँ होती थीं। शयन के समय ४ ढोलिये बिछाये जाते, पास में मिठाई व पकवान के झाब व जल की झारी रखी जाती थी। उस समय सस्तापन भी कितना अधिक था कि गोवर्धन नाथ जी की भक्ति भोग के लिए ३-३॥ हजार गायें, ५०० भैंसें थीं और रोजाना का खर्च करीब ४० रुपये का था।

यात्रा का विवरण ब्रज से आकर कुछ दिनों बाद लिखा गया है। इसीलिए लेखक ने अपनी इस याददाश्त में कुछ स्थानों के नाम याद न रहने का भी उल्लेख किया है। गोवर्धन नाथ जी की यात्रा सं० १७१३ के आसोज सुदी १३ के प्रातःकाल में दर्शन करने के द्वारा आरम्भ होती है। फिर श्री नाथ जी की परिक्रमा, जो गोवर्धन पर्वत की ८-९ कोस की बड़ी परिक्रमा है उसमें जो मन्दिर, मूत्तियाँ, तीर्थ, कुण्ड, स्नान के स्थान आदि थे उन सबकी नामावली दी है और कातिक बदी ८ को लाखों आदमियों के आने की बात लिखी है। श्री गोविन्द देव जी के यहाँ मनों सोना दान देने का उल्लेख है और जितने अहनांण (स्मृति चित्र) उस समय तक सुरक्षित थे, उन सब का विवरण दिया है। मथुरा के ठाकुर-द्वारे की यात्रा सं० १७१३ के आसोज सुदी १५ को की गई। उस समय केशवराय के मन्दिर में 'मथरामल' जी, उनके दाहिने ओर 'केशवराय' और बायें ओर 'कल्याणराव' की मूर्ति का उल्लेख है। "पायढ़ीये राजा वरसंग दे रो" लिखा है। इसी प्रकार अक्रूर घाट गोपीनाथ जी के मन्दिर को 'मोहता मधुसूदन' ने बनवाया लिखा है। गंगाजी के सोरम घाट की तीर्थ-यात्रा सं० १७८३ की कातिक बदी ८ को की गई। इससे पूर्व उनके पूर्वज गोपाल जी नरसिंघ के सं० १६९५ और सं० १७०९ में हर जी के आने का उल्लेख है। मथुरा और गोकुल के तीर्थ-गुरु के नाम भी इस विवरण में मिल जाते हैं। संक्षेप में यह ब्रज-यात्रा विवरण बहुत ही महत्त्व का है। बीकानेरी भाषा में लिखा मूल विवरण आगे दे रहे हैं।

सं० १७१३ की ब्रज-यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण विवरण

श्री गोवरधन नाथ जी रै दुवारे इये[2] जिनस श्री ठांकुरां री आरती दरसण हुवे छै, ने इये जिनस भोग लागे छै।

१. परभात मंगला आरती हुवे, ताहरा मांखण ऽ॥, बूरो से० ५ आरोगे।

सं० १७१३ आसोज सुद १३ परभात सुदरसण कीयो।

२. संगार दन[3] घड़ी चार चढ़िया हुवं, दरसण हुवं, आरती ने न ई ने श्री ठाकुर मेवो पकवान चारोली भोग लागे। मेवो ऽ॥ हेक।

---

१. 'गोवर्धन जी' से लेखक का अभिप्राय भगवान् श्री नाथ जी से है। २. ये। ३. दिन।

—सम्पादक

३. गोपीबल्लभ भोग लागे, पकवान मठड़ी पूड़ी आरोगें। दरसण नं हुवै। श्री ठाकुरां नुं पकवान भाबा[1]; २ भाभा[2] भोग लागै।

४. गुवाल रो दरसण हुवं, ने श्री ठाकुर चिरत दूध भुग भुगो आरोगे।

५. राज भोग आरती हुवं, श्री ठाकुरां नुं सरब भोजन, छत्तीस भोजन, सगला पकवान खटरस, तीवणं[3], खीर, सिखरण, तरकारी अथांणा, घंणा मिष्ठान पकवान भोग लगं।

६. संख नाद उत्थापन दरसण हुवं, श्री ठाकुर मिठाई, लाडूवा, पकवान, मिठड़ी, सकरपारा आरोगे, से ऽ॥ रे टांणे, भाभा।

७. भोग सरीरो दरसण हुवं। श्री ठाकुर दुध, मिस्री, बूरो आरोगे।

८. संझ्या आरती हुवं। श्री ठाकुर दूध पकवान सिखरी आरोगे।

९. गुवाल दरसण नं ई। श्री ठाकुर पकवांन आरोगे।

१०. सेन[4] आरती हुवं। दरसण सीयाते[5] हुवं छं ने उन्हाले[6] नहीं हुव तों। श्री ठाकुर दूध भात खीर आरोगे।

इये जिनस श्री ठाकुरां नुं दस बखत भोग लागे छं। ने दरसण बखत आठ[7] (८) हुवं छं। आरती ४ हुवं, १ मंगला, १ राज भोग, १ संध्या, १ सेन। पछं श्री ठाकुर पौढ़े-ताहरा ठोडा ४ ढोलिया बिछाड़ी जं, पाथरी[8] जे, पाणी जल री भारी भर राखो जे छं। श्री नाथ जी रे गांया हजार ३ त (था) ३॥ छं, भैंस्यां सत ५ हेक[9] छं। रोजांनो खर्च रुपया ४०) हेक रो छं।

श्री नाथ परकमा – श्री नाथ जी री परकमा श्री गोवरधन परबत दोली बड़ी परकमा कोस ८ (आठ) तथा ९ (नव) री छं परकमा माहे इतरा[10] तीरथ कुण्ड छं। इतरा श्री ठाकुरां रा दरसण छं।

१. श्री महादेव जी रंगेस्वर गोरा पारबती संमेत। मूरत द्रिब्य छं। श्री गोवर्धन पर्वत उपर। श्री नाथ जी रे मन्दिर रे डावे[11] पासे देहरो छं। अद्भुत मुरत छं। परकमा मांहे।

१. श्रीदाणांराय जी रो देहरो जठे[12] ठाकुरां गोरस रो दाणं लियो छं, तठे छतड़ी २ छं। घाटी छं ऊपर देहरो।

२. मांनसी—गंगा स्नान कीजे, ने ब्रिहम कुण्ड स्नान कीजे। ऊपर ठाकुर दुवारा ३ छं ताहरा दरसंण।

१. श्री हरिदेव जी रो आद[13] मूरत। अदभूत श्री नाथ जी सरीखी[14] छं। देहरो बड़ो छं। कछवाहा रो करायो।

२. मांणसी-गंगा ब्रह्म कुण्ड ऊपर।

(१) श्री केसोराय जी रो देहरो।

---

१. बढ़िया। २. भरपूर बढ़िया। ३. शाक। ४. शयन। ५. शीतकाल। ६. ग्रीष्म-काल। ७. भोग को छोड़कर। ८. बिछाना। ९. अनुमान। १०. इतने। ११. बांयाँ। १२. जहाँ। १३. प्राचीन, आदि रूप। १४. समान।

(२) श्री रसकनाथ जी रो बेहरो।

राधाकुण्ड, किसन कुण्ड २ बड़ा कुण्ड छै। बड़ी मेहमा छै। उठे सनान कीजे छै। उपर श्री राधाकिसन जी रो बेहरो छै, दरसण कीजे, उपर कुंज घणा छै। बड़ी मेहमा कुण्डा री। काती बदी ६ री छै। काती वद ६ आदमी लाखां बन्ध जात आवे छै।

श्री बलदेव जी रो देहरो ने संकरसण कुण्ड सनान कीजे ऊपर श्री महादेव जी रो पण[1] देहरो छै। श्री गोवद देव जी रो देहरो, श्री ठाकुरों रो दरसण ने गोवद कुण्ड सनान कीजे। अजायब ठौड़ छै। सोनो मण इठे दान कीजे। अपछर कुण्ड सनान कीजै।

१. सुरही-कुण्ड सनान कीजे।

इन्द्र रो गरभ गालियो[2] पछे, इन्द्र श्री ठाकुरो कंने[3] आयो, उवा ठौर अद्भुत छै। इतरा अेहनाण[4] सांवता[5] छै।

श्री ठाकुर जिके[6] सिला ऊपर बैठा हुंता, सु[7] सिला श्री ठाकुरां रो चरण १ बरस ७ तथा ८ (आठ) रे बालक हुवे, तिसड़ो[8]।

इन्द्र री खड़ावे[9] रो पग, हेके पग तणे अस्तुत[10] कीवी छै।

इन्द्र रे हाथी अेरावत रा पग २।

कामधेनु गाय रा खुर २।

सुंदुर सिला,[11] जठे[12] गोपीयो रे संगार नुं संदुर जो इजे[13] पछै सिला म्हा[14] पैदा कियो। सुं सिला म्हा संदुर रो रंग नीसरे[15] छै।

गोरधन पूजा बल इन्द्र नुं दीज[16] तो सुं श्री ठाकुरां लीयो।

इये जिनस परवत दोली[17] परकंमा, ते मांहे अे तीरथ दरसण छै।

मथुरा—श्री मथुरा मांहि इतरा ठोड़ा तो अद्भुत छै।

१ श्री जमना जी घाट सनानकर भद्र[18] हुई जे। बीच बिसरायत घाट छै ने पसवाड़े २ घाट, २४ बीजा छै। बीच मदनायक बिसरायत घाट छै। कंस मारनै श्री ठाकुरां बिसराम लीयो ते बिसरायत कहाणी[19]। बीजाई[20] घाटा २४ रा ही नाम छै पण सिरो बिसराय[21]।

१. श्री ठाकुर दुवारा सं० १७१३ आसोज सुद १५ दरसण कीयो।

१. श्री केसोराय जी रो बड़ो दुवारो अद्भुत छै। बीच ! ठाकुर श्री मथरामल जी छै। जीवणे[22] पासे श्री केसोराय जी छै, डावे[23] पासे श्री कल्याण राज जी छै। पण[24] देहरो केसोराय जी रो कहावे। पाइदीये राजा वरसंगदे रो।

२. श्री रुघनाथ जी ठोडै[25] २ दुवारा छै। सिखर बध छै।

---

१. भी। २. गला। ३. पास। ४. चिह्न। ५. साश्वत, पूरे रूप में विद्यमान। ६. जिस। ७. वही। ८. वैसा। ९. खड़ाऊ। १०. स्तुति। ११. सिन्दूर। १२. जहाँ। १३. देखना। १४. में। १५. निकलता है। १६. नहीं दी। १७. चारों ओर। १८. सिर-मुंडन। १९. कहा गया। २०. अन्य भी। २१. भूल गया। २२. दाहिनी ओर। २३ बाँयीं। २४. पर। २५. स्थान पर।

१ मंदिर छै। बोहत अद्‌भुत श्री ठाकुर बिराजे छै।
१ नरसंघ जी दुवारो बोहत अद्‌भुत मूरत छै।
१ श्री ठाकर, देवकी, वसदेव, जसोदानन्द, री पाड़ से ५ सरब छै।
१ श्री सांवलो जी।
१ बीजा मंदर ठोड़ा १० हेक तो श्री ठाकुरा रा दरसण कीया।

× × ×

१ श्री महादेव जी भूतेस्वर अद्‌भुत देहरो छै ने दरसण छै।
१ श्री महादेव जी भवानीसंकर अद्‌भुत छै।
१ श्री महादेव जी गोकरनेस अद्‌भुत मूरत दिव[1] छै।
इछना[2] रो पुंरणहार, किसन गंगा उपर देहरो छै।
१ बीजा ही महादेव जी ठोडा ५ तथा ७ दरसंण कीया।
१ देवी जी महा विद्या विद्याधरी बड़ी मेहमा छै।
इये जंनस[3] श्री मथरा जी री मेहमा, दरसण छै संखेप सा मांडीया[4] छै।

× × ×

१ अकरूर घाट संनान कीजै।
१ श्री गोपीनाथ जी रो दुवारो, अकरुर घाट उपर मुहते मदसुदन जी रो करायो श्री ठाकर अद्‌भुत मुरत छै।

× × ×

तीरथ गुर श्री मथरा जी माहे पूज्य गोपाल जी कचरेजी रा छोरु, दुवारो चोबे हरचन्द जे वृन्द रो छै।

वृन्दावन—श्री वृन्दावन तीरथ छोडांरी मेहमा।
१ श्री कालिन्द्री संनान जठे कालो नाग नाथीयो[5] तठे।
१ चीर घाट संनान।
१ केसी घाट सनान।
१ ब्रिह्मन कुण्ड संनान।

इतरा[6] श्री ठाकुरां रा दरसण कीया।

१ श्री मदन मोहन जी	१ श्री गोवंद देव जी
१ ,, राधा वलभ जी	१ ,, बांको बिहारी जी
१ ,, गोपी नाथ जी	१ ,, जोड़ी ठाकुर जी
१ ,, राधा माधव जी	१ ,, किसोर किसोरी जी
१ ,, राधा किसन जी	१ ,, व्यास जी रा ठाकुर जी
१ ,, राधा रमण जी	१ ,, नरसिंघजी
१ ,, राधा मोहन जी	१ ,, रसक रसीलो जी

१. दिव्य। २. इच्छा। ३. वस्तुएं। ४. लिखा गया। ५. नाथ डाल के दमन किया। ६. इतने।

श्री रंगजी मंदिर, वृन्दावन
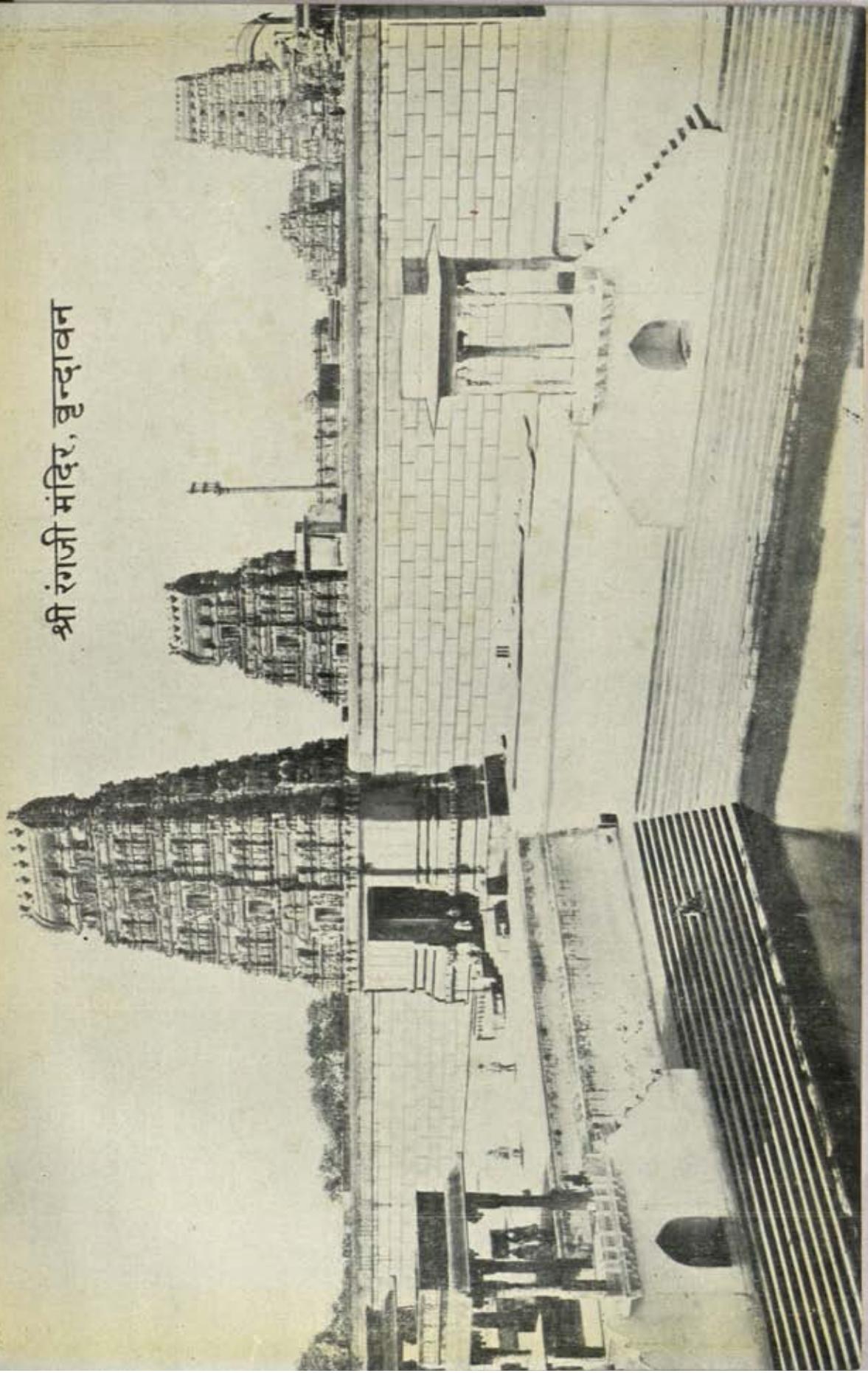
अन्नकूट महोत्सव, जतीपुरा
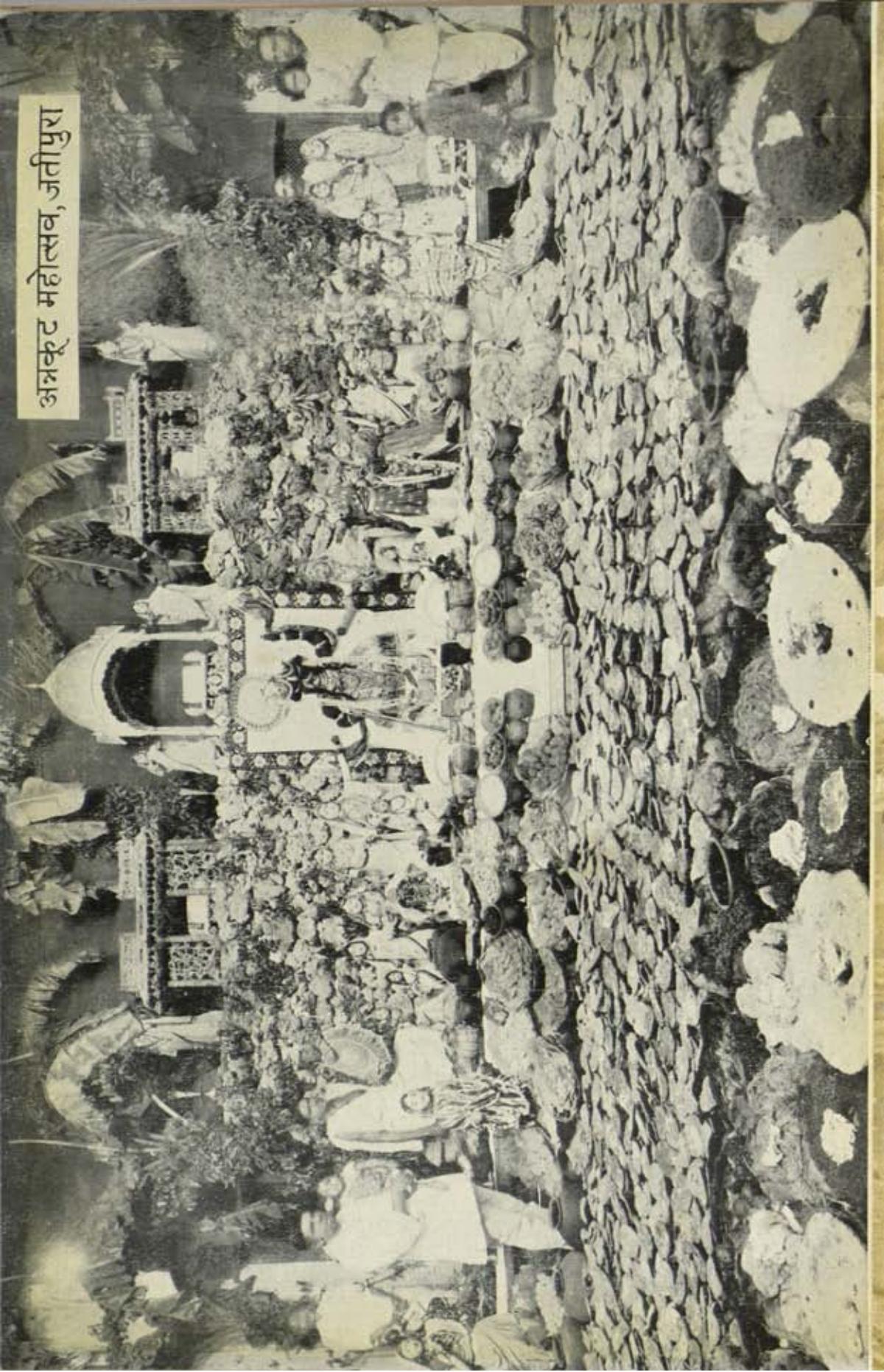
१ श्री गोपी बल्लभ जी
१ ,, चिकंनिया ठाकुर
१ ,, गोपी बल्लभ जी
१ ,, रसक नाथ जी
१ ,, काली मरदन जी
१ ,, महादेव जी गोपेश्वर
१ ,, वन्द्रा देवी
१ श्री चकोर चकोरी जी
१ ,, मुरली मनोहर जी
१ ,, चीर बिहारी जी
१ ,, कुंज बिहारी जी
१ ,, वन्द्रावन चन्द जी
१ ,, जुगल किसोर जी

१. वंशीवट श्री गोपेश्वर महादेव कनै, १. श्री ठाकुरं रा दरसण ५ तथा कुंजा माहे फिरिया दरसण किया। ७ बीजाई[1] कीया। मुं नाम चीत[2] नावं।

बड़ी ठौड़ छै श्री ठाकुरां रो नित-बासो[3] उठे[4] छै हीज।

× × ×

गोकुल जी—श्री गोकुल जी ठोड़ा मेहमा।

१ जसोदा घाट संनान।
१ ठकुराणी घाट संनान।

गोकुल—श्री गोकल जी परे कोसे ४ हेके श्री देवी जी रा देहरा।

१ बंद्री देवी जी।
१ आणंदी देवी जी।

श्री गुसाईं जी रे श्री ठाकुर दुवारा दरसण कीया—

१ श्री नवनीत राय जी
१ श्री गोकल चन्द जी
१ श्री गोकल नाथ जी
१ श्री मथरा नाथ जी
१ श्री दुवारका नाथ जी
१ श्री कल्याण राय जी

श्री गंगा जी सोरम घाट तीरथ सं० १७१३ काती बदी ८ पोहता। तीरथ गुरु प्रा० वंनमाली जग नाथांणी छै। पूज्य गोपाल जी नर संघ सं० १६८५ गया हुंता[5], तद[6] कीयो थो। पछे[7] चि० हर जी ई सं० १७०२ गया हुंता।

श्री गंगा जी सोरम घाट मेहमा[8] अथक है।

१ चक्रघाट संनान नित हुवै। उठे[9] भद्र[10] हुई जे उवे[11] ठोड़ी।

× × ×

बीजा घाट ११ छै, मेहमा उवाई[12] घाटा रा छै संनान री।

१ सूरज घाट
१ कुडल घाट
१
१ रणमोचन घाट
१ पापमोचन घाट
१ कुडल बीजोई। उठे संनान कीजै।
१ रूप घाट।
१ गऊ घाट उठे अस्त[13] पड़वाई जै
१ ब्रह्म घाट
१ भैरव भाफ घाट
१ भगीरथी री पीपली—कोस १॥ हेके छै।
१ बुठ गंगा भागीरथ री पीपली कहे छै।

---

१. अन्य भी। २. स्मरण नहीं हो रहा है। ३. नित्य रहना। ४. वहाँ। ५. थे। ६. तब। ७. पीछे। ८. महिमा। ९. वहाँ। १०. शिर मुंडन। ११. उसी स्थान। १२. कही। १३. प्रक्षेपन।

: ४ :

मथुरा सम्बन्धी रेखाचित्र: वन-यात्रा

स्वर्गीय श्री एफ० एस० ग्राउस

रूपान्तरकार : कन्हैयालाल 'चंचरीक', नई दिल्ली

[एफ० एस० ग्राउस, एम० ए०., बी०, सी०, एस०, ने आज से लगभग ८७ वर्ष पूर्व सन् १८७२ में 'इण्डियन एन्टीक्वरी' के प्रथम अंक में 'स्केचेज आन मथुरा' शीर्षक से 'वन-यात्रा' उपशीर्षक के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण शोध निबन्ध प्रस्तुत किया था। यह लेख ब्रज-यात्रा क्षेत्र के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। उस लम्बे लेख को यहाँ पूरा देना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं, अतः उसका संक्षिप्त रूपान्तर ही यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। इस लेख से आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व की ब्रज की स्थिति तथा उसके सम्बन्ध में इस पाश्चयात विद्वान की जानकारी का रोचक परिचय प्राप्त होता है। — **सम्पादक**]

ब्रज-मण्डल–चीनी यात्री ह्वेनसांग ने, जिसने सातवीं शताब्दी में भारत में पदार्पण किया था, अपने भ्रमण-वृतान्तों में मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ६५० मील माना है। उसने लिखा है कि "यहाँ की मिट्टी बड़ी उपजाऊ थी और विशेषतया अनाज और कपास की उपज के लिए अच्छी थी। आमों के इतने बाग थे कि ऐसा लगता था जैसे जंगल हो। आम दो प्रकार के होते थे एक तो छोटे जो पकने पर पीत वर्ण के हो जाते थे, दूसरे बड़े जो सदैव हरे रहते थे।" इस वर्णन से यह ज्ञात होता है कि मथुरा राज्य राजधानी के पूर्व में मैनपुरी की ओर फैलाव में अधिक था; क्योंकि उधर ही आमों के घने बाग थे। जब कि पश्चिमी मथुरा राज्य में आमों के बगीचे लगाने के लिए विशेष श्रम और सतर्कता की आवश्यकता थी। बौद्ध मठों और स्तूपों के भग्नावशेष भी प्रायशः मैनपुरी के आस-पास के गाँवों में मिलते हैं। इस बात की बड़ी सम्भावनाएँ हैं कि चीनी यात्री के भ्रमण-काल में मथुरा-राज्य के अन्तर्गत आगरा का कुछ भाग, शिकोहाबाद का पूरा भू-भाग और मैनपुरी का मुस्तफाबाद परगना भी सम्मिलित था।

यमुना के दाहिने किनारे पर कोसी[१] और छाता[२] परगना हैं और बायीं

---

१ 'कोसी' दिल्ली मार्ग पर स्थित इस जन-प्रदेश का प्रमुख 'पशु बाजार' है। यह 'कुशस्थली' का अपभ्रंश समझा जाता है।

२ 'छाता' छत्र का अपभ्रंश है। ऐसी जनश्रुति है कि इस स्थल पर श्री कृष्ण ने छत्र-धरण लीला की थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि यहाँ सरायों की छतरियों से छाता बना है।

और नोंहझील[1] और मांट[2] तथा महावन का आधा परगना और पूर्व का वह भाग है जहाँ तक कि बल्देव स्थित है। वैसे भी ब्रज का क्षेत्रफल ८४ कोस माना गया है। पश्चिम में चरागाह और जंगली भू-भाग की अधिकता थी और अभी तक बहुत से गाँवों में जंगली पेड़ों की पत्तियाँ फैली हैं जिन्हें आमतौर पर—घना, झाड़ी, बन और खण्डी आदि नामों से पुकारा जाता है। संवत् १८६४ यानी सन् १८३८ में जो भयंकर अकाल पड़ा था उस समय लोगों ने जमीनों पर अधिकार छोड़ दिया था और इधर-उधर लोगों को रोजगार देने के लिए सड़कें बनवाई गई थीं। प्रायः प्रत्येक स्थान कृष्ण और राधा की जीवन-लीला से सम्बन्धित है।

१६वीं शताब्दी के अन्त तक समस्त ब्रज जनपद बंजर था और यत्र-तत्र बिखरी हुई झोंपड़ियाँ मात्र थीं और आने-जाने के लिए केवल एक ही रास्ता था। अधिकांश तालाब और मन्दिर जिनके कि पीछे वैभवमयी गाथाओं की रोचक पृष्ठ-भूमि है बरसाने के श्री रूपराम ने १७४० के आस-पास निर्मित कराये हैं अथवा अभी हाल के बनाए हुए हैं। ब्रज के पेड़ों में पीलू, बेर, छोंकर, कदम्ब, पसेंडू, पापरी और अन्य प्रकार की झाड़ियाँ, करील आदि प्रमुख हैं।

वन-यात्रा—समस्त जनपद में १२ वन और २४ उपवन माने गये हैं। बारह वन हैं—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, कामवन, खदिरवन, वृन्दावन, भद्र-वन, भांडीरवन, बेलवन, लोहवन एवं महावन।

चौबीस उपवन हैं—गोकुल, गोवर्धन, बरसाना, नन्दगाँव, संकेत, परमाद्र, अड़ीग, शेषसाई, मांट, ऊँचागाँव, खेलवन, श्री कुण्ड, गन्धर्ववन, पारसोली, बिलछू, बच्छवन, आदि बदरी, करहला, अजनोंख, पिसाया, कोकिलावन, दधिगाँव, कोटवन और रावल।

इनकी निश्चित संख्या के बारे में बहुत से स्थानीय पण्डितों में मतभेद है। इन वन-उपवनों में भी बहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ जंगल झाड़ियों का सर्वथा अभाव है और उनके पीछे 'वन' शब्द सार्थक नहीं लगता। पहले वनों पर प्रकाश डाला जा रहा है—

(१) **मधुवन**—मथुरा की दक्षिण-पश्चिम दिशा में कोई चार-पाँच मील की दूरी पर महोली गाँव के निकट मधुवन स्थित है। पुराणों के अनुसार इस जंगल में 'मधु' दैत्य का आधिपत्य था। उसी के नाम पर इसका नाम 'मधुवन' प्रसिद्ध था। उसकी मृत्यु होने पर उसके पुत्र 'लवण' ने इस पर अपना अधिकार जमा लिया। उसने विश्व-विजय की महती आकांक्षा से प्रेरित होकर अयोध्या के तत्कालीन

---

१. नोंह झील मथुरा से लगभग ३० मील की दूरी पर एक उजाड़ कस्बा है जो ६ मील लम्बी झील के किनारे बसा है; जो किसी बाढ़ की देन लगती है। जाटों का बनाया उजड़ा हुआ किला और मुसलमानों की टूटी-फूटी दर्गाह भी है। टूटे-फूटे मन्दिरों के चिह्न भी हैं।

२. यमुना के बाईं तट पर छोटा सा गाँव है। कृष्ण ने बचपन में यशोदा के दधि भरे मटकों (माटों) को जो यत्र-तत्र रखा था उसकी एक स्मृति। वैष्णव पुराणों में वर्णित प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल—भांडीर-वन और भद्रवन के निकट बसा है।

महाराजा राम से लड़ाई का प्रस्ताव किया। महाराजा राम ने अपने सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न को लवण दैत्य से युद्ध करने के लिए भेजा। युद्ध में लवण मारा गया और शत्रुघ्न ने सारे घने जंगल को साफ कराया जिसके कि बल पर दैत्य जीत की कामना लिये रहता था। इसी स्थान पर शत्रुघ्न ने 'मधुपुरी' नगरी बसाई। बहुत से स्थानीय विद्वान त्रुटि से मथुरा का दूसरा नाम ही मधुपुरी बताते हैं, जब कि सत्यता यह है कि मथुरा शुरू से ही यमुना तट पर बसी हुई है और मधुवन यमुना से कई मील दूर है। स्थायी महत्त्व के समस्त संस्कृत साहित्य में यही भ्रम वर्तमान है।[1] उदाहरण के लिए 'हरिवंश पुराण' में भी यही त्रुटि पायी जाती है। हरिवंश में 'तालवन' को गोवर्धन के उत्तर में स्थित बताया गया है। भागवत में वृन्दावन के निकट कहा गया है, जब कि वास्तव में यह गोवर्धन के दक्षिण-पूर्व में है। इस विवाद में न पड़ते हुए, यह सही है कि व्युत्पत्ति के आधार पर और भौगोलिक कारणों से मथुरा और मधुपुरी सदैव अलग-अलग जगहें थीं। महोली जो कि मधुवन के निकट प्राचीन और परम्परागत स्थान है संस्कृत 'मधुपुरी' का प्राकृत रूप है। वररुचि (II, २७) के अनुसार 'ह' को 'ध' की जगह उच्चरित किया जाता है। (जैसे बधिर की जगह बहिर या बहिरा=जिसे कम सुनाई दे) अतः मधुपुरी प्राकृत में महुपुरी बोली जायगी। सूत्र II, २ के अनुसार पुरी का 'प' उच्चारण में आवश्यक नहीं समझा गया, फलतः महुरी बिगड़ते-बिगड़ते 'महोली' हो गया। अकबर के राज्य-काल में और उसके अनन्तर भी यह गाँव अपने क्षेत्र का प्रमुख स्थान था। इस पवित्र वन के निकट 'मधु-कुण्ड' नामक ताल है जहाँ पर कि कृष्ण के नाम पर 'चतुर्भुज-मन्दिर' बना है। यहाँ भादों की कृष्णा एकादशी को मेला जुड़ता है।

अन्य वन—(२) **ताल वन**—मथुरा से लगभग ६ मील की दूरी पर भरतपुर की सड़क पर है। यह तारसी गाँव के निकट है जिसके कि बारे में कहा जाता है कि उसे ताराचन्द नामक एक कछवाहा ठाकुर ने बसाया था जो कि थोड़ी दूर पर स्थित सतोहा[2] से आकर यहाँ रहने लगा था। यहाँ भादों की शुक्ला एकादशी को वार्षिक मेला जुड़ता है। पुराणों में लिखा है कि इस दिन बलराम ने 'धेनुक' दैत्य का बध किया था जिसने कि गधे का वेष धारण करके कृष्ण और बलराम पर आक्रमण किया था। उसी स्मृति में यह मेला आयोजित किया जाता है। (३) **कुमुदवन** और (४) **बहुला-वन** करीब-करीब हैं। एक ऊँचागाँव में और दूसरा बाटी में, जो कि बहुलाबाटी से मिलता-जुलता है। पहले के साथ कोई गाथाएँ नहीं जुड़ी हैं जब कि दूसरे के साथ गाय और शेर की भिड़न्त की गाथा गुँथी हुई है जिसमें गाय जीती थी।

---

१. ग्राउस महोदय को यह भ्रम इसलिए हुआ कि सम्भवतः उन्हें समय-समय पर यमुना की बदलती हुई धारा के प्रवाह के सम्बन्ध में जानकारी नहीं थी। —**सम्पादक**

२. 'सतोहा' एक पवित्र सरोवर है। यह महाराजा शान्तनु के नाम पर बनाया गया है। इसे शान्तन कुण्ड' भी कहा जाता है। ऐसी जनश्रुति है कि इस स्थान पर, यहाँ राजा शान्तनु ने पुत्र पाने के लिए घोर तपस्या की थी। अन्त में गंगा जी ने उन्हें भीष्म जैसा बलशाली पुत्र दिया जो कि महाभारत के योद्धा थे। हर इतवार को पुत्रोत्पत्ति की कामना करने वाली स्त्रियाँ यहाँ स्नानार्थ आती हैं। भादों की शुक्ल सप्तमी को यहाँ मेला भी जुड़ता है।

यहाँ 'कृष्ण कुण्ड' नाम का एक सरोवर है जिसके किनारे पर 'बहुला गाय' का मन्दिर है ।

(५) काम कस्बे के निकट ही कामवन है। यह मथुरा से ३९ मील दूर भरतपुर राज्य के अन्तर्गत तहसील का केन्द्र है । (६) खादिरवन छाता से लगभग ४ या ५ मील की दूरी पर स्थित है, खैरा गाँव के बाहर बिलकुल सटा हुआ। वररुचि के नियम(II. २) के अनुसार 'खादिरवन' के 'द' का उच्चारण नहीं किया जाता। फलतः 'खैरागाँव' उसी का विकसित रूप है। इस वन में कदम्ब, पीलू, छोंकर आदि बहुतायत से हैं। इसके निकट ही 'कृष्ण कुण्ड' नामक विशाल सरोवर है, बल्देव मन्दिर भी है और गोपीनाथ का भी दूसरा मन्दिर है जिसे कि अकबर के राज्य-काल में टोडरमल ने बनवाया था । (७) भद्रवन यमुना के बाईं ओर माँट से तीन मील दूर है। भागवत में जिस दावानल के बुझाने का जिक्र है वह वन यही है जिसे जिले के नक्शे में भूल से 'बहादुर वन' लिख दिया गया है। निकटवर्ती गाँव भदम या भद्रपुर कहलाता है। (८) छाहिरी के नगले के पास भांडीरवन है जहाँ पर कि बेर, हींस आदि कँटीली झाड़ियाँ पाई जाती हैं। बीच में खुले हुए स्थान में आधुनिक ढंग का एक छोटा सा 'बिहारी जी' का मन्दिर है, कुआँ है और विश्रामालय है। भांडीरवट भी पास ही है। पुराणों के अनुसार एक दिन ग्वाल-बालों ने इस पेड़ तक दौड़ बदी। 'प्रलम्ब' दैत्य भेष बदल कर उन में आ मिला। जिसे द्वंद-युद्ध में बलराम[1] ने मार डाला। (९) बेलवन यमुना के बाईं ओर जहाँगीर पुर गाँव के निकटवर्ती क्षेत्र में है। (१०) लोहवन, महावन परगने में मथुरा से लगभग ३ मील यमुना से परे स्थित है। श्री कृष्ण ने इस वन में 'लोहासुर' को पछाड़ा था। यात्रीगण भेंट में भी 'लोहा' चढ़ाते हैं।

'मथुरा महात्म्य' में बारहों वनों का उल्लेख है और अधिकांश श्री कृष्ण और बलराम की पौराणिक गाथाओं से सम्बन्धित हैं। महावन यमुना के बाईं ओर स्थित है। वृन्दावन में कृष्ण ने अपने शैशव के दिन बिताये थे। ग्वाल-बालों के साथ गायें चराई थीं। व्रज में जो चार बड़े नगर हैं उनमें मथुरा और गोवर्धन के साथ-साथ महावन और वृन्दावन का नाम भी आता है।

दूसरी ओर चौबीस उपवन राधिका की लीलाओं से अनुप्राणित हैं । इनमें तीन तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं गोकुल, गोवर्धन और राधा कुण्ड । इनमें से गोकुल सारे संस्कृत-साहित्य में महावन की तरह ही वनों के अन्तर्गत गिना जाता है। राधा-कुण्ड के कारण ही राधा जी की वर्त्तमान प्रतिष्ठा है। संकेत राधा के घर बरसाना और कृष्ण के पालक-पिता नन्द के निवास नन्दगाँव के बीचों-बीच राधा-कृष्ण के 'पुण्य-मिलन' की पवित्र स्थली है। परमाद्रं भरतपुर की पहाड़ियों में एक उपेक्षित स्थान है। अड़ींग, मथुरा और डीग की सड़क पर बसा हुआ एक छोटा कस्बा है । १८६८ तक यह

---

१. बलराम को ग्रीक और लैटिन इतिहासकारों ने 'बेलुस' के नाम से 'भारतीय हरक्यूलस' कहा है।

तहसीली का मुख्य केन्द्र था और जिले की राजधानी से केवल ९ मील की दूरी पर है। यहाँ पर प्राचीन कुञ्जों का अभाव है। किलोल-कुण्ड नामक सरोवर पवित्र स्थान माना जाता है। शेषसाई—कोसी परगना के अन्तर्गत शेषसाय गाँव के निकट है और ऐसा कहा जाता है कि इस जगह कृष्ण और बलराम ने गोपियों को अपना नारायण और शेष का असली ईश्वरीय रूप दिखाया था।

माँट के आस-पास प्राचीन अवशेष नहीं मिलते। हाँ, भांडीरवन और भद्र-वन दोनों इसकी सीमाओं पर स्थित हैं। ऊँचागाँव एक पुरानी बस्ती है जहाँ 'लाड़ली जी' का विख्यात मन्दिर है। खेलवन शेरगढ़ कस्बे के निकट है। राधा कुण्ड जिसे 'श्री कुण्ड' भी कहा जाता है (यानी पवित्र कुण्ड) गोवर्धन के निकट एक कस्बा है जो मथुरा के पश्चिम में १५ मील की दूरी पर स्थित है। अरिष्ठ दानव को श्री कृष्ण ने यहीं मारा था। कहा जाता है कि 'गिरिराज' में ईश्वरीय प्रेरणा से समस्त पवित्र धाराएँ और तीर्थ-स्थान अपना शारीरिक रूप धारण करके एकत्रित हुए और इस युद्ध-स्थल को पावन बनाया। तभी कृष्ण कुण्ड तथा राधा कुण्ड का उद्घाटन हुआ। कातिक की कृष्णाष्टमी को अभी भी वे पवित्र आत्माएँ इस स्थान पर उतर-कर इसका निरीक्षण करती हैं। यहाँ विशाल और अति सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं। हिन्दुस्तान के दूरस्थ प्रदेशों से यात्री आते हैं। पूर्व बंगाल में स्थित मणिपुर के राजा ने भी एक मन्दिर की स्थापना कराई है। १८१७ में लाला बाबू ने पक्के घाट तैयार कराये हैं और बंगालियों ने इसे एक उपनगर बनाकर रहना शुरू किया। तेरहवाँ उप-वन गंधर्बवन है, जिसके स्थान के बारे में निश्चय नहीं है। पारसोली गोवर्द्धन के पास नक्शे में और मालगुजारी के खातों में महमूदपुर के नाम से जानी जाती है। इसके एक ओर सीमा-रेखा पर चन्द्र-सरोवर है। इसके घाट पत्थर के हैं। भरतपुर के राजा नाहरसिंह ने इसका निर्माण कराया था। कहते हैं कि कृष्ण ने गोपियों के साथ अपूर्व लास्य का आनन्दोत्सव मनाने के लिए एक रात को छै महीने के बराबर बना दिया था। बिलछू, बच्छवन और आदि बदरी भरतपुर की सीमा पर उपेक्षित और ऊजड़ बस्तियाँ हैं। करहला[1] या करहैला छाता परगना के अन्तर्गत है जो अपनी शानदार कदम्ब-खण्डी के लिए प्रसिद्ध है। अनोंख, अजौंखरी—अंजन-पोखर से बना है। लेकिन गलत लेखन और गलत उच्चारण अजोंख या अजनोंख के नाम से चल पड़ा है। इस स्थान पर कृष्ण ने राधिका के काजल लगाया था।

पिसाया[2] भरतपुर सीमा पर है, कामवन के निकट। कोकिलावन भी इसी के निकट है और बन जंगली झाड़-झंखाड़ों से भरा एक निरा चरागाह मात्र है। दधि-

---

१. 'करहला' कर हिलना से लिया गया है, रास-लीला में हाथ हिलते हैं। 'बरना गाँव के' पास करहला कुण्ड है जिसका तात्पर्य कर्म हिलना या पाप मोचन समझा जाता है। मैनपुरी जिले में एक 'करहल' नामक भारी कस्बा भी है। करीलों की अधिकता भी है।

२. भूखी पिसायी या पिसाया—भूखा-प्यासा से तात्पर्य है। आम तौर पर कृष्ण और राधा की स्मृति दिलाता है। एक दिन राधा श्री कृष्ण से मिली जो प्यासे थे। इसी स्थल पर राधा ने कृष्ण को एक बूँद से प्यास बुझाई।

गाँव (या दहगाँव) कोसी परगना के अन्तर्गत है। 'दधि' से बना है। कोटवन कोसी कस्बे के परे है और ब्रज की सीमा बनाकर अपना नाम सार्थक करता है। रावल (राज-कुल के लिए प्रयुक्त) कतिपय गाथाओं के आधार पर सम्मानित राधा का जन्म-स्थान है। महावन के परगने में यह एक छोटा सा गाँव है जिसमें 'लाड़ली जी' का मन्दिर है।

गोवर्धन का शाब्दिक अर्थ 'गायों को देख-भाल' (रक्षा या वृद्धि) से लगाया जाता है। यह मथुरा के पश्चिम में १५ मील की दूरी पर प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ है। ४-५ मील लम्बी और औसतन कोई १०० फीट ऊँची मिट्टी-पत्थरों की एक पट्टी उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम की ओर फैली हुई है। इस पहाड़ी के बारे में कहा जाता है कि कृष्ण ने इसे सात दिन-रात अपनी उँगली पर धारण किया था—मेघ-राज इन्द्र के प्रकोप से ब्रजवासियों की रक्षा करने के लिए। आमतौर पर इसे गिरि-राज पर्वत कहा जाता है; लेकिन प्रारम्भिक साहित्य में 'अन्नकूट' भी कहा गया है। गोवर्धन लगभग पहाड़ी के बीचों-बीच बसा है। एक ओर एक विशाल तालाब है जिसे 'मानसी गंगा' कहा जाता है। इसमें वर्षा का ही पानी आता है। एक जनश्रुति के अनुसार हबीबुल्ला शाह नामक मुस्लिम फकीर के शाप-वश इसका पानी सूख गया था। यहाँ के पवित्र स्थानों में चक्रेश्वर महादेव का मन्दिर तथा चार ताल—गो-रोचन, धर्म-रोचन, पाप-मोचन और ऋण-मोचन प्रमुख हैं।

हिन्दू-विश्वास के अनुसार 'बरसाना' कृष्ण-प्रिया राधा का निवास-स्थल है। १८वीं शताब्दी के मध्यकाल में यह कस्बा धन-धान्य से परिपूर्ण था। यह एक छोटी सी संकीर्ण पहाड़ी के नीचे और ढलान पर बसा हुआ है। यहाँ पर 'लाड़ली जी' के बहुत से मन्दिर बने हुए हैं। 'लाड़ली जी' का यहाँ प्रचलित नाम राधा है जिसका शाब्दिक अर्थ 'प्रिया' है। ये सब मन्दिर पिछले दो-ढाई सौ साल के अन्दर बने हुए हैं। पुराणों में अन्तिम 'ब्रह्मवैवर्त्त' पुराण में राधा के सोलह नाम गिनाए गए हैं—

"राधा, रासेश्वरी, रासव्यसनी, रंकेश्वरी, कृष्ण-पंथिका, कृष्ण-प्रिया, कृष्ण-स्वरूपनी, कृष्णा, बृन्दावनी, वृन्दा, बृन्दाविनोदिनी, चन्द्रावती, चन्द्रकान्ता, सत-चन्द्रा, शुभानना, कृष्ण-वामांग-संभूता, परमानन्दरूपिनी।"

नन्दगाँव कृष्ण का पितृ-गृह है, जहाँ उनका पालन हुआ था, बचपन बीता था। यहाँ एक 'नन्दराय जी' का मन्दिर है। बरसाना और नन्दगाँव के बीच की दूरी कुल पाँच मील है। मनसा देवी के मन्दिर को छोड़कर शेष मन्दिरों के नाम इस प्रकार हैं—नरसिंह, गोपीनाथ, नृत्यगोपाल, गिरिधन, नन्दनन्दन, राधामोहन और जसोदा-नन्दन। यहाँ एक पवित्र ताल है 'पान सरोवर'। बड़ा सुन्दर बना है। बर्द्धवान के राजा ने इसके घाट बनवाए थे। कहते हैं कि यहाँ ५६ कुण्ड थे जो आज दिखाई नहीं पड़ते।

ब्रज की सीमा—'मथुरा-महात्म्य' में मथुरा-मण्डल का विस्तार २० योजन बताया गया है। एक योजन ७ मील के बराबर होता है और एक कोस १⅔ मील। २० योजन लगभग ८४ कोस के बराबर होगा। केन्द्रीय शहर मथुरा उत्तरी सीमा कोटवन से ३० मील की दूरी पर है और दक्षिण में स्थित तारसी से कोई ६ मील।

'इलियट' ने अपनी 'ग्लौसरी' में ब्रज की सीमा के सम्बन्ध में निम्न दोहा उद्धृत किया है—

"इत बरहद[1], उत सोनहद, उत सूरसेन का गाँव।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मण्डल माँह॥"

अर्थात् ब्रज की सीमा में एक ओर 'बर' है जो आगरा जिले में है। दूसरी ओर गुड़गाँव जिले की बरसाती नदी सोन है और तीसरी ओर 'सूरसेन का गाँव' यानी बटेश्वर स्थित है जो अपने 'घोड़ों के मेले' के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार मथुरा-मण्डल का विस्तार ८४ कोस है जिसमें राजधानी (मथुरा) केन्द्र में है।

---

१. यहाँ यह विवादास्पद है कि क्या 'बरहद' आगरा जिले में है, जैसा कि ग्राउस महोदय ने 'इण्डियन एण्टीक्वरी' के पृष्ठ १३७ पर प्रथम पंक्ति में लिखा है। वास्तव में 'बरहद' हाथरस-कासगंज सड़क पर सलेमपुर के निकट एक गाँव है जो अपने पशु बाजार के लिए ब्रज-मण्डल में विख्यात है। डॉ० सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' में डॉ० दीनदयाल गुप्त की थीसिस 'अष्टछाप' में से 'अलीगढ़ जिले के एक गाँव बरहद को ही एक ओर की सीमा' मानकर उद्धरण दिया है।
—रूपान्तरकार

: ५ :

ब्रज-यात्रा क्षेत्र के इतिहास की एक झाँकी

श्री शर्मन लाल अग्रवाल, मथुरा

ज प्रदेश[1] राष्ट्र के इतिहास में अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा है। यह देश की प्राचीनतम एवं पावनतम स्थलियों में से है। राजनीतिक दृष्टि से उसने अनेक संघर्षों को देखा है। इतिहास के अनेक महत्त्वपूर्ण अध्याय इसी की पृष्ठ-भूमि पर लिखे गये हैं। धर्म और दर्शन की दृष्टि से यह भूमि देश में उठने वाले सभी धार्मिक आन्दोलनों का प्रधान केन्द्र रही है। आकार में छोटी होते हुए भी इस भूमि ने प्रकाश-स्तम्भ बन कर देश के सभी भागों को प्रकाशित किया है। काव्य, संगीत और कला की तो यह भूमि अक्षय भण्डार रही है।

नाम एवं प्राकृतिक स्वरूप—ब्रज-प्रदेश या मथुरा-मण्डल का वर्णन लगभग सभी पुराणों में मिलता है किन्तु पद्म-पुराण में इसका विशद् वर्णन हुआ है। मथुरा-मण्डल के सम्बन्ध में भगवान् कहते हैं—

> "तस्मात्त्रैलोक्यमध्येतु पृथ्वीधन्येति विश्रुता।
> यस्मान्माथुरकनाम विष्णोरेकांतवल्लभम्॥
> स्वस्थानमधिकमं नाम ध्येयं माथुरमण्डलम्।
> विष्णुचक्रपरिणाम द्धाम वैष्णवमद्भुतम्॥"
>
> —पद्म० पृ० ५८३, श्लो० १२, १३

त्रैलोक्य के मध्य में स्थित यह मथुरा-मण्डल धन्य है और विष्णु भगवान् का अति प्यारा स्थान है।

इस प्रदेश में यमुना तथा उसकी दो सहायक नदियाँ हैं। एक 'पथवह' और दूसरी 'करवन'। इनके अतिरिक्त 'सोनरेखा' नाम की एक तीसरी नदी पिछले दो वर्षों से और प्रकट हुई है। यह नदी लगभग ४० वर्ष पहले बहती थी लेकिन बीच में लुप्त हो गई थी। इस प्रदेश में उत्तर-पश्चिम की पहाड़ियाँ अरवली पर्वत के भाग हैं जो कामवन और उसके आगे तक फैली हुई हैं। यहाँ प्रसिद्ध गोवर्धन पर्वत है जिसे गिरिराज कहते हैं। उसकी लम्बाई लगभग ५ मील है। यह प्रदेश अपने वनों के

---

१. इस लेख में 'ब्रज प्रदेश' के रूप में जिस क्षेत्र का उल्लेख किया गया है, वह ८४ कोस वाला प्रायः वही 'ब्रज-मण्डल' है जो यात्रा का क्षेत्र है; बृहत्तर ब्रज भाषा-भाषी क्षेत्र नहीं।—सम्पादक

लिए प्रसिद्ध है। प्राचीन साहित्य में १२ वन तथा अनेक उपवनों का वर्णन मिलता है।

वर्तमान समय में वे वन तो नहीं रहे किन्तु आज भी महावन, कामवन, वृन्दावन, कुमुदवन आदि उनकी स्मृति दिलाने को पर्याप्त हैं।

शूरसेन प्रदेश का प्रारम्भिक इतिहास - ब्रज के प्राचीन नाम 'शूरसेन' के नामकरण का इतिहास क्या है, यह विवाद का विषय है। पुराणों की वंश-परम्परा के अनुसार कई शूरसेन हुए हैं किन्तु हरिवंश पुराण में उल्लिखित शत्रुघ्न-पुत्र शूरसेन के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ना अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होता है। इस प्रदेश पर अनेक राजवंशों ने राज्य किया। उनमें यदुवंश प्रमुख था। यादवों ने अपने अनेक केन्द्र स्थापित किये। भीम सात्वत के समय में मथुरा और द्वारका यादव-शक्ति के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। यादवों में मधु[1] एक प्रतापी शासक हुआ। इसी के नाम पर यमुना के किनारे 'मधुपुर' या 'मधुपुरी' नगर बसाया गया जो आगे चलकर 'मधुरा' या 'मथुरा' हुआ। मधु का पुत्र लवण अत्याचारी शासक था। श्री राम के लघु-भ्राता श्री शत्रुघ्न ने इसका संहार किया किन्तु थोड़े समय पश्चात् ही पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार इस प्रदेश पर यादवों का अधिकार पुनः स्थापित हो गया। इस प्रकार यह नगरी अनेक राजाओं से शासित होकर श्री और समृद्धि को प्राप्त होती गई।

कृष्ण कालीन ब्रज—आज ब्रज-प्रदेश का स्मरण भगवान् कृष्ण एवं उनकी लीलाओं के साथ ही किया जाता है। ब्रजभूमि और कृष्ण इन दोनों को हम अलग-अलग रख कर किसी प्रश्न पर विचार कर ही नहीं सकते। ब्रज-प्रदेश के इतिहास में श्री कृष्ण का समय बड़े महत्त्व का है। समस्त ब्रज-जनपद आनन्दकन्द भगवान् कृष्ण की जन्म-स्थली एवं लीला-स्थली होने के कारण गौरवान्वित हो गया। कृष्ण और उनके नाम ने धर्म, राजनीति, संगीत और कला में जो महत्त्वपूर्ण क्रान्ति की, समस्त देश आज भी उससे ओत-प्रोत है। ऐतिहासिक अनुसंधानों के आधार पर श्री कृष्ण का जन्म लगभग ई० पू० १५०० माना जाता है। कृष्ण के बाल-जीवन की घटनाएँ जिनका सम्बन्ध ब्रज से है, भागवत् पुराण के दशम् स्कंध में विस्तार से वर्णित हैं। कृष्ण ने बाल्य-काल में अनेक असुरों का संहार किया। गोवर्द्धन-पूजा को प्रारम्भ करके ब्रजवासियों को पूजा की नवीन पद्धति प्रदान की। वंशी-वादन एवं रास के द्वारा समस्त ब्रजवासियों को मोहित कर लिया। अन्त में अक्रूर के साथ वे मथुरा गए और कंस का बध किया, एवं मथुरा-मण्डल में शासन की सुव्यवस्था की। जरासन्ध के आक्रमणों से ब्रज की रक्षा करने के लिए सौराष्ट्र की प्रसिद्ध नगरी द्वारकापुरी को प्रस्थान किया। इसके पश्चात् कृष्ण का राजनीतिक एवं दार्शनिक

---

१. मथुरा इसी 'मधु' नरेश ने बसाई यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वान् मथुरा बसाने वाले मधु को दैत्य वंशी बताते हैं जिसका पुत्र लवण था। —सम्पादक

जीवन प्रारम्भ होता है और व्रज के लोक-जीवन पर कृष्ण के इन सभी रूपों का प्रभाव पड़ा है।

ब्रज प्रदेश और बौद्ध युग—महाभारत के पश्चात् बुद्ध के पूर्व तक व्रज प्रदेश का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता है। पुराणों से इतना ही ज्ञात होता है कि अर्जुन ने श्री कृष्ण के पौत्र अनुरुद्ध के लड़के वज्रनाभ को शूरसेन जनपद के सिंहासन पर बिठाया।

महात्मा बुद्ध के जन्म से पहले भारत में सोलह बड़े जनपद थे। प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य में इन्हें "सोलस महा जनपद" के नाम से पुकारा गया है। इनमें शूरसेन का भी प्रमुख स्थान था। 'जातक-साहित्य' तथा कुछ अन्य बौद्ध ग्रन्थों में मथुरा सम्बन्धी विवरण प्राप्त होते हैं। सिंहली बौद्ध साहित्य में मथुरा नगर को अत्यन्त गौरवशाली नगर कहा गया है और इसे एक विशाल राज्य की राजधानी बताया गया है। मौर्य-शासन-काल से तो मथुरा में बौद्ध धर्म का एक विशाल केन्द्र स्थापित हुआ जो कई शताब्दियों तक विकसित होता रहा। उस काल में आए हुए यूनानी लेखक मैगस्थनीज, एरियन, टाल्मी आदि विद्वानों ने मथुरा की प्रशंसा की है तथा उसे "देवताओं का नगर" बताया है। व्रज-प्रदेश में प्राप्त होने वाले अनेक सिक्के व मूर्तियाँ मथुरा पर बुद्ध-युग के प्रभाव को स्पष्ट प्रकट करते हैं।

कुषाण-कालीन मथुरा—'शूरसेन जनपद' पर शुङ्ग वंश की प्रभुता समाप्त होने के पश्चात् यहाँ शकों का आधिपत्य प्रारम्भ हुआ। शकों ने शुङ्ग साम्राज्य के पश्चिमी भाग को अपना कर लिया और इस विजित प्रदेश का केन्द्र मथुरा को बनाया जो उस समय उत्तर भारत में कला, धर्म तथा व्यापार का प्रधान नगर था। मथुरा के शक शासकों ने, "महाक्षत्रप" की उपाधि धारण की। इनका शासन ई० पू० १०० से ई० पू० ५७ तक रहा। इस काल के अनेक सिक्के प्राप्त होते हैं जिन पर "महाछत्रपस" तथा 'अप्रतिहत चक्र" आदि उपाधियाँ अंकित मिलती हैं। इस काल में राज बुल नामक शासक प्रसिद्ध हुआ। इस काल में कनिंघम के अनुसार मथुरा राज्य की सीमाएँ उत्तर में दिल्ली, दक्षिण में ग्वालियर तथा पश्चिम में अजमेर तक फैल गई थीं। राज बुल के पश्चात् मथुरा पर उसके पुत्र शोडाश का शासन हुआ। इस समय के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि मथुरा में उस समय हीनयान तथा महायान दोनों शाखाओं का प्रभाव था। इस समय के अभिलेखों में सबसे महत्त्वपूर्ण वह अभिलेख है जिसके आधार पर कटरा केशवदेव को भगवान् श्री कृष्ण का जन्म-स्थान माना गया है। वह इस प्रकार है—

"वसुना भगव [तो वासुदे] वस्य महास्थाने [चतुःशा] लं तोरणं वे [दिका प्रति] ष्ठापिता प्रीती भ [वतु वासु] देवः। स्वामिस्य [महाक्षत्र] पस्य शोडासस्य सम्वर्ते याताम्।

[अर्थात् स्वामी महाक्षत्रप शोडास के शासन-काल में वसु नामक व्यक्ति के द्वारा महास्थान (जन्म-स्थान) पर भगवान् वासुदेव के एक चतुःशाला मंदिर के तोरण (सिरदल से सुसज्जित द्वार) तथा वेदिका की स्थापना की गई।"]

ईसा के लगभग ५७ वर्ष पूर्व उज्जैनी के उत्तर में मालवों ने अपनी शक्ति

संगठित की तथा उज्जैनी के शकों को परास्त किया। शकों की इस हार का प्रभाव मथुरा पर भी पड़ा और यहाँ का क्षत्रप वंश समाप्त हो गया। इसके पश्चात् यहाँ पर दत्त वंश का राज्य स्थापित हो गया। इस काल के सिक्कों पर एक ओर लक्ष्मी की मूर्त्ति मिलती है तथा दूसरी ओर सवार सहित तीन हाथियों की। दत्त वंश के पश्चात् शकों की एक कुषाण नामक शाखा का देश में प्राबल्य हुआ। इन्होंने धीरे-धीरे अपना प्रभाव पंजाब तक स्थापित कर दिया। इस वंश का कनिष्क सबसे प्रतापी राजा हुआ। अफगानिस्तान और कश्मीर से लेकर बनारस से कुछ आगे तक उसके शासन का विस्तार था। इसने उत्तर में पुरुषपुर (पेशावर) को अपनी राजधानी बनाया। इसके साथ मध्य में मथुरा तथा पूर्व में सारनाथ राज्य के केन्द्र बनाए। इस काल में मथुरा प्रदेश की बड़ी उन्नति हुई। पंडित कृष्णदत्त वाजपेयी के शब्दों में, "कनिष्क के समय में मथुरा नगर की बहुमुखी उन्नति हुई। यह नगर राजनीतिक केन्द्र होने के साथ-साथ धर्म, कला, साहित्य एवं व्यापार का भी केन्द्र बना। कनिष्क बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसके समय में साम्राज्य के प्रमुख स्थानों के साथ मथुरा में भी इस धर्म की बड़ी उन्नति हुई और अनेक बौद्ध स्तूपों, संघारामों आदि का निर्माण हुआ। मानुषी रूप में बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण मथुरा में इसी समय से प्रारम्भ हुआ। महायान धर्म की उन्नति के फलस्वरूप पूजा के निमित्त विविध धार्मिक प्रतिमाओं का निर्माण बड़ी संख्या में होने लगा। कनिष्क के समय की बौद्ध प्रतिमाएँ सैकड़ों की संख्या में मथुरा और उसके आस-पास से प्राप्त हो चुकी हैं। महायान मत के आचार्य वसुमित्र और 'बुद्धचरित' एवं 'सौदरानन्द' आदि ग्रन्थों के रचयिता अश्वघोष कनिष्क की राज-सभा के रत्न थे। इनके अतिरिक्त पार्श्व, चरक, नागार्जुन, संघरक्ष, माठर आदि अन्य कितने ही कवि, कलाकार और विद्वान् कनिष्क की सभा में विद्यमान थे।"

"पेशावर और तक्षशिला की तरह कनिष्क ने मथुरा में भी अनेक बौद्ध-स्तूपों और मठों का निर्माण करवाया। उसके समय में धार्मिक सहिष्णुता बहुत थी, जिसके कारण बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन तथा हिन्दू धर्म की भी उन्नति हुई। जैनियों के अनेक स्तूपों, आयागपट्टों, तीर्थंकर प्रतिमाओं तथा अन्य विविध कला-कृतियों का निर्माण हुआ। उसी प्रकार विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा, कार्तिकेय आदि हिन्दू देवताओं की भी प्रतिमाएँ इस काल में निर्मित हुईं।"

कनिष्क के पश्चात् वाशिष्क, हुविष्क तथा कनिष्क द्वितीय ने भी मथुरा प्रदेश पर शासन किया। ये सब शासक बौद्ध थे किन्तु इसके पश्चात् वासुदेव के समय के सिक्कों से ऐसा प्रतीत होता है कि इसका झुकाव शैव धर्म की ओर था। कुषाण शासन-काल में मथुरा का बहुत महत्त्व बढ़ा। यहाँ विविध धर्मों का विकास हुआ; इसके साथ स्थापत्य, मूर्त्ति-कला एवं व्यापार की बड़ी उन्नति हुई।

गुप्त शासन-काल में समुद्रगुप्त ने नाग वंश के राजा गणपति नाग को परास्त करके मथुरा क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। इस काल में उज्जैनी, पाटलिपुत्र और अयोध्या की तो बड़ी उन्नति हुई किन्तु मथुरा प्रायः उपेक्षित-सा रहा। केवल चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा मथुरा में किसी बड़े धार्मिक कार्य के सम्पन्न

होने का संकेत मिलता है। यह कार्य सम्भवतः श्री कृष्ण जन्म-स्थान पर एक भव्य मंदिर का निर्माण रहा हो। तत्कालीन कवि कालिदास ने रघुवंश में शूरसेन जनपद मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन एवं यमुना का वर्णन किया है। इनसे ब्रज के तत्कालीन सौन्दर्य का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

विदेशी आक्रमणों के बीच ब्रज प्रदेश—गुप्त-काल के पतन के पश्चात् ५०० ई० के लगभग हूणों ने पश्चिमी मध्य-भारत पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। वे बलख से तक्षशिला आदि विशाल नगरों को उजाड़ते, राज्यों को पददलित करते हुए मथुरा होकर मध्य भारत तक पहुँच गए थे। मथुरा उस समय बहुत समृद्ध था। यहाँ बौद्ध, जैन एवं हिन्दुओं की विशाल इमारतें थीं। हूणों के द्वारा अधिकांश इमारतें जलादी गईं तथा मूर्त्तियाँ तोड़ दी गईं। श्री कृष्ण जन्म-स्थान पर बना हुआ विशाल मंदिर भी इनकी क्रूरता का शिकार हुआ।

इस आक्रमण से लेकर ग्यारहवीं शती तक इस प्रदेश में अपेक्षाकृत शांति रही। किन्तु ग्यारहवीं शती के प्रारम्भ में उत्तर-पश्चिम की ओर से मुसलमानी आक्रमण भारत पर होने लगे। १०१७ में महमूद गजनवी का नया आक्रमण मथुरा पर हुआ। उस समय महावन में कुल चन्द नामक शासक राज करता था। यह महमूद गजनवी के आक्रमण का धक्का न सह सका और इसे पराजित होना पड़ा। इसके पश्चात् सुल्तान की फौजें मथुरा पहुँचीं। मथुरा की लूट के सम्बन्ध में महमूद के मार मुंशी उत्वी ने इस प्रकार लिखा है—

"नगर का परकोटा पत्थर का बना हुआ था, उसमें नदी की ओर ऊँचे तथा मजबूत आधार-स्तम्भों पर बने हुए दो दरवाजे स्थित थे। शहर के दोनों ओर हजारों मकान बने हुए थे जिनसे लगे हुए देव-मन्दिर थे। ये सब पत्थर के बने थे और लोहे की छड़ों द्वारा मजबूत कर दिये गये थे। उनके सामने दूसरी इमारतें बनी थीं, जो सुदृढ़ लकड़ी के खम्भों पर आधारित थीं। शहर के बीच में सभी मन्दिरों से ऊँचा एवं सुन्दर एक मन्दिर था, जिसका पूरा वर्णन न तो चित्र-रचना द्वारा और न लेखनी द्वारा किया जा सकता है। सुल्तान महमूद ने स्वयं इस मन्दिर के बारे में लिखा है कि 'यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार की इमारत बनवाना चाहे तो उसे दस करोड़ दीनार (सुवर्ण-मुद्रा) से कम न खर्च करने पड़ेंगे और उसके निर्माण में २०० वर्ष लगेंगे, चाहे उसमें बहुत हा योग्य तथा अनुभवी कारीगरों को ही क्यों न लगा दिया जावे।' सुलतान ने आज्ञा दी कि सभी मन्दिरों को जला कर उन्हें धराशायी कर दिया जाय। बीस दिनों तक बराबर शहर की लूट होती रही।"

उत्वी के अतिरिक्त बदाऊनी तथा फरिस्ता ने भी महमूद की लूट का वर्णन किया है। इस आक्रमण के बाद मथुरा को अपनी स्थिति को सँभालने में बहुत समय लगा।

इसके पश्चात् १२९७-९८ अलाउद्दीन खिलजी के समय में उलख खाँ ने असकुण्डा घाट के पास किसी हिन्दू मन्दिर को तोड़ कर एक मस्जिद बनवाई। इन शासकों के समय में मथुरा और वृन्दावन बुद्ध-परस्तों का अड्डा माना जाता था। तुगलकों के समय में भी मथुरा पर अनेक अत्याचार हुए। सिकन्दर लोदी के शासन-

काल में मथुरा के मन्दिर पूरी तरह नष्ट किये गए। एक भी धार्मिक स्थान अछूता नहीं छोड़ा गया। इसी काल में श्री कृष्ण जन्म-स्थान पर राजा विजय पाल देव द्वारा निर्मित कृष्ण मन्दिर को भी नष्ट-भ्रष्ट किया गया।

मुगलकालीन ब्रज-प्रदेश—अकबर ने ब्रज प्रदेश के सम्बन्ध में उदार नीति अपनाई। उसने धर्मिक यात्रियों से लिये जाने वाला कर समाप्त कर दिया। १५६४ में जजिया भी समाप्त कर दिया गया। १५६६ में अकबर ने श्री विट्ठल नाथ जी के प्रति विशेष अनुराग दिखाया। उसने गोकुल ग्राम इन्हें प्रदान कर दिया, तथा शाही चरागाहों में उनकी गायों को चरने की आज्ञा प्रदान की। सन् १५७३ में अकबर स्वयं मथुरा तथा वृन्दावन गया और उससे प्रोत्साहन पाकर हिन्दू नरेशों ने मथुरा-वृन्दावन में अनेक घाट तथा मन्दिर बनवाए। अकबर ने ब्रज की शासन-व्यवस्था में भी सुधार किया। जहाँगीर के समय में भी मथुरा और वृन्दावन में निरन्तर नये मन्दिर बनते रहे। ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने मथुरा में केशव देव का सुप्रसिद्ध मन्दिर बनवाया। यह अपने समय का सबसे अधिक आश्चर्यजनक मन्दिर गिना जाता था। इनके अतिरिक्त थेर सागर और समुद्र सागर नाम के दो तालाब ब्रज प्रदेश में बने। वृन्दावन में मदन मोहन, जुगुल किशोर और राधा बल्लभ के तीनों मन्दिर जहाँगीर के शासन-काल में ही बने।

शाहजहाँ के शासन-काल में इस उदार नीति का अन्त होना प्रारम्भ हुआ। औरंगजेब के काल में कट्टरतापूर्ण धार्मिक नीति अपनायी गई। औरंगजेब ने अब्दुल नबी को मथुरा का शासक नियुक्त किया। उसने दारा शिकोह द्वारा प्रदत्त केशव राय के मन्दिर के कटहरे को बलपूर्वक उखाड़ डाला। नये मन्दिरों के बनने की कड़ी मनाही करवादी। अन्त में ९ अप्रेल १६६९ को औरंगजेब ने आज्ञा दी कि, "काफिरों के सारे मन्दिर, पूजा-गृह तथा पाठशालाएँ तोड़-फोड़ दी जावें एवं उनके धार्मिक पठन-पाठन एवं पूजा-पाठ पूरी तरह बन्द कर दी जावें।"

इस अत्याचार के विरुद्ध गोकुला जाट के नेतृत्व में ब्रज की जनता ने विद्रोह किया। अब्दुल नबी बसुरा ग्राम के निकट मारा गया। इसके पश्चात् दूसरे फौजदार हसन अली के साथ गोकुला का भीषण युद्ध हुआ और अन्त में गोकुला की मृत्यु हुई। इसी समय ब्रज की प्रधान मूर्त्तियाँ ब्रज से बाहर ले जायी गयीं। श्री नाथ जी की मूर्त्ति मेवाड़ में नाथद्वारा में स्थापित हुई। गोकुल वाले द्वारकाधीश की मूर्त्ति को भी मेवाड़ ले जाकर काँकरोली में उसकी प्रतिष्ठा हुई। वृन्दावन में आमेर के राजा मानसिंह द्वारा निर्मित गोविन्द देव मन्दिर की मूर्त्ति आमेर ले गये। केशव राय का प्रसिद्ध मन्दिर तीसरी बार नष्ट किया गया। मूर्त्तियों को मस्जिद की सीढ़ियों में लगाया गया। तथा मथुरा और वृन्दावन के नाम भी बदल दिये गये। उन्हें क्रमशः "स्लामाबाद" और "मौमनाबाद" कहा जाने लगा।

इसके पश्चात् नादिरशाह का आक्रमण इस देश पर हुआ और उसका प्रभाव ब्रज पर भी पड़ा। वृन्दावन में लूट-मार प्रारम्भ हुई। मरहठों ने जनवरी १७५४ में ब्रज पर चढ़ाई की और डीग, भरतपुर तथा कुम्हेर के किलों को घेर लिया। जाट मरहठा संघर्ष में ब्रज-प्रदेश की पर्याप्त हानि हुई और उसके पश्चात् १५ मार्च सन्

१७५७ को अहमदशाह अब्दाली स्वयं मथुरा पहुँचा और मथुरा और वृन्दावन की भारी लूट हुई। इस लूट में उसे करीब १२ करोड़ रुपये की धन-राशि प्राप्त हुई। इसी वर्ष अब्दाली के सेनापति जहान खाँ ने एक बार ब्रज को फिर लूटा और ब्रज प्रदेश पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

अंग्रेजी शासन-काल एवं स्वाधीनता प्राप्ति—अंग्रेजी शासन-काल में जाटों के द्वारा विद्रोह होता रहा। १८ जनवरी सन् १८२६ को भरतपुर का किला अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। इसके पश्चात् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में ब्रज प्रदेश का बड़ा सहयोग रहा। मथुरा, दिल्ली सड़क पर के गाँवों की भारतीय जनता तथा ब्रज के अन्य गाँवों के लोग स्वाधीनता की भावना से भरपूर थे। उन्होंने सैनिकों को दिल्ली की ओर बढ़ने में और सरकारी इमारतें नष्ट करने में सहयोग दिया। मथुरा और उसके आस-पास कुछ समय के लिए अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया। जनता के सम्मिलित सहयोग ने ही मथुरा और अन्य तीर्थ-स्थानों को बरबादी से बचाया तथा शहर में लूट-मार की बहुत कम घटनाएँ हुईं। अगले वर्षों में ब्रज में राजनैतिक तथा उत्थान के कार्य हुए। पुरातत्व संग्रहालय की स्थापना हुई। ऋषि दयानन्द ने यहीं पर गुरु विरजानन्द के सामने देश-सेवा का व्रत लिया।

आज स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् ब्रज का नव निर्माण हो रहा है। कटरा केशवदेव के पुनरुद्धार का कार्य चल रहा है। उस स्थान पर एक विशाल मन्दिर व सांस्कृतिक केन्द्र की रूप-रेखा बन चुकी है। ब्रज की प्राचीन कदम-खण्डियों का संरक्षण एवं गोवर्धन पर्वत के चारों ओर यात्रा-पथ को पुष्प वृक्षावलियों से शोभित करने का कार्य तेजी से चल रहा है। सूरदास की पावन-स्थली 'रेणुका-क्षेत्र' के पास 'सूरवन' के नाम से एक विशाल वन-खण्ड बनाया जा रहा है। सेठ गोविन्द दास जी द्वारा प्रस्तावित सांस्कृतिक ब्रज-यात्रा एवं कृष्ण-धाम की स्थापना का प्रयत्न भी ब्रज की प्रगति के इतिहास में महत्त्वपूर्ण पग हैं।

ब्रज का धर्म और दर्शन—धार्मिक दृष्टि से ब्रज का इतिहास बड़ा महत्वपूर्ण है। इस भूमि को जैन, बौद्ध, भागवत्, शैव, शाक्त आदि भारत के सभी प्राचीन मतों की विकास-भूमि होने का गौरव प्राप्त है। इस जनपद में भी प्रारम्भ काल में वैदिक कर्मकाण्ड का प्राधान्य रहा। श्री कृष्ण के अवतार के पश्चात् एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। उन्होंने प्रचलित दार्शनिक मान्यताओं में समन्वय स्थापित करके निष्काम भाव से कर्मवाद का मार्ग प्रशस्त किया। उनके द्वारा स्थापित भागवत धर्म ने सात्विक भक्ति के माध्यम से कोटि-कोटि भक्त-मानसों को तरंगित किया।

बुद्ध धर्म—बुद्ध के समकालीन मथुरा के शासक अवन्ति पुत्र का उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है। महात्मा बुद्ध ने अनेक यक्षों को बुद्ध धर्म में दीक्षित किया। बौद्ध धर्म के प्रचारकों में प्रमुख आचार्य उपगुप्त ने मथुरा में भी यमुना तट पर विशाल स्तूप बनवाए। शुङ्गकाल में भी कई गुहा विहार तथा स्तूप बनाए गये। मथुरा में बौद्ध धर्म की सभी शाखाओं के अनुयायी जैसे "सर्वास्ति वादियों", "सम्मितीय", "महासन्धिक" आदि का उल्लेख मिलता है। पुरातत्व विभाग द्वारा

खुदाई में प्राप्त अनेक मूर्त्तियाँ एवं अभिलेख ब्रज प्रदेश पर बौद्ध धर्म के प्रभाव की साक्षी देते हैं।

जैन धर्म—इसी काल में मथुरा नगर जैन धर्म का भी एक प्रमुख केन्द्र बना। जैन साहित्य में शूरसेन जनपद तथा मथुरा नगर के सम्बन्ध में अनेक उल्लेख मिलते हैं। कंकाली टीला की खुदाई से अन्य महत्त्वपूर्ण सामग्री के साथ एक लेख भी मिला है जिससे इस टीले पर एक स्तूप का उल्लेख मिलता है। जैन ग्रन्थों के अनुसार अन्तिम जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वयं मथुरा आये थे। वर्तमान चौरासी नामक स्थान को जम्बू स्वामी का तपस्या और निर्वाण-स्थल माना जाता है। जैनों के २३वें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ तो ब्रजवासी यदुवंशी ही थे। शक कुषाण काल में यहाँ जैन मत का विशेष विकास हुआ। पुरातत्व संग्रहालय में संग्रहीत मूर्त्तियाँ इसकी प्रमाण हैं।

भागवत् धर्म—भक्ति-प्रधान भागवत् धर्म के उदय एवं विकास का श्रेय ब्रज-प्रदेश को प्राप्त है। २०० ई० से १४०० ई० तक के दीर्घ काल में ब्रज में भागवत धर्म की शाखा-प्रशाखाएँ फैलती गईं एवं वे पल्लवित तथा पुष्पित हुईं। १४वीं शताब्दी तक का समय भागवत धर्म की विभिन्न शाखाओं के विकास का काल है। दक्षिण और उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति के जो आन्दोलन हुए उन सबका प्रभाव ब्रज पर पड़ा। १४वीं शती के अन्त तक चार प्रमुख वैष्णव सम्प्रदाय अस्तित्व में आ गये। निम्बार्क, श्री, माध्व, तथा विष्णु स्वामी इन सम्प्रदायों के आचार्यों ने भक्ति और कर्म का क्रियात्मक सामंजस्य उपस्थित किया। पूर्व में बंगाल भक्ति-उत्थान का केन्द्र बना। उत्तर भारत में राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति की लहरें साथ-साथ बहीं।

वल्लभ सम्प्रदाय और ब्रज—आचार्य वल्लभ का सम्प्रदाय शुद्धाद्वैत-मूलक पुष्टि सम्प्रदाय है। ब्रज, राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में इस सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र बने। ब्रज में गोकुल, गोवर्धन, जतीपुरा, कामवन आदि इस सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र हो गए। इस सम्प्रदाय के द्वारा ही ब्रज में साहित्य और संगीत की अविरल धारा बही। 'अष्ट छाप' के रूप में जिन कवियों और साधकों ने अपनी अमर वाणी द्वारा जिन रचनाओं को जन्म दिया वे साहित्य की अमूल्य निधि हैं। ब्रज और वल्लभ सम्प्रदाय इनका ऐसा सम्बन्ध है कि एक पर विचार किए बिना हम दूसरे पर विचार कर ही नहीं सकते।

ब्रज को कला—धर्म-दर्शन और साहित्य के साथ-साथ ब्रज-प्रदेश विभिन्न कलाओं की जननी रहा है। प्राचीन स्थापत्य कला के नमूने आज नहीं मिलते किन्तु ध्वंसावशेषों के रूप में जो कुछ सामग्री मिली है उससे पता चलता है कि यहाँ के भवन कई तलों के होते थे। सोपान मार्ग, वेदिका स्तम्भ तथा गवाक्ष यथा स्थान लगाये जाते थे। स्वागत-कक्ष, शयन-गृह, शृंगार-कक्ष, भोजन-गृह, स्नानागार अलग-अलग होते थे। चौखट, द्वार, स्तम्भ आदि लताओं पशु-पक्षी, मंगल-घट एवं चित्रों से चित्रित किए जाते थे। आज भी जो मन्दिर बुर्ज या स्मारक देखने को मिलते हैं वे ब्रज की कला के स्पष्ट द्योतक हैं। जैन और बौद्ध काल में मूर्त्ति-कला में भी ब्रज

ने बहुत उन्नति की। पत्थर के साथ-साथ मिट्टी की मूर्त्तियाँ ब्रज की विशेषता थीं। गुप्तकालीन मिट्टी की कुछ बड़ी मूर्त्तियाँ मथुरा कला की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। चित्र-कला के रूप में ब्रज राजस्थान की शैली से बहुत प्रभावित है। कतिपय चित्र बुन्देलखण्ड शैली के भी मिलते हैं। साँझी कला ब्रज की अपनी विशेषता है।

संगीत का तो ब्रज अटूट भण्डार है। स्वामी हरिदास के अतिरिक्त, तानसेन, बैजू बावरा तथा गोपाल राम आदि प्रसिद्ध गायक हुए। इस काल में गोविन्द स्वामी, कृष्णदास तथा सूरदास आदि ऐसे कवि थे जो कविता के साथ संगीत के भी धुरंधर थे। १६वीं शती में ब्रज के संगीतज्ञों में ध्रुपद शैली का ही विशेष प्रचार था। शास्त्रीय-संगीत के अतिरिक्त ब्रज का लोक-संगीत इस जनपद की अपनी विशेषता है। तान, भजन तथा रसिया आदि ऐसे गायन हैं जिनका सम्बन्ध ब्रज के लोक-जीवन से है। यहाँ की तानें अपना एक विशेष स्थान रखती हैं। रसिया तो ब्रज के लोक-जीवन का प्राण है। संगीत के अतिरिक्त नृत्य, वाद्य और अभिनय-कला में भी ब्रज ने उन्नति की। अनेक प्रकार के वाद्य केवल ब्रज में ही प्रचलित हैं। ब्रज का रास स्वयं अपनी एक विशेषता है।
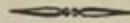
: ६ :

ब्रज-मण्डल का तीर्थ-परिचय[1]

ब्रज और ब्रज-यात्रा की परम्परा पर उक्त विवेचन के उपरान्त अब यह उचित होगा कि 'ब्रज-मण्डल' के ८४ कोस के यात्रा क्षेत्र में स्थित तीर्थों का भी अलग-अलग उल्लेख कर दिया जाय। अतः इस अध्याय में हम यात्रा-मार्ग तथा उसके निकटवर्ती तीर्थों का संक्षिप्त परिचय उपस्थित कर रहे हैं।

मथुरा

मथुरा भारतवर्ष की सब से प्राचीनतम नगरियों में से एक रही है। अतीत में यह साहित्य, दर्शन, कला और व्यवसाय का केन्द्र थी और शूरसेन-जनपद की राजधानी होने का इसे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मथुरा का वर्णन जगह-जगह पर यथेष्ट रूप में हो चुकने के कारण अब यहाँ पर उसके बारे में अधिक कुछ न लिख कर हम केवल वर्तमान मथुरा का ही संक्षिप्त परिचय देते हैं।

मथुरा नगर ब्रज का केन्द्र है और यह पवित्र यमुना नदी के तट पर बसा है। नगर के चारों ओर मिट्टी की एक चौड़ी नगर दीवाल थी, जिसके भग्नावशेष अब भी दिखाई पड़ते हैं, इसे 'धूल-कोट' कहते हैं। इसके बाहर चल कर नगर की परिक्रमा दी जाती है। जो 'पंचकोसी' परिक्रमा कहलाती है। यह परिक्रमा प्रत्येक एकादशी, पूर्णिमा तथा अमावस्या को लगती है। देवोत्थानी एकादशी (कातिक शु० ११) को लोग मथुरा के साथ वृन्दावन की भी परिक्रमा करते हैं। अक्षय-नौमी (कातिक शु० ९) की परिक्रमा भी बड़े जन-समुदाय द्वारा लगाई जाती है। नगर परिक्रमा में सभी मुख्य स्थान, मंदिर, कुण्ड, तपोभूमि आदि आ जाते हैं।

मथुरा में वल्लभ सम्प्रदाय का द्वारकाधीश का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। यह शहर के मध्य में असकुण्डा बाजार में स्थित है। यहाँ बराबर उत्सव होते हैं। श्रावण में झूला तथा जन्माष्टमी के अवसर पर विशेष रूप से आयोजन किए जाते हैं।

मथुरा के अन्य बड़े मन्दिर गोवर्द्धन नाथ, दाऊ जी, मदन मोहन, बराह जी, श्री राम मन्दिर, दीर्घ विष्णु, भैरव नाथ, महा विद्या, कंकाली, चामुण्डा आदि हैं। इनके अतिरिक्त राधा-कृष्ण, गोपीनाथ, वीर भद्रेश्वर, किशोरी रमण, एक देह दो प्राण,

---

१. प्रस्तुत लेख सर्व श्री बाल मुकुन्द चतुर्वेदी, रामेश्वर दयाल उपाध्याय, कृष्ण गोपाल चतुर्वेदी, श्याम सुन्दर चतुर्वेदी, विट्ठल नाथ चतुर्वेदी, कृष्ण गोपाल, ब्रजेश तथा बाबा कृष्ण दास जी (कुसुम सरोवर) द्वारा प्रेषित सामग्री पर आधारित है।

मथुरा में भगवान द्वारकाधीश

श्री विश्राम घाट, मथुरा
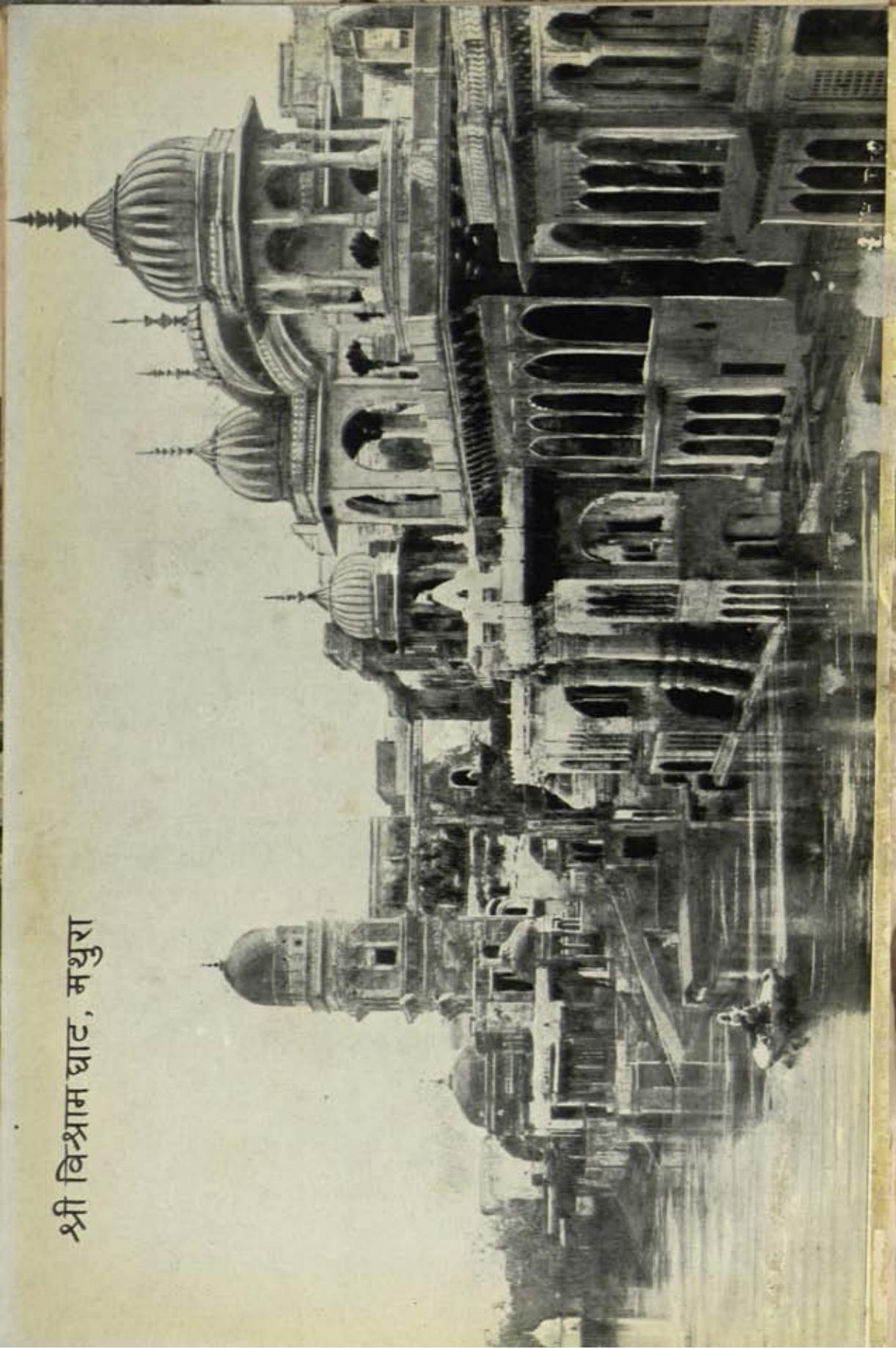
देवकी नन्दन, श्री नाथ, मथुरा नाथ जी तथा पद्मनाभ के मन्दिर भी दर्शनीय हैं, मथुरा में शिव जी के चार प्रधान मन्दिर हैं— रंगेश्वर, पिप्लेश्वर, गोकरणेश्वर तथा भूतेश्वर। मथुरा का प्रधान घाट विश्राम घाट शहर के बीचों-बीच स्थित है। यहाँ प्रातः-सायँ यमुना जी की आरती का दृश्य बड़ा सुहावना होता है। मथुरा के अन्य ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक प्रमुख स्थान ये हैं—

श्री कृष्ण जन्मभूमि—यह स्थान कटरा केशवदेव या केशवपुरा मुहल्ला में है। यहाँ समय-समय पर भारतीय शासकों एवं जनता ने अपने पूज्य केशव की महानता के अनुरूप विशाल मन्दिर खड़े किये। अन्तिम मन्दिर ओरछा के राजा वीरसिंह देव ने सत्रहवीं शताब्दी में बनाया, जिसकी टूटी-फूटी चौकी और इमारती पत्थरों के कुछ टुकड़े मात्र इस समय बचे हैं।

पोतरा कुण्ड—यह चौकोर विशाल कुण्ड जन्म-स्थान के समीप है। घने पेड़ों से आच्छादित कुण्ड का दृश्य आकर्षक है। भग्न दीवालों पर अब भी कहीं-कहीं चित्रकारी दिखाई देती है।

कंस किला—यह किला यमुना तट पर स्वामी घाट के उत्तर में है। इसे अकबर के समकालीन (जयपुर) के राजा मानसिंह ने बनवाया था। उनके वंशज सवाई जयसिंह ने यहाँ ज्योतिष की वेधशाला बनवाई, जो नष्ट हो गई है।

सती बुर्ज—५५ फुट ऊँचा यह चौखण्डा बुर्ज विश्राम घाट के समीप बना है। इस स्थान पर जयपुर के राजा विहारमल की रानी सती हुई थीं। उनके बेटे भगवान दास ने इस घटना की स्मृति में यह बुर्ज बनवाया। औरंगजेब ने इसके ऊपर का शिखर तुड़वा दिया।

शिवताल—यह रमणीक सरोवर शहर के दक्षिण-पश्चिम में दिल्ली तथा वृन्दावन जाने वाली रेलवे लाइनों के बीच में है। इसे १८०७ ई० में बनारस के राजा पटनीमल ने बनवाया था।

पुरातत्त्व संग्रहालय—यह इमारत भगतसिंह पार्क में है। इसमें ब्रज के विभिन्न भागों से प्राप्त पुरानी मूर्त्तियाँ आदि प्रदर्शित हैं, जिन्हें देख कर ब्रज की पुरानी कला, धार्मिक भावना, वेष-भूषा आदि का पता चलता है।

गायत्री तपोभूमि—यहाँ पर गायत्री माता का मन्दिर हाल ही में स्थापित हुआ है और गत वर्ष यहाँ गायत्री महायज्ञ का आयोजन किया गया था।

गीता मन्दिर—मथुरा से लगभग तीन मील दूर वृन्दावन मार्ग पर, इस नवीन मन्दिर का निर्माण हुआ है। चक्रधारी श्री कृष्ण के दर्शन हैं। मन्दिर के प्रांगण में गीता स्तम्भ है जिस पर सम्पूर्ण गीता उत्कीर्ण है। मन्दिर की दीवारें अनेकों वाक्यामृत एवं कलापूर्ण चित्रों से सुसज्जित हैं। गीता मन्दिर से आगे राजा महेन्द्र प्रताप जी द्वारा स्थापित प्रेम महाविद्यालय एवं 'हासानन्द-गोचर-भूमि' उल्लेखनीय हैं।

२. मधुवन

"तत्ताल गच्छ भद्रं ते, यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र, सानिध्यं नित्यदाहरेः॥" —भा० च० ८।४२

यह स्थल वर्त्तमान मथुरा से लगभग ४ मील दूर नैऋतकोण दिशा में स्थित है। मधुवन की गणना ब्रज के बारह वनों में सर्व प्रथम की जाती है। किसी समय जमुना का प्रवाह यहाँ होकर प्रवाहित था और यह स्थल बहुत श्री-सम्पन्न था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार 'मधु' द्वारा स्थापित प्राचीन 'मधुरा पुरी' (मथुरा) यही स्थल है। मधुवन को राजा उत्तानपात के पुत्र बालक 'ध्रुव' की तपस्या-भूमि भी कहा जाता है।

मधुवन भगवान् श्री कृष्ण की गौ-चारण-लीला की भूमि माना जाता है। वैशाख पूर्णिमा को यहाँ भगवान् ने गोपिकाओं के साथ रास-लीला भी की थी, ऐसा उल्लेख गर्ग संहिता में हुआ है। कहा जाता है कि यहाँ बल्देव जी ने मधु-पान करके उन्मत्त भाव से नृत्य किया था।

वर्त्तमान मधुवन एक छोटा सा गाँव है जिसका पुरातत्त्व और पौराणिक दृष्टि से अधिक महत्त्व है। यहाँ के दर्शनीय स्थलों में ध्रुव-टीला, चतुर्भुजराय जी (मधुवनियाँ ठाकुर) का मन्दिर, कृष्ण कुण्ड, (मधु कुण्ड), लवणासुर की गुफा तथा महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक उल्लेखनीय हैं। भाद्रपद कृष्णा एकादशी को मधुवन में प्रतिवर्ष मेला लगता है और इस वन की परिक्रमा की जाती है।

तालवन

"अथ तालाह्वयं देवि, द्वितीयं वन मुत्तमम्।
यत्र स्नातो नरो भक्तया कृतकृत्यः प्रजायते॥"—नारद पु० ७६।७

मथुरा से दक्षिण और मधुवन से नैऋतकोण में लगभग ३ मील की दूरी पर तालवन स्थित है। यह वन भी ब्रज के १२ वनों में से है और भगवान् बलराम ने कंस द्वारा भेजे गये 'धेनुकासुर' का यहीं वध किया था, ऐसा कहा जाता है। यहाँ बल्देव जी का मन्दिर और 'बलभद्र-कुण्ड' है। इस कुण्ड को ब्रज-भक्ति विलास में 'संकर्षण-कुण्ड' कहा गया है। आजकल इस स्थल को 'तारसी' गाँव भी कहते हैं।

गौ-चारण के समय एक बार भगवान ने अपनी भूखी सखा-मण्डली को ताल-वन के सुस्वाद फल खिलाकर तृप्त किया था ऐसा ब्रह्मवैवर्त्त पुराणकार का कथन है।[1]

कुमुदवन

"गिरधर हलधर नेह अति, लिये गोपाल समाज।
हार बनाबत कुमुद के, देखि 'कुमुदबन' आज॥" —जगत नन्द

कुमुदवन जिसे अब कुदरवन कहा जाने लगा है, तालवन से लगभग २ मील पश्चिम में स्थित है। किसी समय यहाँ के सरोवर में ऐसे सुन्दर कमल खिलते थे जिनकी ख्याति के कारण ही इस स्थल का नाम 'कुमोदवन' हो गया। यहाँ के सरोवर

---

१. एकया राधिकानाथो, बलेन सह बालकैः।
जगाम तत्तालवनं परिपक्व फलान्वितम्॥ —ब्रह्मवैवर्त कृ० ज० खं० २२।१

को यद्यपि अब 'विहार कुण्ड' कहा जाता है परन्तु नारायण भट्ट जी ने उसका उल्लेख 'ब्रजभक्ति विलास' में 'पद्मकुण्ड' के नाम से ही किया है।[1]

कुमुदवन प्राचीन तपोभूमि है और यहाँ किसी युग में कपिल मुनि ने भी तपस्या की थी और भगवान् वाराह की मूर्त्ति स्थापित की थी, ऐसा वाराह पुराण में उल्लेख है।[2] भगवान् कृष्ण की लीला-भूमि की दृष्टि से कुमुदवन ब्रज के १२ वनों में से है और यहाँ भगवान् ने रासोत्सव के अवसर पर श्री हस्त से राधिका जी का शृंगार किया था—

"ततः कुमुद्वनं प्राप्तो लतावृन्द मनोहरं।
भ्रमरध्वनि संयुक्तं चक्रे रासं सखी जनैः॥
राधा तत्रैव शृंगारं, श्री कृष्णस्य चकारह।
पुष्पैर्नानाविधं दिव्यैः पश्यन्तीनाम्बुजौकसाम्॥"—गर्ग० सं० १७।२६, ३०

कुमुदवन के वर्त्तमान स्थलों में कपिलदेव जी का मन्दिर, कुण्ड और महाप्रभु जी व गुसाईं जी की बैठक उल्लेखनीय हैं।

अंबिकावन

यह स्थल मथुरा से पश्चिम दिशा में लगभग २ मील है। कहा जाता है कि यहाँ होकर किसी युग में सरस्वती प्रवाहित होती थीं। आजकल यहाँ 'अंबिका देवी' तथा महादेव जी का मन्दिर भर है। कहा जाता है कि नन्दराय जी का पाँव पकड़ने वाले अजगर को शाप-मुक्त करके भगवान् श्री कृष्ण ने उसे यहीं सुदर्शन विद्याधर की पूर्व योनि प्रदान की थी। यह स्थल यात्रा-मार्ग में नहीं आता।

दतिहा

इस स्थल को कुछ लोग 'दतिया' भी कहते हैं। यह मथुरा से लगभग ६ मील पश्चिम में है। कहा जाता है कि यहाँ भगवान् कृष्ण ने 'दंतवक्र' का वध किया था। पद्म पुराण से ज्ञात होता है कि शिशुपाल-वध के अनन्तर द्वारका से भगवान् श्री कृष्ण यहाँ पधारे थे और यमुना पार करके ब्रजवासियों से मिले थे। यहाँ महादेव जी का एक चतुर्भुजी विग्रह दर्शनीय है।

गरुड़-गोविन्द (छटीकरा)

"लागत मोकों नीक अति, राज करौ सुख इंद।
देखौ गाम छटीकरा, जहाँ गरुड़-गोविन्द॥"—जगतनन्द

यह मन्दिर मथुरा से पश्चिम वायुकोण में लगभग ५ मील है। इस मन्दिर के सम्बन्ध में ब्रज में एक कहावत प्रसिद्ध है कि "आठ हाथ को मन्दिर और बाहर हाथ को ठाकुर" इस मन्दिर में भगवान् गोविन्द की गरुड़ पर आसीन १२ भुजी मूर्त्ति है। इस देव-विग्रह की ब्रज में बड़ी मान्यता है, और मांगलिक अवसरों पर दूर-

---

१. इन्द्रादिदेवगंधर्वैराकीर्ण विमलार्थिने।
पद्म कुण्डाय ते तुभ्यं नानासौख्य प्रदायिने।—ब्रज-भक्ति विलास

२. मनसा निर्मितातेन, वाराही प्रतिमा शुभा।
कपिलोध्यायते नित्य, मर्चतिस्म दिने दिने॥

दूर से ब्रजवासी आकर यहाँ दर्शन करते हैं और मनौती मानते हैं। कहा जाता है कि छटीकरा गाँव जिसके निकट 'गरुड़-गोविन्द' जी का यह मन्दिर गोविन्द कुण्ड के तट पर बना हुआ है कुछ समय नन्दराय जी की निवास-भूमि रहा है। कंस के भय से गोकुल त्यागने के बाद नन्द जी ने अपने सकटों (गाड़ाओं) को अर्द्ध-चन्द्राकार घेर कर यहाँ वास किया था। इस गाँव का पुराना नाम 'सट्टीकरा' कहा जाता है।

सतोहा (शान्तनु कुण्ड)

"मया तत्र तपस्याप्तं, पुत्रार्थं तु वसुन्धरे।
देवकी गर्भ संभूतेन, वसुदेव गृहे शुभे॥" —म० भा० ६।४४

यह गाँव मथुरा-गोवर्द्धन मार्ग पर, मथुरा से लगभग ४ मील पश्चिम में है। कहा जाता है कि यहाँ महाराज शान्तनु ने सन्तान की कामना से सूर्य देव की उपासना करके अपना अभीष्ट प्राप्त किया था। आज भी पुत्र-कामना के लिए यहाँ के कुण्ड में स्नान करने तथा मनौती मानने, दूर-दूर से ब्रजवासी आते हैं और यहाँ भाद्रपद शुक्ला ७ को मेला लगता है। कहा जाता है कि यहाँ स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने भी योग्य पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से तप किया था।

वर्त्तमान में सतोहा एक छोटा सा गाँव है, जहाँ 'शान्तनु कुण्ड' के अतिरिक्त राजा शान्तनु, गिरधारी जी तथा बल्देव जी के मन्दिर और गुसाईं जी की बैठक है। मधुवन से शान्तनु कुण्ड आने पर मार्ग में 'गिरधर पुर' गाँव भी पड़ता है, जहाँ चामुण्डा देवी का मन्दिर है। इसे चर्चिका देवी भी कहा जाता है। यह ब्रज की लोक-देवी है।

गणेसरा

"नाम्ना गन्धर्वकुंडन्तु, तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नातो नरो देवि, गन्धर्वैः सह मोदते॥"

यह स्थान शान्तनु कुण्ड से ईशानकोण में लगभग १ मील है। इस गाँव का प्राचीन नाम 'घंगेश्वरा' था, इससे प्रतीत होता है कि किसी समय यहाँ सुगंधित पुष्पावली का आधिक्य रहा होगा और भगवान् ब्रजराज के श्री अंगों में वह सुशोभित होती होगी। यहाँ 'गन्धर्व कुण्ड' नाम का एक कुण्ड भी है। इसी के पास एक दूसरा गाँव 'खेंचरी' है। वहाँ भी एक कुण्ड है। कहा जाता है कि 'खेंचरी' गाँव पूतना का गाँव है, जिसने भगवान् को अपने स्तनों का विष-मिश्रित दुग्ध पिलाकर भी उनसे माता की सी सद्गति प्राप्त की थी।

बहुलावन (वाटी ग्राम)

"गाय चरावत कृष्ण जू, तिन में बहुला गाय।
भयौ सु ताके नाम सों, बहुलाबन सरसाय॥" —जगतनन्द

यह स्थल मथुरा से साढ़े तीन कोस दूर है। कहा जाता है कि यहाँ बहुला नाम की एक गाय को सिंह ने घेर लिया था और उसका वध करना चाहा था, परन्तु गाय ने अपने बछड़े को दूध पिला देने का अवसर देने की सिंह से प्रार्थना की। सिंह

ने गाय को चले जाने दिया। गाय अपने वचन के अनुसार अपने बछड़े को दूध पिला कर लौट आयी। सिंह गाय के इस दृढ़ व्रत से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उसे छोड़ दिया। इस विवरण से ज्ञात होता है कि किसी समय इस वन में हिंस्र पशु निवास करते थे।

बहुलावन की गणना ब्रज के द्वादश वनों में हैं। गर्ग संहिता के अनुसार यहाँ भगवान् श्री कृष्ण ने वंशी में मेघ मल्हार राग बजा कर वर्षा कराई थी—

"प्रययो बहुला वनं लता जालं समन्वितम्।
तत्र स्वेद समायुक्तं, वीक्ष्य सर्वं सखी जनम्॥
रागं तु मेघ मल्लारं जगौ वंशीधरः स्वयम्।
सद्यस्त त्रं ववृषु मेघा अंबुकणांस्तया॥" —गर्ग०, वृ० १९।२५।१७।

आजकल बहुलावन ग्राम 'बाटी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें 'बलराम कुण्ड' तथा 'मान सरोवर' नामक दो वृहत तालाब हैं। 'मान सरोवर' के विषय में यह विश्वास किया जाता है, कि उसमें स्नान करने से जीवों को मनोवांछित योनि प्राप्त होती है। गाँव में 'बहुला-बिहारी' जी का प्राचीन मन्दिर है तथा बहुला गौ और सिंह के दर्शन हैं। यहाँ महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक भी है।

रार

बहुलावन अर्थात् 'बाटी' के पास ही एक अन्य ग्राम है 'रार'। प्रायः रार-बाटी साथ-साथ ही उच्चरित होते हैं। रार का शब्दार्थ 'झगड़ा' होता है। कहा जाता है कि गौ और 'सिंह' की 'रार' (झगड़ा) यहाँ समाप्त हुई थी, अतः इसका नाम 'रार' पड़ा। यहाँ 'देवकी कुण्ड', 'बलभद्र कुण्ड' और बल्देव जी की गौर वर्ण मूर्ति है। इस गाँव के पास एक प्राचीन 'कदम खण्डी' भी है।[1]

मयूर ग्राम

यह स्थल बाटी से लगभग २ मील नैऋत्यकोण में स्थित है। कहते हैं किसी समय यहाँ मयूरों (मोरों) का आधिक्य था इसी से यह नाम पड़ा। यहाँ 'मयूर कुण्ड' है और छोटे महावीर जी के दर्शन हैं। वर्त्तमान नाम 'मोरा' है।

तोषवन

यह ग्राम बाटी से नैऋत्य दक्षिण में लगभग ढाई मील दूर स्थित है। भगवान् के प्रिय सखा 'तोष' का यह स्थल है। इसी सखा से भगवान् ने नृत्य की शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ 'तोष कुण्ड' नामक तालाब है।

यक्षधन गाँव

वर्तमान नाम जिखिन गाँव है जो तोष गाँव से लगभग पश्चिम-दक्षिण में लगभग चार मील दूर है। कहा जाता है कि यहाँ सौराष्ट्र के यक्षधन नामक धनुर्धर नरेश ने तपस्या की थी और बलराम जी को प्रसन्न किया था। यहाँ रेवती जी व बलभद्र जी के कुण्ड तथा बल्देव जी का मन्दिर है।

---

१. "बहुलावन के पास है, कदमखण्डि सुख रूप।
बन बिहार लीला करें, गोपी गोकुल-भूप॥" —अज्ञात

जसुमति (जसोंदी)

यह गाँव रार-बाटी से लगभग तीन मील नैऋत्यकोण में स्थित है। यहाँ जसुमती नामक, भगवान् कृष्ण की एक सखी ने सूर्य की आराधना की थी, ऐसी अनुश्रुति है कि कहा जाता है। माता जसोदा ने भी कृष्ण जैसा पुत्र पाने की इच्छा से यहीं, सूर्योपासना की थी। इस ग्राम में 'सूर्य कुण्ड' है।

बसति (बसोंती)

यह ग्राम जसोंदी के निकट ही है और भगवान् कृष्ण की एक प्रिय सखी वसुमति का स्थल है। कहा जाता है कि उक्त सखी ने बसन्त-पंचमी के शुभ दिन, भगवान् को यहाँ पधराया था। यहाँ 'बसन्त कुण्ड' है और 'राज कदम्ब' वृक्ष में मुकुट का चिन्ह बतलाया जाता है। लोक-विश्वास है कि यहाँ वृषभानु जी ने भी कुछ समय निवास किया था।

अरिगृह (अड़ींग गाँव)

"तथापि रभसांस्तास्तु, संपत्तान रोहिणी सुतः।
अहन्यारि घमुध्यम्य, पशूनिव मृगाधिपः॥" —भाग० द० ४४।४१

तोष ग्राम से अग्निकोण में लगभग ४ मील दूर यह गाँव मथुरा-गोवर्धन मार्ग पर स्थित है। यह गाँव बल्देव जी से विशेष रूप से सम्बन्धित है। कहा जाता है कि कंस-वध के उपरान्त, भगवान् बल्देव ने कंस के समर्थक उसके आठ भाइयों को यहीं घेर कर, पराक्रमपूर्वक मारा था। वल्लभाचार्य जी के अनुसार यहाँ पर भगवान् कृष्ण ने अड़ कर गोपिकाओं से दान प्राप्त किया था। इस ग्राम में 'किलोल-बिहारी' जी का मन्दिर और 'किलोल कुण्ड' है।

अठारहवीं शताब्दी में, इस स्थान पर भरतपुर-नरेशों का मराठों के साथ एक भयंकर युद्ध भी हुआ था जिसमें कई हजार जाट और गूजर काम आये।

अरौठ

"आरुठ कौ संहार कर, कृष्ण देव बल जोर।
न्हावे कौं प्रभुजू करौ, कृष्ण-कुण्ड तिहि ठौर॥" —जगतनन्द

यहाँ अरिष्ठासुर का संहार किया गया था अतः इसका नाम आरिट ग्राम पड़ा। इसी घटना के कारण 'राधा कुण्ड' का आविर्भाव हुआ।

मुखराई

इस स्थल का नाम कुछ व्यक्ति प्राचीन 'मोक्षराज' तीर्थ कहते हैं। यह स्थल राधा कुण्ड से दक्षिण में लगभग १ मील है। इस गाँव को 'मुखरा' नाम के किसी गोप का निवास-स्थल बतलाया जाता है जो नारद जी के उपदेश से मुक्त हुआ था। कुछ व्यक्ति इस स्थल को राधिका रानी की मातामही 'मुखरा' जी का स्थान बतलाते हैं। 'यहाँ मुखरा देवी' का मन्दिर, एक कुण्ड और एक 'बजनी शिला' है।

रत्न सिंहासन

यह स्थल गोवर्धन से ईशानकोण में और कुसुम सरोवर के दक्षिण में है। यह भगवान् कृष्ण के गौ-चारण का स्थल है[1] जहाँ बैठे-बैठे वे अपने सखाओं का मार्ग-दर्शन करते थे। कहा जाता है कि यह भगवान् कृष्ण की फाग-लीला से भी सम्बन्धित है। सम्भवतः यहीं 'शंखचूड़' दैत्य का बध हुआ था। चैतन्य महाप्रभु ने भी गोवर्धन आकर इस स्थल पर विश्राम किया था ऐसा बतलाया जाता है।

राधा कुण्ड

"आदौ स्नानं तु राधायाः कुण्डे सवार्थदायकम्।
ततस्तु कृष्ण कुण्डे तु सर्व पाप प्रणाशनम्॥
विमलौ सर्व पापघ्नौ ब्रह्म-हत्या विघातकौ।
वृष हत्यादि पापानि प्रणश्यन्ति प्रभावतः॥
धन धान्य सुतोत्पत्तिश्चिराय सुख माप्नुयात्।"—ब्रज-भक्ति विलास

राधा कुण्ड मुखराई गाँव से उत्तर में एक मील की दूरी पर है। गोस्वामीवर्य श्री यदुनाथ जी के सुपुत्र श्री वल्लभ जी महाराज ने अपने "ब्रज-कमल भावना" नामक निबन्ध में गिरिराज के समीपवर्ती स्थलों का शोड़ष दल कमल रूप में वर्णन किया है जिसमें श्री राधा कुण्ड को प्रथम दल निरूपित किया गया है। राधा कुण्ड को 'श्री कुण्ड' भी कहा जाता है। इसके आस-पास के वन का नाम 'अरिष्ट बन' है। कहा जाता है कि कंस के भेजे हुए 'अरिष्टासुर' नामक वृष देहधारी असुर को मारने के कारण गोपों ने कृष्ण को वृष-हत्या का दोष लगाया और इस लोक-लांछना से प्रभावित होकर श्री राधा जी ने भी उनसे संसर्ग विच्छेद कर दिया—

"ततस्तु राधिकात्यक्तो ललितामोहन स्तदा।
अस्माकं नैव संसर्गो वृष हत्या समन्वितः॥"—ब्रज-भक्ति विलास

इससे व्याकुल होकर कृष्ण ने एक दिन राधा जी को राह में रोक लिया और हाथ पकड़ कर खड़े हो गये, तब अपनी विवशता देख राधा जी ने वहाँ दो युगल कुण्ड प्रगट किये जिनमें स्नान करके भगवान् दोष-मुक्त हुए।

राधा-कृष्ण कुण्ड बड़े ही रमणीक हैं किन्तु गिरिराज पर्वत का निचला भू-भाग होने के कारण यहाँ जमीन में गीलापन, मच्छरों और मलेरिया का प्रकोप विशेष रहता है। प्रायः वर्षा अधिक होने पर यहाँ चारों ओर जल भी पर्याप्त मात्रा में भर जाता है। श्री नारायण भट्ट गोस्वामी के अनुसार राधा कुण्ड कृष्ण जी का रास-स्थल भी है।[2]

यहाँ के प्रधान तीर्थों में—(१) कंकण कुण्ड (यह राधा कुण्ड के अन्दर जल में है), (२) वज्रनाभ कुण्ड (यह कृष्ण कुण्ड के अन्दर जल में है), (३) अरिष्टवन,

---

१. "गाय चरावत कृष्ण जू देखौ उत्तम ठाम।
लक्ष्मीनाथ विराजहीं, मधि सिंहासन गाम॥"—जगतनन्द।

२. यत्र राधा करोद्रासं कृष्णेन सह विह्वला।
सप्त वर्ष स्वरूपेण सखिभिर्वृद्धा सुखम्॥"—श्री नारायण भट्ट गोस्वामी

(४) ललिता कुण्ड, (५) विशाखा कुण्ड, (६) गोपी कूप, (७) गिरिराज जी की जिह्वा, (८) राज कदम्ब में मुकुट का चिन्ह, (६) हिंडोला वट और (१०) पाँचों पाण्डवों के वृक्ष प्रसिद्ध हैं।

दर्शनीय देव विग्रहों में यहाँ के ठाकुर गोविन्द जी और राधा वल्लभ जी हैं। यहाँ श्री वल्लभाचार्य जी की बैठक भी कुण्ड के ऊपर तथा चैतन्य महाप्रभु का स्थल 'तमाल लता' नाम से प्रसिद्ध है।

जिस प्रकार जतीपुरा भक्ति-युग में वल्लभ सम्प्रदाय का केन्द्र था उसी के समानान्तर बंगाली साधुओं ने राधा कुण्ड को विशेष महत्त्व दिया और चैतन्य महाप्रभु के साथियों और अनुयायियों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण स्थल राधा कुण्ड में हैं। इन स्थलों में नित्यानन्द प्रभु की पत्नी श्रीमती जाह्नवी माता ठकुरानी जी का स्थान जाह्नवी घाट, रघुनाथ दास गोस्वामी जी की भजन कुटी व समाधि, श्री जीव गोस्वामी की बैठक, 'तमाल लता', तथा नारायण भट्ट जी द्वारा निर्मित श्री कृष्ण दास ब्रह्मचारी की समाधि और श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी की भजन कुटी उल्लेखनीय हैं। गाँव से बाहर श्री राजेन्द्र गोस्वामी की समाधि है जिन्होंने भगवान् कृष्ण के विरह में प्राण त्याग दिये थे।

पर्व—राधा कुण्ड में कातिक कृष्णा ८ को स्नान का विशेष महात्म्य है—इस दिन रात्रि के १२ बजे इन दोनों कुण्डों में स्नान करने को हजारों नर-नारी आते हैं। ऐसी मान्यता है कि इस रात्रि में इन दोनों कुण्डों में दूध की धारा प्रकट होती है और इस पवित्र काल में यहाँ स्नान करने से स्त्री-पुरुषों के अनेकों उपसर्ग-जन्य अपुत्रा, मृत वत्सा, प्रमाद आदि दोष दर हो जाते हैं।

वर्तमान समय में, राधा कुण्ड एक उन्नतिशील टाउन एरिया है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार इस कस्बे की जनसंख्या २,१०२ थी।

माल्याहारि कुण्ड

यह स्थल राधा कुण्ड से पश्चिम में है। दास गोस्वामी ने अपने 'मुक्ता-चरित' ग्रन्थ में यहाँ की गई राधा-कृष्ण की लीला का बड़ा सरस वर्णन किया है। दीपोत्सव के अवसर पर शृंगार के लिए जब राधिका रानी ने भगवान् को मोती प्रदान नहीं किये तो भगवान् ने इस स्थान पर मोतियों की खेती करके उन्हें उगाया था, ऐसा कहा जाता है।

कुसुम सरोवर

"यत्रैव ललिताद्यास्ताः सख्यो गोप्यस्तथा खिलाः।
रचयेयुर्मनोर्यैस्तु रम्यं पुष्प वनं शुभम् ॥" —पद्मपुराण

कुसुमसरोवर को 'पुष्पवन' भी कहा गया है, यहाँ पुष्प-चयन करके राधा जी की सखियों ने युगलबिहारी भगवान् का शृंगार किया है।

कुसुमसरोवर ब्रज का एक बहुत ही विशाल है और स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है। इसके चारों ओर सुन्दर लता वृक्ष और घाट छतरी बुर्ज इत्यादि

की रम्यता दर्शनीय है। भागवत में इस वन का वर्णन बड़ा ही प्रभावोत्पादक है[1]।

प्राचीन ग्रन्थों में कुसुमवन को वृन्दावन भी कहा गया है। ऐसा वर्णन है कि यहाँ कृष्ण जी के पोते वज्रनाभ जी ने महात्मा उद्धव के उपदेश से एक महीने तक भागवत की कथा और हरि-कीर्तन का महान् आयोजन किया था जिसमें भक्ति-रस की धारा प्रवाह के साथ भगवान् कृष्ण साक्षात् रूप से लीला करते इस वन-स्थली में दृष्टिगोचर हुए थे। यहाँ के महात्म्य के विषय में लिखा है—

"यत्र स्थान समुद्भूतः पुष्प रम्यर्चनं हरे।
कुरुते सर्वदा सौख्यं नित्यमेव वरं लभेत् ॥" — स्कन्द पुराण

कुसुम सरोवर के निकट ही 'नारद कुण्ड' और 'उद्धव कुण्ड' नामक महत्वपूर्ण कुण्ड हैं। यहाँ वीर भरतपुर नरेशों की छत्री भी बड़ी आकर्षक और वास्तु-कला की सुन्दर कृति है। कहा जाता है कि महाराजा जवाहर सिंह ने 'दिल्ली-विजय' में जो धन प्राप्त किया उसका यहाँ सदुपयोग किया गया था।

भरतपुर के जाट नरेश जवाहर सिंह ने जब दिल्ली की लूट की उस समय के सारे धन को उन्होंने ब्रज में लगा दिया। दीग के भवन तथा कुसुम सरोवर उसी द्रव्य से निर्मित जाट शाही पराक्रम के कीर्ति-चिह्न हैं। इसमें से कुसुम सरोवर की छत्री जो जाट राजा सूरज मल की स्मृति में निर्मित की गई है, ब्रज की स्थापत्य कला की एक अनमोल निधि है।

गोवर्धन

कुसुम सरोवर से ग्वाल पोखरा जिसका शास्त्रीय नाम 'ग्वाल पुष्करिणी' है होकर गोवर्धन है, जो गिरिराज पर्वत के ऊपर बसा हुआ कस्बा है। इसकी जनसंख्या लगभग छः-सात हजार है। टाउन एरिया की प्रशासन-व्यवस्था है। पोस्ट आफिस, पुलिस स्टेशन तथा माध्यमिक स्तर तक शिक्षण-संस्थाओं आदि की सभी आधुनिक साज-सज्जाओं से परिपूर्ण है। यहाँ गिरिराज पर्वत जमीन के नीचे समाये हुए हैं और गाँव के बाहर ही उनके दर्शन पर्वत रूप में होते हैं तथा मानसी गंगा और दान घाटी के बीच में भी उनका कुछ स्वरूप देखा जा सकता है।

मानसी गंगा—मानसी गंगा गिरिराज पर्वत की गोद में बनाया गया एक विशाल जलाशय है जिसके चारों ओर पक्के घाट तथा गोवर्धन की बस्ती बसी हुई है। यहाँ आसाढ़ में मुड़िया पूनों तथा कातिक में दीप-मालिका का उत्सव होता है। मानसी गंगा कृष्ण के मन से प्रगट हुई है ऐसा शास्त्रकारों का मत है, दिवाली के दिन वह दुग्धमयी हो जाती है ऐसा भी ब्रज के लोगों का विश्वास है—

"गंगे दुग्ध मये देवि भगवन्मानसोद्भवे।
नमः कैवल्य रूपाद्ये मुक्ति दे मुक्ति भागिनी ॥" —ब्रज-भक्ति विलास

---

१. तन्माधवो वेणु मुदीरयन् वृतो,
गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्,
विहर्तु कामः कुसुमाकरं वनम् ॥ —श्री मद्भागवत स्कं० १० अ० १५ श्लोक २

गिरिराज—गोवर्धन के तीर्थों में—(१) ब्रह्मकुण्ड, (२) चक्रतीर्थ, (३) चक्रेश्वर शिव, (४) हरिदेव जी, (५) मनसा देवी, (६) लक्ष्मी नारायण जी, (७) गिरिराज जी का मंदिर, (८) दानघाटी, (९) दान घाटी के गिर्राज जी, (१०) चार कुण्ड (धर्मरोचन, पापमोचन, ऋणमोचन, गोरोचन) प्रसिद्ध हैं। गोवर्धन में ही मनसा देवी के निकट मानसी गंगा के तट पर किसी समय अष्टछाप के सुविख्यात कवि नन्ददास जी निवास किया करते थे।

ब्रज में गिरिराज जी और श्री यमुना जी की मान्यता विशेष है। कृष्णावतार के समय की ये दो वस्तुएँ ही प्रत्यक्ष प्रमाणित, परम पवित्र, भगवद्रूप और परम पूजनीय मानी जाती हैं।

श्री गिरिराज

गिरि गोवर्धन वही पर्वत है जिसे श्री कृष्ण ने इन्द्र की प्रलयकारी वर्षा से ब्रज को बचाने के लिए अँगुली पर धारण किया था। गिरि गोवर्धन को ही 'गिरिराज' पर्वत कहते हैं। भागवत के अनुसार इस पर्वत की पूजा के समय कृष्ण ने ही गिरिराज पर्वत पर प्रत्यक्ष देव रूप धारण कर पूजा ग्रहण की थी इसीलिये इस पर्वत को साक्षात् कृष्ण का ही रूप मान कर पूजा जाता है। भागवतकार कहते हैं—

"कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गो विश्रम्भणं गतः।
शैलो स्मीति ब्रुवन भूरि बलि मादद्वृहद्वपुः ॥"
—श्रीमद्भागवत स्कं० १०, अ० २४, श्लोक ३५

गिरिराज गोवर्धन के चमत्कारी प्रभाव का वर्णन करते हुए स्वयं श्री कृष्ण कहते हैं—

"एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः।
हन्ति ह्यस्मै नमस्यामो शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥" —१०।२४।३७

गिरिराज को ब्रज-मण्डल का 'छत्र' या रक्षक भी इसी कारण कहा गया है—

"गोवर्धन् बनाधीशं नायं बन्दे जगद्गुरुम्।
सप्ताब्द रूपिणं कृष्ण बनयात्रा शुभम् भवेत ॥" —कौशिकोपनिषद्

गोवर्धन ब्रज के समस्त वनों के अधिनायक देव हैं, वे ही जगद्गुरु श्री कृष्ण का रूप भी धारण करने वाले हैं, जो सात दिन तक स्थिर रहा था। उन्हीं की कृपा से ब्रज की 'वन-यात्रा' कल्याणकारी होती है। सन्त-शिरोमणि सूरदास जी के शब्दों में—

"गिरिवर श्याम की अनुहारि।
करत भोजन अति अधिकई सहस भुजा पसारि ॥
नन्द के कर गहैं ठाड़ौ यहै गिरि कौ रूप।
सखी ललिता राधिका सौं कहत यहै स्वरूप ॥
यहै कुण्डल यहै माला यहै पीत पिछोर।
शिखर शोभा श्याम की छबि श्याम छबि गिरि जोर ॥

नारि बदरौला रही वृषभान घर रखवारि।
तहाँ ते वह भौन अरपत लियौ भुजा पसारि॥
राधिका छबि देख भूली श्याम निरखी ताहि।
सूर प्रभु बस भई प्यारी चकोर लोचन चाहि॥"

गिरिराज पर्वत की परिक्रमा भी दी जाती है। हजारों श्रद्धालु यात्री प्रति-वर्ष गिरिराज की परिक्रमा देने आते हैं। खास कर अधिक पुरुषोत्तम मास में तथा प्रति मास की पूर्णिमा को गिरिराज की परिक्रमा जो सात कोस की है लगाई जाती है। इनमें से कोई-कोई दूध की धारा देते हुए एवं कोई दंडवत करते हुए भी इस पवित्र परिक्रमा का अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं।

गिरिराज की उत्पत्ति पुराणों के अनुसार द्रोणाचल पर्वत से है और ब्रज में उन्हें पुलस्त्य ऋषि लेकर आये हैं ऐसा 'गर्ग संहिता' के गिरिराज खण्ड में उल्लेख है। गिरिराज जी ने उनसे वचन लिया था कि वे जहाँ भी उन्हें रख देंगे वहाँ से फिर वे नहीं विचलित होंगे। वे उन्हें काशीपुरी ले जाना चाहते थे और मार्ग में ही ब्रज-भूमि के सौन्दर्य और कृष्णावतार की अपनी सेवाओं का स्मरण कर श्री गिरिराज ने प्रभु को स्मरण किया और उन्होंने मुनि को लघुशंका के वेग से आकुल कर दिया। मुनि ने सहसा गिरिराज को उनके वर्तमान स्थान पर रख दिया, जहाँ वे अभी तक स्थित हैं।

वाराह पुराण के अनुसार वानर राज हनुमान सेतुबन्ध के समय उत्तराखण्ड से इन्हें ला रहे थे उस समय "सेतु बँध चुका है जो पर्वत जहाँ लिये हों वहीं रख दें" ऐसी राम जी की आज्ञा सुनकर हनुमान ने गिरिराज पर्वत को ब्रज में ही छोड़ दिया, यथा—

"देवताकाश वाक्यैस्तु सेतु पूर्णस्तु जायते।
इति वाक्यं समाकर्ण्य प्रक्षिप्त अवनी तले॥" —वाराह पुराण

गिरिराज पर्वत के महात्म्य के विषय में लिखा है—

"गोवर्धन गिरिवरं लोकानभय दायक।
तस्य दर्शन मात्रेण मुक्तिभागी भवेन्नरः॥"—मथुरा ब्रज प्रकाश

कहते हैं इन्द्र के शाप से गिरिराज पर्वत एक तिल नित्य जमीन में धँस जाते हैं, और उनके लोप हो जाने पर इस पृथ्वी पर घोर कलियुग का साम्राज्य हो जायगा। श्री गिरिराज की परिक्रमा में आने वाले मुख्य स्थल तीर्थ और देवता निम्न प्रकार हैं—

मानसी गंगा— दानघाटी, लक्ष्मी नारायण मन्दिर, आन्यौर, संकर्षण कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, गोविन्द जी का मन्दिर, श्री नाथ जी, पूँछरी, पूँछरी का लौठा, नवल कुण्ड, अप्सरा कुण्ड, अप्सरा बिहारी, रामदास की गुफा, हूँका बल्देव, सुरभी कुण्ड, सुरभी कुण्ड का मन्दिर, जतीपुरा, और जान-अजान वृक्ष आदि, आदि ; और राधा-कुण्ड की परिक्रमा में उद्धव कुण्ड, नारद कुण्ड, उद्धव दर्शन, राधा-कृष्ण कुण्ड, कुसम सरोवर, दाऊ जी के दर्शन प्रसिद्ध हैं।

गोवर्धन ग्राम से एक मील दूरी पर 'यावक कुण्ड' है जिसका वर्तमान नाम 'महेन्द्र कुण्ड' है।

जमनावतौ

जमनावतौ अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कुंभन दास जी का गाँव है। यहाँ किसी समय यमुना की धारा गिरिराज पर्वत के समीप बहती थी जिसके प्रमाण स्वरूप अब भी कहीं-कहीं कुआँ आदि खोदने से यमुना की रेणुका निकल आती है।

जमुनावतौ ही अष्टछाप के दो महत्वपूर्ण महाकवि और निस्पृही भक्त कुंभन दास जी और उनके पुत्र चतुर्भुज दास की निवास-भूमि है, जिसके कारण यह साहित्यकारों के लिये एक महत्वपूर्ण तीर्थ माना जाना चाहिए। यहाँ कुंभन दास जी का "खिरक" "कुंभन तलाई" और श्यामा गाय की बैठक है। कहा जाता है कि इसी गाँव के एक पीपल के वृक्ष के नीचे जो आज भी विद्यमान है स्वयं श्री नाथ जी पधार कर कुंभन दास जी के साथ मनोविनोद किया करते थे।

इन्द्रध्वज वेदी

यह स्थान गोवर्धन की पूर्व दिशा में है। यहाँ नन्दराय इन्द्र की पूजा किया करते थे, परन्तु भगवान् श्री कृष्ण ने इन्द्र का मान-मर्दन करके गोवर्धन पूजा की थी। इन्द्रध्वज वेदी के पास ही 'ऋण-मोचन' और 'पाप-मोचन' कुण्ड हैं।

परासौली और चन्द्र सरोवर

यह ग्राम और सरोवर गोवर्धन से १। मील पूर्व में स्थित हैं। चन्द्र सरोवर अति सुन्दर पक्का बना हुआ सरोवर है। इसी के निकट की बस्ती का नाम परासौली गाँव है। वैष्णव ग्रन्थों के अनुसार यहाँ श्री कृष्ण ने महारास के उपक्रम में छः महीने की रात्रि का आविर्भाव कर लोकोत्तर आनन्ददायिनी नृत्य-क्रीड़ा की हैं। अष्ट पहल पक्का सुरम्य सरोवर इसी रास-रचना की स्मृति का चिह्न है। चन्द्र सरोवर के निकट ही शृंगार मन्दिर तथा रास-मण्डल हैं। दूसरी ओर बल्देव मन्दिर तथा संकर्षण कुण्ड है। यहाँ पर श्री नाथ जी का जलघड़ा और इन्द्र के औंधे नगाड़े पड़े बताये जाते हैं। यहाँ दो बड़े और भारी, दुन्दुभी के आकार के पत्थर हैं, जिन पर चोट देने से नगाड़ों की सी आवाज निकलती है। यहीं पर 'देवला कुण्ड' और 'मोह कुण्ड' हैं। यहाँ ब्रज साहित्य के सूर्य महात्मा सूर का निवास-स्थल भी है और उनके लीला-प्रवेश के स्थान पर ब्रज साहित्य मण्डल के प्रयत्न से यू० पी० सरकार द्वारा हाल में ही एक सूर-स्मारक बनाया गया है। महात्मा महाकवि सूरदास का काव्य-साधना स्थल होने के कारण यह स्थान साहित्यिक तीर्थ-स्थल भी है। यहाँ वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य एवं अन्य गोस्वामी महानुभावों की बैठकें उनकी स्मृति में बनाई हुई हैं।

परासौली का प्राचीन नाम परस्पर वन है,[1] यहाँ राधा-कृष्ण की परस्पर

---

१. डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'परासौली' पलाश+अवली का तद्भव रूप है। उनके अनुसार यहाँ कभी पलास वृक्षों का विशाल वन रहा होगा। —सम्पादक

प्रीति रास नृत्य में प्रगट हुई है, यथा—

"परस्परोद्भवा प्रीति राधा कृष्ण विहारिणे ॥"

पैंठागांव

परासौली के दक्षिण में दो मील दूर यह ग्राम है। कहा जाता है कि सखाओं ने भगवान् की परीक्षा लेनी चाही ताकि उन्हें विश्वास हो सके कि वे गिरिराज को उँगली पर धारण कर भी सकेंगे या नहीं, तब श्री कृष्ण ने एक कदम वृक्ष को हाथ से ऐंठ दिया। अब भी यहाँ ऐंठा कदम वृक्ष है और तदनुसार इसका नाम 'ऐंठा गाम' 'पैंठा गाम' पड़ गया। दूसरी किंवदन्ति यह भी है कि वसन्त रास के समय जब श्री कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये, तब गोपिकाओं सहित राधा जी उन्हें खोजने चलीं और अकस्मात वे सफल भी हो गईं। उस समय भगवान् चतुर्भुज स्वरूप में थे। किन्तु राधा जी के सम्मुख उन्हें अपना चतुर्भुज रूप त्यागना ही पड़ा और तब उनके दो हाथ संकुचित होकर शरीर में पैंठ गये। यह घटना इसी स्थल की है अतः इसका नाम 'पैंठा' पड़ गया।

यहाँ चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन हैं। तथा भगवान् श्री कृष्ण के बैठने की गुफा है। 'क्षीर-सागर', 'नारायण-सर' तथा 'बलभद्र कुण्ड' और 'लक्ष्मी कूप' है, जहाँ कि लक्ष्मी जी प्रभु के दर्शन हेतु ब्रज में पधारी थीं।

बछगांव

पैंठा के तीन मील दक्षिण में बछगाम या बड़गाम है। असुर द्वारा बछड़े चुराने की घटना यहीं घटी थी। अतः बछगांव नाम पड़ा। दर्शनीय स्थल है—'कनक सागर', 'सहस्र कुण्ड', 'राम कुण्ड', 'रावरी कुण्ड', 'माखन चोर ठाकुर' और 'वत्स विहारी ठाकुर।'

गौरी तीर्थ

यह स्थान आन्यौर के पूर्व में थोड़ी सी दूरी पर ही है। यहाँ पर 'नीप वृक्ष' और 'नीप कुण्ड' हैं। कहा जाता है कि यहाँ पर चन्द्रावली जी गौरी पूजा के बहाने आकर सखियों संहित श्री कृष्ण से मिलती थीं।

आन्यौर

"श्री गोवर्धन उद्धरन, खेलत ब्रज की खोर।
इन्द्र-गर्व कों दूरि करि, फिर चितवत आन्यौर ॥" —जगतनन्द

गोवर्धन ग्राम से दो मील दक्षिण, परिक्रमा के मार्ग में गिरिराज की तलहटी में, आन्यौर ग्राम बसा हुआ है। कहा जाता है कि जब भगवान् कृष्ण के उपदेशानुसार गोपी-गोपिकाओं ने इन्द्रदेव के निमित्त संग्रहीत द्रव्यों से गिरिराज की पूजा की, तो श्री कृष्ण गिरिराज रूप में प्रकट होकर समस्त भोजन-सामग्री को ग्रहण करने लगे, साथ ही कहते जाते थे "आन और, आनि और" अर्थात् ब्रज भक्तों से हाथ पसार कर सामग्री माँगी। अतः इस स्थल का नाम आन्यौर पड़ गया।

अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कुंभन दास जी का भी आन्यौर गाँव से घनिष्ट सम्बन्ध था। इसी गाँव में उनके खेत थे और यहीं राजा मानसिंह उनके दर्शनार्थ

आये थे, ऐसा वार्त्ता साहित्य में उल्लेख है। कुंभन दास जी ने अपना शरीर भी यहीं त्यागा था। यहाँ उस महाकवि की समाधि एक छोटे से चबूतरे के रूप में उपेक्षित और अरक्षित पड़ी है। यहाँ पास ही में 'गौरी कुण्ड' है और दही-कटोरा, टोपी, मोजा आदिक अनेक चिह्न गिरिराज के ऊपर देखने में आते हैं। यहाँ पर संकर्षण कुण्ड तथा बल्देव जी का मन्दिर है। यहीं पर 'बाजनी सिला' है जिस पर प्रहार करने से मधुर आवाज निकलती है।

अन्नकूट स्थान—आन्यौर में ही यह स्थान है। यहाँ पर अन्नों का कूट अर्थात् राशि पर्वताकार में रखा गया था; अतः इस स्थान का नाम 'अन्नकूट' पड़ा। यहाँ पर महाप्रभु वल्लभाचार्य के परम भक्त 'सद्दू पाण्डे' का घर है जिसमें महाप्रभु की बैठक और श्री कृष्ण के दही-कटोरा और कमल का चिह्न है।

गोविन्द कुण्ड

"सुरभी, सुरपति संग लिये, निरखि कृष्ण मुख इन्दु ।
कियौ राज अभिषेक तँह, भयौ कुण्ड गोविन्द ।।" —जगतनन्द

यहाँ इन्द्र ने अपराध-भय से, समस्त तीर्थों के जल तथा विविध द्रव्यों से सुरभी के द्वारा भगवान् श्री कृष्ण का अभिषेक करा कर 'गोविन्द' नाम रखा था। वही जल इस कुण्ड में आया अतः 'गोविन्द कुण्ड' नाम पड़ा। यहाँ ठाकुर जी के छाक खाने और खेलने का स्थान है। श्री राधा जी का "रास-चौंतरा" है। गोविन्द देव जी के दर्शन हैं। गिरिराज जी के ऊपर गोविन्द घाटी है जहाँ श्री आचार्य जी की गुप्त बैठक है। कहा जाता है कि वहाँ श्री स्वामिनी जी और ठाकुर जी के हस्ताक्षर हैं। यहाँ पर एक वृक्ष के नीचे गोपाल जी ने श्री माधवेन्द्र पुरी जी को गोप-बालक रूप में दर्शन दिये थे और उन्हें स्वप्न में अपने प्रागट्य का आदेश दिया था। श्री माधवेन्द्र जी ने ग्राम-वासियों की सहायता से गोपाल जी की मूर्त्ति धरती में से निकाली और गोपाल मन्दिर की स्थापना की। आजकल यह गोपाल जी नाथ द्वारे में विराजमान हैं।

अप्सरा कुण्ड

"आइ अप्सरा कुण्ड पै, सखन सहित हरिराय ।
गोपिन कौ गायन सुन्यों, मन में अति सुख पाय ।।" —जगतनन्द

गोविन्द कुण्ड के समीप ही 'अप्सरा कुण्ड' है। यहाँ गोपिकाओं की निकुंज थी। कहा जाता है कि जब भगवान् ने गोपिकाओं को नृत्य-गायन के हेतु बुलाया तब वे इन कलाओं में अकुशल थीं। 'अप्सरा कुण्ड' में स्नान करने के पश्चात् वे नृत्य एवं गायन में पारंगत हो गईं। यहीं पर राजा का बनवाया हुआ नवल कुण्ड है।

यह स्थान अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवि छीत स्वामी का भी वास-स्थान है।

पूँछरी

गोविन्द कुण्ड से कुछ ही फर्लांग की दूरी पर पूँछरी नामक स्थान है। यहाँ गिरिराज पर्वत का पिछला किनारा है जिसे 'पूँछरी' या 'पूँछड़ी' कहते हैं। ऐसा ब्रज-भक्तों का विश्वास है कि श्री गिरिराज जी गौ स्वरूप हैं—उनका मुख

जिह्वा के दर्शन राधा कुण्ड में तथा पूँछ पूँछरी गाँव में है। इसी स्थान पर मथुरा जिले की सीमा तथा उत्तर प्रदेश राज्य की सीमा भी समाप्त हो जाती है और राजस्थान राज्य की भूमि आरम्भ हो जाती है। इस प्रकार यह स्थल राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य का सीमावर्ती स्थान है। यहाँ सघन लता कुंज बड़ी ही मनोरम हैं तथा लता-कुंजों में ही श्री राधा बिहारी जी का दर्शन, नृसिंह भगवान् का दर्शन, और नवल अप्सरा बिहारी जी के दर्शन भी हैं। यहाँ नवल कुण्ड, अप्सरा कुण्ड के नाम से दो अत्यन्त शीतल जल वाले सुरम्य सरोवर हैं जहाँ सदैव मोर मधुर ध्वनि से शब्द किया करते हैं। कहा जाता है कि यहाँ गोवर्धन-पूजन के समय कृष्ण के नवल स्वरूप की छटा देखने को स्वर्ग से अप्सराओं का दल एकत्र हुआ था और उन्होंने कृष्ण के रूप पर मोहित हो 'नवल किशोर' नाम रख कर कृष्ण का यश गान किया था।

यहीं समीप ही में एक अति प्राचीन पहलवान जैसी मूर्ति है जिसे "पूँछरी का लौठा" कहा जाता है। पूँछरी का लौठा व्रज में बहुत प्रसिद्ध है। इसके विषय में एक अत्यन्त मनोरंजक लोक गीत है जो व्रज के गाँव-गाँव में गाया जाता है—

"धनि तोईयै पूँछरी के लौठा।
अन्न खाइ नहीं पानी पीवै, अरे तौऊ तूतौ परयौ है सिलौटा।
दूध न छोड़ै दहीऊ न छोड़ै, अरे तू तौ पी गयौ छाछ कठौता॥"

ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह देव-मूर्त्ति प्राचीन किसी बुद्ध प्रतिमा का परिवर्तित स्वरूप है। कुछ भी हो परन्तु निश्चय ही यह भव्य सिंदूर-चर्चित मल्ल-प्रतिमा व्रज के लोगों के मनोरंजन और उल्लास की उत्तम सामग्री है। प्राचीन ग्रन्थों में इसे ठाकुर जी के खिरक का रखवारा कहा गया है। कोई इसे हनुमान का ग्वारिया भेष भी कहते हैं। समीप ही एक गुफा है और इस गुफा के सामने ही गोवर्धन के ऊपर श्री कृष्ण के मुकुट-चिह्न हैं।

पूँछरी पर ही वह कूप भी है जहाँ श्रीनाथ जी के अधिकारी और अष्टछाप के भक्त कवि कृष्ण दास जी गिर गये थे और उनकी इसी दुर्घटना से मृत्यु हो गयी थी।

श्याम ढ़ाक

"शक्राय देव देवाय वृत्रघ्ने शर्मदायिने।
कजली बन संज्ञाय नमस्ते करिदायिने॥"[1] —लिंग पुराण

यहाँ से दो मील के करीब श्याम ढ़ाक नामक वन है जहाँ 'श्याम तलाई' है। यहाँ गोपाल कृष्ण गाय चराने आते थे तब ग्वाल-मण्डल के बीच कदम्ब के दोंनाओं में दही भर कर छाक भोजन करते थे। इस वन में अभी भी कदम्ब वृक्षों में स्वतः बने हुए प्राकृतिक दोंना उत्पन्न होते हैं। यहाँ सघन वन है जिसे कजली वन कहा गया है, कहा जाता है कि यह इन्द्र के प्रिय, ऐरावत हाथी का विचरण स्थल है।

---

१. हे वृत्र हन्ता देवाधिदेव इन्द्र स्वरूपी वरदाता कजली वन! आप हाथी देने वाले हो; अतः आपको मेरा नमस्कार है।

लिंग पुराण के अनुसार यहाँ के सरोवर का नाम 'पुंडरीक सरोवर' है और यहाँ गज दान का विशेष महात्म्य है।

गोपाल पुर (जतीपुरा)

जतीपुरा का प्राचीन नाम गोपालपुर है। यह गोवर्धन पर्वत के दूसरी ओर के सामने बसा है। किसी समय यहीं गिरिराज पर्वत के शिखिर पर बड़ी धज से भगवान् श्री नाथ जी विराजते थे और यह स्थल पुष्टि सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र के रूप में सर्वमान्य था। यहीं भक्ति-युग में अष्टछाप के अष्ट महाकवि, श्री नाथ जी के मन्दिर में बारी-बारी से अपनी सरस काव्य-संगीत लहरी से उन्हें विमोहित करते थे; जिनकी वाणी की मधुर झंकार आज तक हिन्दी क्षेत्र में गूँज रही है।

यद्यपि जतीपुरा का वह वैभव अब नहीं रहा फिर भी उसके अवशेष यहाँ अभी विद्यमान हैं। इस समय जतीपुरा पुष्टि मार्गीय वैष्णवों का एक कस्बा है। इसी गाँव में श्री गिरिराज जी का मुखारविन्द माना जाता है।

जतीपुरा में गिरिराज जी की 'शृंगार-शिला', जिसे 'भोग-शिला' भी कहते हैं, का दर्शन है; जहाँ प्रतिदिन बहुत सा दूध भक्तों द्वारा चढ़ाया जाता है। यहीं समय-समय पर बल्लभ-कुल के गोस्वामि वर्ग तथा उनके शिष्य-सेवकों द्वारा अन्नकूट, कुनवाड़ा, छप्पन-भोग आदि उत्सव भी किये जाते हैं जिनमें अनेक प्रकार के पकवान व्यंजन श्री गिरिराज को भोग लगाये जाते हैं। यहाँ गिरिराज जी का सायंकाल के समय अत्यन्त ही भव्य दर्शनीय शृंगार किया जाता है जिसे अवलोकन कर चित्त व्रज की शृंगार-सज्जा कला पर मुग्ध हो जाता है। जतीपुरा में गाँव के समीप ही 'हरजी कुण्ड' है जो हरजी, ग्वाल का बनाया हुआ है जो श्री नाथ जी का प्रसिद्ध भक्त था।

जतीपुरा में डंडौती शिला, मथुरेश जी का दर्शन (जो अभी-अभी कोटा से पुनः यहाँ पधारे हैं), मदन मोहन जी, नन्द-यशोदा, दाऊ जी के दर्शन तथा श्री नाथ जी के मन्दिर मुख्य हैं। 'हौं तो मुगलानी, हिन्दुवानी ह्वै रहौंगी मैं,' की टेक लेने वाली कवयित्री ताज ने भी यहीं श्री नाथ जी के सान्निध्य में अपना यह पंचभौतिक शरीर त्याग कर उनकी नित्य-लीला में स्थान प्राप्त किया था।

सुरभी कुण्ड—यहाँ से लौट कर आते वक्त गिरिराज पर्वत की तरहटी में प्रसिद्ध 'सुरभी कुण्ड', 'सुरभी गौ का स्थान', 'ढूँका दाऊ जी', 'सुरभी गाय के खुर-चिह्न', 'ऐरावत हाथी के चरण-चिह्न' आदि स्थान दर्शनीय हैं। सुरभी कुण्ड पर ही अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि परमानन्द दास जी का निवास-स्थान था और यहीं उन्होंने अपने अधिकांश साहित्य की रचना की जो परिमाण में बहुत अधिक है। अतः यह स्थान साहित्य-साधना का सिद्ध पीठ भी समझा जाना चाहिए।

ऐरावत कुण्ड—कुछ ही दूर पर राजकीय वन खण्ड को पार करने पर वृक्षों के बीच में बहुत गहरा टूटा-फूटा ऐरावत कुण्ड है। यह स्थान बहुत ही भव्य है जो अपने इस खण्डहर रूप में भी लुभावना है। यही वह स्थल है जहाँ व्रज के प्रसिद्ध संगीतज्ञ और अष्टछाप के भक्त-कवि गोविन्द दास जी साहित्य और संगीत की अमृत

धारा प्रवाहित करते हुए निवास करते थे। इसीलिए इसे गोविन्द स्वामी की कदम्ब खण्डी कहा जाता है।

रुद्र कुण्ड—ऐरावत कुण्ड के वायुकोण में यह कुण्ड है। यहां पर महादेव जी श्री कृष्ण के ध्यान में मग्न हो गये थे। यहाँ 'बूढ़े बाबू' महादेव जी का मन्दिर है। श्री कृष्ण यहाँ गेंद-बच्ची खेला करते थे। यहाँ पर राधिका जी की बैठक और पूजनी-शिला हैं। यहां भगवान् के अन्तर्ध्यान होने पर ब्रजवासियों ने रुदन किया इस कारण इसको 'रुदन कुण्ड' भी कहते हैं। यहीं पर यादवेन्द्र दास का अपने हाथों द्वारा खोदा हुआ कुआं है। अष्टछाप के कवि चतुर्भुजदास जी ने भी इसी कुण्ड के निकट एक प्राचीन इमली के वृक्ष के नीचे अपना शरीर त्यागा था, अतः यह साहित्यकारों के लिए भी महत्वपूर्ण है।

ब्रह्म कुण्ड—कहा जाता है कि यहाँ पर ब्रह्माजी ने श्री कृष्ण की स्तुति की थी और श्री कृष्ण ने उन्हें क्षमा दान किया था। इसके पूर्व में इन्द्र[1] तीर्थ, दक्षिण में यम तीर्थ, पश्चिम में वरुण तीर्थ और उत्तर में कुबेर तीर्थ हैं।

विलक्षण वन (बिलछू वन)—यहाँ से थोड़ी दूर पर ही बिलछूवन है जहाँ 'बिलछू विहारी' के दर्शन तथा 'बिलछू कुण्ड' है। कहा जाता है कि यहाँ राधा जी के पग के बिछुआ जल में खो गये तब श्याम सुन्दर ने उन्हें निकाल कर पहिनाया था। बिलछू वन को प्राचीन ग्रन्थों में 'विलक्षण वन' कहा गया है। यह अष्ट-छाप के कवि कृष्णदास जी का स्थल है।

जान-अजान—जतीपुरा के पास ही गिरिराज जी की तरहटी में ही जान-अजान नाम के दो प्राचीन वृक्ष हैं। कहते हैं ये दोनों श्री राधिका जी की प्रिय सहचरी सखी हैं जो वृक्ष रूप से इस स्थल पर निवास करती हैं। यहाँ श्री राधिका जी कृष्ण जी को पहिचान कर भी अनजान बन गईं और तब कृष्ण जी के अन्तर्ध्यान हो जाने पर सखियों से पश्चात्ताप करने लगीं—

> **"सखी री हौं जान अजान भई।**
> **सन्मुख प्रगट भये मनमोहन मो मति मोहि लई॥**
> **देखत हू जु भई अनदेखनी बैरिन है रसना जु गई।**
> **का विध मिलें प्रान प्यारौ वह कर कछु जुगत नई॥"**

राधा जी की आतुरता देख दोनों सखी श्याम सुन्दर को बुला लाईं सो दशा देख माधव बोले—"हे सखियो, तुम्हारे देखते हमारी रहस्य मिलन न होइगो"। यह सुन प्रभु की इच्छा जान वे दोनों वहीं जड़ वृक्ष रूप हो गईं। वार्ता ग्रन्थों के अनुसार यह स्थल श्री नाथ जी को बहुत प्रिय है और वे यहाँ एकत्रित होने वाली ग्वालों की मण्डली को जतीपुरा के पर्वत-शिखर के मन्दिर में से खिड़की में से देखते रहते हैं। ऐसा उल्लेख है कि एक समय ग्रीष्म ऋतु में उस खिड़की में से तेज धूप मन्दिर में आने लगी तब गोस्वामी गोकुल नाथ जी ने उस खिड़की के अगाड़ी एक अटारी बनवा

---

१. "अंशादिनिर्मितस्तीर्थं शुद्ध कृष्णाभिषेचन।
नमः कैवल्यनाथाय देवानां मुक्तिकारकः॥"

दी। उस अटारी के बनने से श्री नाथ जी को बिलछू तथा जान-अजान का स्थल दीखना बन्द हो गया—इससे असन्तुष्ट हो श्री नाथ जी ने गोकुल नाथ जी को मोहना भंगी द्वारा अटारी तुड़वा डालने की आज्ञा की और वह तुड़वा दी गई।

गुलाल कुण्ड—जतीपुरा के समीप ही 'गुलाल कुण्ड' नामक स्थल है जो कृष्ण जी के होरी खेलने का स्थान है। यहाँ गुलाल से जमीन लाल हो गई थी इसी से इसका नाम गुलाल कुण्ड प्रसिद्ध हुआ। इस स्थान के आस-पास ही श्री नाथ जी की गायों के खिरक थे, जिनमें श्री नाथ जी की सहस्रों गायें रहती थीं। इन गायों की देख-भाल कुंभन दास जी का बेटा कृष्ण दास, गोपीनाथ ग्वाल, गोपाल ग्वाल और गंगा ग्वाल नाम के चार प्रमुख ग्वारिया करते थे। यहाँ महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक भी है।

गाँठोली

गाँठोली सड़क किनारे गाँव है। ऐसा उल्लेख है कि यहाँ श्री राधा जी का कृष्ण जी के साथ गाँठ बाँध कर विवाह का उपक्रम सखियों ने किया है। गाँठोली की एक पाबो गूजरी प्रसिद्ध है जिसकी रोटी श्री नाथ जी लूट कर खा गये थे। यहीं एक पखावजी 'श्याम पखावजी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है जो पखावज बजाने में बहुत कुशल था तथा उसकी पुत्री ललिता बीन बहुत अच्छी बजाती थी जिसे सुनने को श्री नाथ जी भी उत्सुक रहते थे। वार्ता में वर्णन है कि—"जहाँ अष्टछाप गावैं, तहाँ ललिता बीन तथा श्याम मृदंग बजावें। एक बार श्री नाथ जी इनके घर भी यन्त्र-वादन सुनने पधारे थे।"

टौंड को घनो

यहाँ से आगे 'टौंड़ का घना' नामक वन है। यहाँ की प्राकृतिक शोभा दर्शनीय है। यहाँ श्री नाथ जी को भी औरंगजेब के शासन-काल में कुछ दिनों के लिए पधरा दिया गया था। कहा जाता है उसी अवसर पर भक्त कुंभन दास जी ने भगवान् श्रीनाथ जी से परिहास करते हुए यह पद गाया था—

"भावति तोहि टौंड़ को घनो।
कांटा लगे गोखरू टूटे, फाट्यौ है सब तन्यो॥
सिंहहि कहा लोमड़ी को डर, यह कहा बानिक बन्यो।
'कुंभनदास' तुम गोवर्धनधर, वह तो नींच ढेड़नी जन्यो॥"

नीम गाँव

"गोपिका रमणोल्लास सौरम्य सुख दायिने।
कृष्ण कैवल्य संज्ञाय निम्बनाम्ने नमोस्तुते॥" —पद्मपुराण

नीम गाँव श्री निम्बार्काचार्य का साधना-स्थल है। ब्रज में यह स्थल निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रधान तीर्थ-स्थल है। नीम गाँव का प्राचीन नाम 'निम्ब वन' है।

यहाँ 'गोपी कूप' तथा 'धेनु कुण्ड', 'कुबेर कुण्ड' का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है।

पाड़र गाँव

इसे पाड़र वन भी कहते हैं। इसे पुण्डरीक वन की सीमा का गाँव कहा जाता है। यहाँ 'गोपिका कुण्ड' प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यहाँ किसी समय सुवर्ण कमलों का वन था।

डीग नगर

डीग का प्राचीन नाम 'दीर्घ नगर' है जो भरतपुर के वीर जाट नरेशों के दुलार से सजाया-सँवारा गया एक नगर है। इस नगर की भूमि पर लड़ाइयाँ लड़ी जाती रही हैं।[1] यहाँ महाराज जवाहर सिंह जी के बनवाए हुए भवन दर्शनीय हैं जो 'डीग के भवन' कहे जाते हैं। यह भवन राजा जवाहर सिंह ने दिल्ली की लूट की स्मृति में निर्मित कराये थे। दिल्ली की लूट से बनाये इन भवनों में 'नन्द भवन' और 'गोपाल भवन' दो भवन प्रमुख हैं। यहाँ दिल्ली के मुगल बादशाह के स्नान का बहुत बड़ा तख्त जो एक ही काले कसौटी के पत्थर का बना हुआ है, रखा हुआ है। मुगल शाहंशाह की बेगम का झूला भी उल्लेखनीय है।

डीग में दो विशाल सुन्दर सरोवर भी हैं जिनके नाम 'रूप सागर' और 'गोपाल सागर' हैं। वास्तव में डीग भरतपुर नरेशों की कला-प्रियता और शूरता का स्मारक है।

यहाँ का फव्वारों का हौज तथा फव्वारों की निर्माण-शैली भी अद्भुत है। दीग में यात्रा आने पर यहाँ फव्वारों का मेला दर्शनीय होता है। यहाँ का बाग तो ब्रज में अपनी जोड़ ही नहीं रखता।

परमदरा

परमदरा का प्राचीन नाम 'परम मंद्र' है। कहा जाता है कि यह सुदामा जी का गाँव है जो भगवान् कृष्ण के सहपाठी व परम स्नेही सखा थे। यहाँ 'साक्षी गोपाल' जी के दर्शन, सुदामा जी की बैठक, तथा 'कृष्ण कुण्ड', श्री दामा जी का मन्दिर और ग्राम के पूर्व में 'चरण कुण्ड' है।

सेतुकन्दरा (आदि बद्री)

"नारायण सुखावास परमात्म स्वरूपिणे।
नमो नारायणाख्याय बनाय सुख दायिने ॥" —आदि पुराण

कहा जाता है आदि बद्री बद्री नारायण भगवान् का आदि स्थान है। यहीं से भगवान् नर नारायण ऋषि को दर्शन देने उत्तरा खण्ड पधारे थे। यहाँ के समीप का वन 'बद्री खण्डवन' है जहाँ आज भी बेर के फल आकार में बहुत ही बड़े और मधुर स्वाद वाले होते हैं। दीग के बेर के नाम से यह प्रसिद्ध फल यहाँ की प्रसिद्ध मेवा है।

शम्या प्रास (सेऊ गाँव)

सेतु कन्दरा के निकट पश्चिम में आधा मील की दूरी पर 'सुशोभनु' तथा

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिए 'ब्रज का इतिहास'; प्रकाशक : ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा।

'गन्ध शिला' है। अब इस ग्राम का नाम 'सेऊ' है। यहाँ पर 'नयन सरोवर', 'तप्त कुण्ड' भी है। इसका प्राचीन नाम शम्याप्रास है। कहा जाता है कि यहीं व्यास मुनि ने भागवत् शास्त्र की रचना की थी।

यहाँ 'अलखनन्दा' नाम का कच्चा सरोवर है इसे 'अलख गंगा' भी कहा जाता है। यह ब्रज की ४ गंगाओं में से एक है। श्री वल्लभाचार्य जी इसका महात्म्य इस प्रकार लिखते हैं—

"अत्र स्नानादिकं विधाय, बद्रीनाथ दर्शनं।
सुवर्णमय मन्दिरं विष्णु प्रतिमा सहित दानं दद्यात्, गांच दद्यात् ॥"
—ब्रज मथुरा तीर्थ प्रकाश (वल्लभाचार्य)

बूढ़े बद्री

जहाँ आदि बद्री भगवान् का प्राचीन मन्दिर है वहाँ से आगे सघन वन तथा पहाड़ों में बूढ़े बद्री नारायण हैं। इस पर्वत माला को 'गन्धमादन पर्वत खण्ड' प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है। यहाँ हरिद्वार, कनखल क्षेत्र, लछमन झूला, ऋषिकेश आदि तीर्थ हैं जिनका मार्ग कठिन और दुर्गम है। यहाँ अनेक प्राचीन दर्शनीय स्थल हैं।

सांड राशिखर

यह पर्वत धवल वर्ण का है। कहा जाता है कि राधा-कृष्ण ने यहाँ अनेक लीलायें की थीं और श्रावण में यहाँ १३ दिन हिंडोला भी झूले थे। पास ही में नील पर्वत और आनन्दाद्रि (घाटी) है। यहाँ पर पहाड़ में गौड़ीय गोस्वामियों ने अथक परिश्रम करके जगह-जगह पर शिलाओं पर ब्रज-मण्डल के स्थानों की एक दूसरे से दूरी अंकित करदी है।

इन्द्रौली (घाटा)

"श्रेष्ठ इन्द्रबनं धीमन् परमानंदकं यथा।" —शक्तयामल (तंत्र)

परमदरा से कामवन के मार्ग में 'आनन्दाद्रि' जिसे घाटा भी कहते हैं परम रमणीक स्थान है। यहाँ पहाडों के बीच में कामवन के गोस्वामी श्री देवकी-नन्दन जी महाराज का बगीचा है। यहाँ से चलकर इन्द्रवन 'इन्द्रौली' गाँव आता है। यहाँ 'इन्द्र कूप' नामक कुआ है। कहा जाता है यहीं से इन्द्र ने ब्रज पर आक्रमण करने के लिए मोर्चेबन्दी की थी।

गोदृष्टि वन (गुहाना)

यह परमदरा से एक मील है। आजकल इसे गुहाना कहते हैं। इस स्थल को गोपाल कृष्ण का चरागाह माना जाता है। इसके आस-पास ऊँचे-ऊँचे टीले हैं जिन पर से गायें आसानी से दिखाई दे सकती हैं। यहाँ पर 'श्याम कुण्ड' और 'गोपाल कुण्ड' नामक दो कुण्ड हैं।

कामवन

"यतो कामवनं नाम विख्यातं पृथिवी तले।
मोहिता देवताः सर्वा कामसन्तप्त मानसः ॥" —ब्रज-भक्ति विलास

यह डीग से सात कोस की दूरी पर पश्चिम दिशा में है। राजस्थान की सीमा में भरतपुर राज्यान्तर्गत कामवन ब्रज के महत्त्वपूर्ण स्थलों में से एक है।

कामवन प्राचीन महाभारतकालीन 'काम्यक वन' ही है, जहाँ पाण्डवों ने जुआ में पराजित होकर अज्ञात वास किया था। कामवन तंत्र विद्या के पारंगत सिद्धजनों के साधना-संरक्षक कामसेन राजा का सिद्धिस्थल रहा है। यहाँ कामसेन राजा के प्राचीन किले का अवशेष मौजूद है। एक पौराणिक मत के अनुसार कामवन ही कृष्णकालीन वृन्दावन है, जहाँ वृन्दा देवी विराजती हैं। आजकल कामवन पुष्टि-सम्प्रदाय का ब्रज में एक प्रमुख केन्द्र है।

कामवन में अनेक तीर्थ हैं। कहा जाता है कि यहाँ पर देवता, ऋषि मुनि, तपस्वी सब की मनःकामना सिद्ध होती है, अतः इस स्थान का नाम कामवन है। इसकी सात कोस की परिक्रमा है। कामवन के अधीश्वर श्री गोपीनाथ जी हैं। विष्णु पुराण के अनुसार कामवन में ८४ तीर्थ, ८४ मन्दिर और ८४ खम्भ हैं, जो कि राजा कामसेन द्वारा बनवाये गये हैं। यहाँ धर्मराज के सिंहासन के दर्शन हैं। यहाँ कुण्डों की संख्या बहुत अधिक है।

कामवन में सात दरवाजे हैं जिनसे होकर जगह-जगह को मार्ग गये हैं। (१) दीग दरवाजा—भरतपुर जाने का रास्ता ; (२) लंका दरवाजा—यह 'सेतुबन्धु कुण्ड' की ओर का रास्ता है ; (३) आमेर दरवाजा—'चरण पहाड़ी' का रास्ता ; (४) देवी दरवाजा—पंजाब जाने का रास्ता ; (५) दिल्ली दरवाजा—दिल्ली जाने का रास्ता ; (६) राम जी दरवाजा—नन्दग्राम जाने का रास्ता ; और (७) मथुरा दरवाजा—यह बरसाना होकर मथुरा जाने का रास्ता है।

कामवन के मुख्य दर्शनीय स्थल निम्न हैं—

धर्म कुण्ड—यह कुण्ड पूर्व दिशा में है, यहाँ पर श्री नारायण धर्मरूप में विराजमान हैं। निकट ही विशाखा नामक देवी है। कहा जाता है वनवास काल में महाराज युधिष्ठिर यहीं रहते थे।

विमल कुण्ड—यह कुण्ड कामवन का परम प्रसिद्ध कुण्ड है। यह कामवन के दक्षिण-पश्चिम कोण में लगभग दो फर्लांग की दूरी पर है। इसके चारों ओर दाऊजी, सूर्यदेव, नीलकंठेश्वर महादेव, गोवर्धन नाथ, मदन गोपाल तथा काम्यवन-विहारी, विमल-विहारी, विमला देवी, मुरली मनोहर, गंगा जी, गोपाल जी क्रमशः विराजमान हैं। इस कुण्ड में स्नान करके चतुर्भुज भगवान् के दर्शन करने का विशेष महात्म्य है।[1]

व्योमासुर गुफा—(चौर्य्य-क्रीड़ा स्थल) कहा जाता है यहाँ पर श्री कृष्ण ने व्योमासुर को मार कर पर्वत की गुफा से व्योमासुर द्वारा रुद्ध मेष रूपी सखाओं (बालकों) का उद्धार किया।

भोजन थाली—व्योमासुर गुफा के निकट ही 'भोजन थाली' नामक वह स्थान है जहाँ पर श्री कृष्ण ने गौ-चारण के समय अपने सखाओं सहित शिलाखण्डों के

---

१. "कैवल्यरूपये तुभ्यं नमस्ते जलशायिने।
केशवाय नमस्तुभ्यं तीर्थराज नमोऽस्तुते॥" —ब्रज-भक्ति विलास

ऊपर भोजन किया था। इन शिलाओं के ऊपर थाल-कटोराओं के आकार के चिह्न पाये जाते हैं। यहीं पर एक 'बजनी शिला' भी है जिसको बजाने से नाना प्रकार के वाद्य-स्वर निकलते हैं।

कामेश्वर महादेव—इनका मन्दिर कामवन के उत्तर-पूर्व कोण में ग्राम के बाहर है। यह कामवन के क्षेत्रपाल कहलाते हैं।[1]

मोहिनी कुण्ड—कहा जाता है यहाँ भगवान् ने मोहिनी रूप धारण करके देवताओं को सुधा बाँटी थी। यहीं पर गो-दोहन लीला का भी स्थान है। यहाँ 'मोहिनी कुण्ड' से लगा हुआ ही 'दोहनी कुण्ड' भी है। ये दोनों कुण्ड श्रृंगरावली ग्राम के दूसरी ओर हैं।

सेतुबन्धु सरोवर (लंका कुण्ड)—कहा जाता है यहाँ पर श्री कृष्ण ने गोपियों के सामने राम-वेष में बन्दरों की सहायता द्वारा सेतु बाँध कर बतलाया था। अभी भी सरोवर के बीच में यह सेतु बँधा है। सेतु के उत्तर में 'रामेश्वर महादेव' जी हैं जिनकी स्थापना रामवेषी श्री कृष्ण ने की थी। दक्षिण में एक बड़ा टीला है जिसे लंकापुरी कहा जाता है।

यशोदा कुण्ड—यहाँ यशोदा जी के दही बिलोने के समय कृष्ण माखन चुरा कर खा जाते थे।

लुक-लुक कुण्ड, लुकन-कंदरा—यह गोपाल कृष्ण के आँख-मिचौनी खेलने का स्थान है। खेल में यहाँ कंदरा में छिप कर चरण पहाड़ी पर भगवान् कृष्ण खेल में ही प्रगट हुए थे।

चरण पहाड़ी—यह काफी ऊँची पहाड़ी टेकरी है, यहाँ एक चरण से खड़े होकर कृष्ण जी ने वेणुनाद किया था।

रत्नाकर महोदधि कुण्ड—यहाँ 'रत्नाकर' समुद्र ने आकर कृष्ण जी के चरण धोये हैं।

नन्द बैठक—यहाँ नन्द जी वन में आकर बैठते थे और सब ग्वारिया वन में गायों को चराते फिरते थे।

गरुड़ कुण्ड—यहाँ गरुड़ जी ने तप कर सेवक पद पाया है।

देवी कुण्ड—यशोदा ने यहाँ दुर्गा जी का पूजन किया है।

गया कुण्ड—यहाँ पिंड श्राद्ध करने से गया श्राद्ध का फल प्राप्त होता है।

यहाँ निम्न स्थान भी बड़े ही रमणीक एवं दर्शनीय हैं—गदाधर भगवान् का दर्शन गोपीनाथ जी का दर्शन। बाराह भगवान् का दर्शन। चौरासी खम्भा एक प्राचीन इमारत है। मदन मोहन जी का मन्दिर। गोकुल चन्द्रमा जी का मन्दिर। गोविन्द जी का मन्दिर। चित्रगुप्त धर्मराज। श्वेत वाराह। सूर्य कुण्ड। गोपाल कुण्ड। शीतला कुण्ड, शीतला देवी। श्री कुण्ड। श्री वल्लभाचार्य की बैठक। कृष्ण-बलराम खिसलनी शिला। भोजन थाली। दही कटोरा। गरुड़ कुण्ड। राम कुण्ड।

---

१. "कामेश्वराय देवाय कामनार्थ प्रदायिने।
महादेवाय ते तुभ्यं नमस्ते मुक्तिदो भवः॥"

चन्द्रभागा सरोवर। चन्द्रेश्वर महादेव। पाँचों पाण्डवों के दर्शन। वाराह अवतार दर्शन। चारों युग के महादेव। पंचतीर्थ कुण्ड। दशावतार तीर्थ। यज्ञ कुण्ड। मनोकामना कुण्ड। मणिकर्णिका कुण्ड। काशी विश्वेश्वर शिव।

कनवारो

यह गाँव 'कण्व मुनि' का तपस्या-स्थान है। यहाँ पर 'काशी कुण्ड', 'सुनहरा की कदम खण्डी', 'पनहारी कुण्ड', 'कृष्ण कुण्ड', ठाकुर जी की बैठक और काका बल्लभ जी की बैठक हैं।

कनवारो गाँव श्री बलराम जी और कृष्ण जी के कर्ण-छेदन का स्थल है ऐसा प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख है। इसका प्राचीन नाम 'कर्ण प्रतिवन' है, अतः इसकी गणना प्रतिवनों में आती है। इसके अधिपति देवता कमलाकर भगवान् हैं। यहाँ 'कर्ण कुण्ड' नामक कच्चा तालाब है जहाँ सुवर्ण दान एवं कर्ण-भूषणों का दान किया जाता है। यहाँ काका बल्लभ जी की बैठक भी है।

सुनेहरा की कदम्ब खण्डी

"ध्यायेत् स्वर्णवनाधीशं राधा कृष्णं विहारिणम्।"—कौण्डिन्य संहिता

कनवारे से आगे चलकर ब्रज की सुन्दर सुहावनी कदम्ब खण्डी 'सुनेहरा की कदम खण्डी' आती है। इस कदम खण्डी में जाने के लिए पहिले दो पहाड़ों के बीच में से 'सुनेहरा की घाटी' पार करनी पड़ती है। सुनेहरा उपवनों में से है और इसका नाम स्वर्णोपवन है। इसके विहारी जी देवता हैं। यहाँ की रमणीयता नयनाभिराम है।

यहाँ के प्रसिद्ध कुण्ड 'कृष्ण कुण्ड' और 'पनिहारी कुण्ड' हैं। पक्का बना हुआ हिंडोला का स्थल भी है। कदम खण्डी से थोड़ी दूर चल कर 'हरसुख का नगला' और फिर सुनेहरा गाँव है।

स्वर्णहार (सुनेहरा ग्राम)

"स्वर्णपुरे समाख्याते पश्चिमस्यां दिशास्थिते।
गौरभानुर्महागोपस्तस्य भार्य्या कलावती॥" —ब्रज चन्द्रिका

यह ग्राम कामवन से चार मील और बजेरा से दो मील पूर्व में सुवर्णाचल पर्वत के ऊपर बसा हुआ है। यहाँ पर कदम खण्डी, रत्न कुण्ड और रास-मण्डल हैं। कहा जाता है यहाँ श्री राधिका जी ने महादेव जी को सोने का हार पहनाया था।

सखीगिरि पर्वत

श्री कृष्ण के गुणों पर मुग्ध होकर ललिता आदि सब सखियों ने इस पर्वत पर क्रीड़ा की थी, अतः इसका नाम सखीगिरि पर्वत कहलाता है।[1]

---

१. "यत्र गोपसुताः सर्वा ललितादिप्रभृतयः।
क्रीड़ां चक्रः समासेन श्री कृष्णसहमोदिताः।
यस्मात्सखीगिरिर्नाम बभूव ब्रजमण्डले।" —'ब्रज-भक्ति विलास'

चित्रविचित्र शिला—आगे पहाड़ के किनारे एक पक्की छतरी में चित्र-विचित्र शिला है। यह शिला कई रंगों के चित्रांकन से युक्त है जिसे जल से भीगा कपड़ा फिराने से भली प्रकार स्पष्ट चिह्नों में देखा जा सकता है। कहा जाता है कि यहाँ राधा जी ने अपने हाथों में मेंहदी की चित्रकारी बनवाने को उसका नमूना सखियों को शिला पर अंकित करके बतलाया था।

ललिता विवाह-स्थल—यहाँ श्री कृष्ण ने सात वर्ष की उम्र में ललिता जी से विवाह किया बतलाते हैं। यहाँ पर एक छत्री व चबूतरा बना है।

त्रिवेणी कूप—यह कूप नारायण भट्ट जी द्वारा स्थापित है। कहा जाता है इस कूप में बलदेव जी और ललिता जी नित्य स्नान किया करते थे।[1]

देह कुण्ड

इस कुण्ड में स्नान करके सोना दान करने का महात्म्य है। कहते हैं ऐसा करने से कोढ़ी भी रोग से मुक्ति पाता है। यहाँ पर 'वेणीशंकर महादेव' जी का मन्दिर है जिसकी स्थापना गोपियों ने की है। कहते हैं एक बार यहाँ पर राधा-कृष्ण दोनों स्नान कर रहे थे उसी समय वहाँ पर एक दीन ब्राह्मण के आकर याचना करने पर श्री कृष्ण ने राधा जी को ही दान में देने को कहा किन्तु बाद में राधा जी के बराबर सुवर्ण दान किया; अतः इसका नाम 'देह कुण्ड' पड़ा।

उच्च ग्राम (ऊँचा गाँव)

यह ग्राम स्वर्णहार से तीन मील पूर्व अथवा बरसाने से एक मील पश्चिम में है। यह ललिता जी का गाँव माना जाता है। इसको बल्देव स्थल भी कहते हैं। यहाँ पर पूर्व में बल्देव मन्दिर, नैऋतकोण में श्री नारायण भट्ट जी की समाधि, उत्तर में त्रिवेणी कूप, आयता पहाड़ी अथवा चित्रशिला आदि हैं।

धूलेड़ा ग्राम

यहाँ पर गौ-चारण के समय गौ-चरणों की रज से सारा आकाश-मण्डल भर उठा था। अतः इस ग्राम का नाम धूलेड़ा ग्राम पड़ा। इसी के निकट ऊँचा ग्राम है।

आहोर

कहा जाता है यहाँ श्री कृष्ण ने आठ पहर क्रीड़ा की थी। अतः इस का नाम 'आठ पहर' से आहोर पड़ गया।

बजेरा

यह ग्राम कामवन से दो मील पूर्व में बसा हुआ है। यहाँ पर 'रंगदेवी' और सुदेवी यमजभगिन का जन्म हुआ था।

---

१. "कृष्णाबालसंप्रवर्त्तिन्यै त्रिवेण्यै सततं नमः।
परमं मोक्ष पदं देहि धनधान्य प्रवर्द्धिनि॥"

डभारो गाँव

यहाँ से समीप ही डभारो गाँव है जहाँ की भूमि डाभ (कुश स्थली) होने के कारण अत्यन्त पवित्र मानी जाती थी। डाभ या दर्वी देव और पितृ कार्यों में परम पवित्र होने के कारण तपस्वियों को बहुत मान्य है अतः यह दर्वीवन ही कालान्तर में डभारो नाम से प्रसिद्ध हो गया।

यह ग्राम बरसाने से दो मील दक्षिण में है। कुछ का यह भी कथन है कि यह तुंगविद्या सखी का जन्म-स्थल है। कहते हैं यहाँ पर प्रेमातिरेक में राधा-कृष्ण दोनों के नेत्र आँसुओं से भर आये थे अतः इसका नाम डभराऐ (अश्रुयुक्त नेत्र) पड़ा।

वृषभानुपुर (बरसाना)

"जिय बरसानौ जिन रहे, तरसानौं पिय नांउ।
सब ते सरसानौ यहै, श्री बरसानौ गांउ॥" —जगतनन्द

यह गोवर्धन से पश्चिम में सात कोस और कामवन से पूर्व में तीन कोस पर बसा हुआ है। बरसाना श्री राधा जी के पिता वृषभान जी तथा माता कीर्तिदेवी का निवास स्थान है। यहाँ पहाड़ के ऊपर श्री लाड़िली जी का मन्दिर तथा जयपुर-नरेश का बनाया राधा-गोपाल का मन्दिर अति सुन्दर तथा दर्शनीय हैं। नीचे पहाड़ की तलहटी में बरसाना गाँव बसा हुआ है। मन्दिर के ऊपर से देखने में ग्राम का दृश्य बड़ा ही नयनाभिराम है। यहाँ पर्वत के ऊपर से ब्रज की भूमि का दृश्य दूर-दूर मीलों तक बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता है। इस पर्वत से कामवन की पहाड़ी नन्दगाँव आदि बड़े ही सुन्दर दिखलाई देते हैं। बरसाने का शास्त्रीय नाम 'वृषभानुपुर' है। यहाँ दो पर्वतों की घाटी में उतरने पर नीचे अति रमणीक 'गहवर वन' जो 'गह्वरवन' का अपभ्रंश है मिलता है। यह स्थान अत्यन्त सघन वृक्षावली से युक्त तथा शान्त साधनानुकूल तप-स्थल सा प्रतीत होता है। ऊपर पर्वत के शिखरों पर दानगढ़, मानगढ़, मोरकुटी, बिलासगढ़ नामक चार गिरि शृंग हैं जहाँ तद्विषयक देव दर्शन हैं।[1] यहीं गौर श्याम दो पर्वतों के बीच साहित्य-प्रसिद्ध 'साँकरी खोर' है। जब राधिका जी अपनी सखियों के साथ दही की मटकी लेकर इधर से निकलती थीं तो श्री कृष्ण जी इस सकड़ी गली में उनकी राह रोक उनका गोरस लूट खाते थे। साँकरी खोर के विषय में अनेक सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, यथा—

घेर लई आये नन्दराय के कुमर कान्ह, मारत मधुर मुसकाई नेह काँकरी।
मुरि मुख आँचर दै रसिक रसीली राधे, ठाढ़ी छविधाम हेरैं चितवन बाँकुरी॥
रोकें राह ठाढ़ो मन मोहन मुकुन्द प्यारो, झमिक झरोकन ते देखें सखी झाँकरी।
नैनन की कोर चितचोर बरजत जात, साँकरी गली में प्यारी हाँ करी न नाँ करी॥

यहाँ इस लीला का रसास्वादन करने को भक्तजन 'बूढ़ी लीला' के नाम से जिस कृष्ण-चरित्र का आयोजन करते हैं उसके अन्तिम उपसंहार रूप यह दधि-

---

१. बरसाने का पर्वत ब्रह्मा का स्वरूप माना जाता है। ब्रह्मा के चार मुखों के प्रतिरूप ही इस पर्वत की ४ चोटी हैं, जिन पर उक्त स्थल बने हुए हैं। —सम्पादक

लूटनी लीला वास्तव में ही ब्रज की एक रसमयी सांस्कृतिक अभिव्यंजना का रूप होती है। यह लीला कई लीलाओं की शृंखला रूप भाद्रपद मास में बरसाने के निकटवर्ती स्थलों पर की जाती है। यह ब्रज की कई शताब्दि प्राचीन परिपाटी है।

आधुनिक बरसाना, तीन-चार छोटे-छोटे ग्रामों से बना एक बड़ा ग्राम है जिसकी जनसंख्या सन् १६५१ की जनगणना के अनुसार ३,७६१ थी। अब इससे अधिक ही है। बरसाने के भवनों, बागों और सरोवरों के निर्माण में श्री रूपराम कटारा ने बहुत धन व्यय किया और यहाँ के सौन्दर्य में चार चाँद लगाये।

बरसाने की होली भी बहुत प्रसिद्ध है जो फागुन मास में आयोजित की जाती है और जिसमें ब्रज की नारियाँ लाठी के पैंतरों से नन्दगाँव के ग्वारियाओं का फाग-संमान करती हैं। बरसाने में 'वृषभान सरोवर' और 'पीरी पोखर' नाम के दो पक्के सरोवर हैं। 'गेंदोखरि' नाम का एक कच्चा तालाब भी है जो श्री राधा जी के गेंद खेलने का स्थल कहा जाता है। यहाँ के अन्य दर्शनीय स्थल हैं—(१) रावड़ी कुण्ड, (२) पावड़ी कुण्ड, (३) मोर कुण्ड, (४) तिलक कुण्ड, (५) जल-विहार कुण्ड, (६) दोहिनी कुण्ड, (७) गह्वरवन, कृष्ण कुण्ड, (८) जयपुर नरेश का मन्दिर (६) लाड़ली जी का मन्दिर, (१०) महीभान जी के दर्शन, (११) दाऊ जी के दर्शन, (१२) अष्ट सखी मन्दिर (१३) वृषभान कीर्ति मन्दिर आदि।

चिक्सौली

यह ग्राम ब्रह्माचल पर्वत के नीचे बसा हुआ है जो चित्रा सखी का गाँव माना जाता है। यहाँ पर सखियों ने राधिका जी का शृंगार किया था।

दोहनी कुण्ड—चिक्सौली के दक्षिण में यह कुण्ड है। यहाँ गो-दोहन होता था। इस स्थान पर कदम के वृक्षों पर दोनेदार पत्ते होते हैं।

मुक्ता कुण्ड—इस स्थान पर राधिका जी ने कृष्ण जी से विवाद हो जाने के उपरान्त मोतियों की खेती की थी; ऐसा कहा जाता है।

प्रेम सरोवर

बरसाना से संकेत के पक्के मार्ग पर ही प्रेम सरोवर है जो अत्यन्त सुन्दर व पक्का बना हुआ है। प्रेम सरोवर पर चूरू वालों का बगीचा तथा राधा गोविन्द जी का मन्दिर है। समीप ही सड़क के किनारे गाजीपुर नामक गाँव बसा हुआ है। प्रेम सरोवर पर 'प्रेम विहारी' भगवान् के दर्शन हैं—यहाँ श्री किशोरी जी और श्री श्याम सुन्दर का प्रथम प्रेम परिचय हुआ था। अतः यह स्थल भक्ति-साहित्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

संकेत

यह स्थान नन्दगाँव और बरसाने के बीच में है। यहाँ से आगे पक्की सड़क के किनारे ही 'संकेतवन' है। प्राचीन समय में यहाँ एक अति विशाल दीर्घाकार बट

वृक्ष था जो संकेत बट कहा जाता था[1] इसी बट वृक्ष की सघन शीतल छाया में प्रिया-प्रियतम का स्नेह मिलन हुआ करता था ; अतः ये युगल मिलाप का रहस्यमय स्थल 'संकेत-स्थल' के नाम से प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है। संकेत गाँव में 'संकेत बिहारी' भगवान् के दर्शन, 'संकेती देवी', 'राधा रमण' भगवान् के दर्शन, चैतन्य महाप्रभु की बैठक, 'विवाह चबूतरा', हिंडोरा-स्थल, श्री वल्लभाचार्य जी की बैठक, 'कृष्ण कुण्ड' आदि दर्शनीय हैं।

संकेत के समीप ही सड़क के थोड़ी दूर पर 'विह्वल कुण्ड' और 'विह्वला देवी' का स्थान है तथा एक शिला में 'कल्प-वृक्ष' के दर्शन हैं। संकेत बहुत प्राचीन किन्तु छोटा सा गाँव है जिसकी जन-संख्या अन्तिम जनगणनानुसार ५६६ मात्र थी।

रीठौरा

रीठौरा श्री राधा महारानी की प्रिय सहचरी चन्द्रावली जी का गाँव है। यहाँ 'चन्द्रावलि कुण्ड', श्री ठाकुर जी की बैठक और गुसाईं बिट्ठल नाथ जी की बैठक दर्शनीय हैं।

महरानो

यहाँ से आगे 'भांडोखर' नामक गाँव और 'भांडोखर कुण्ड' पर होकर महराने को जाते हैं। महराना अभिनन्दन गोप—श्री कृष्ण के नाना का गाँव है जहाँ श्री यशोदा माता का पितृ-गृह था। यहाँ यशोदा जी के दर्शन, यशोदा कुण्ड और रामचन्द्र जी के दर्शन हैं। ऐसा कहा जाता है कि यहीं श्री माता यशोदा ने पुत्र को राम-कथा कहानी के रूप में सुनाई थी। उसी की स्मृति रूप यह राम मन्दिर यहाँ है। आगे मार्ग में 'चन्द्र कुण्ड' है जहाँ किवदंती के अनुसार श्री कृष्ण 'चन्द्र-खिलौना' लेने को मचले थे। 'श्याम कुण्ड', 'भ्रमर कुण्ड', साँचोली देवी आदि स्थान यहाँ से समीप ही हैं।

गिड़ौयो गाँव

गिड़ौयो गाँव कृष्ण जी की 'गारुड़ी लीला' का प्रतीक माना जाता है। यहाँ श्याम सुन्दर प्रभु गारुड़ी बन कर सर्प-विष उपचार करने को आये थे ऐसा कहा जाता है। यहाँ गोपी कुण्ड, रोहनी कुण्ड, बिहार कुण्ड, पनिहारी कुण्ड, गैंदोखर कुण्ड, जुगल किशोर दर्शन, गारुड़ी कुण्ड, बिहारी जी के दर्शन आदि हैं।

नन्दगाँव

"यत्र नन्दोपनन्दास्ते प्रतिनन्दाधिनन्दनाः।
चक्रुर्वासं सुखस्थानं यतो नन्दाभिधानकम् ॥" —आदि पुराण

यह बरसाना-कोसी मार्ग पर स्थित कृष्ण जी के पिता ब्रजेश नन्द जी का निवास-स्थान है। नन्द जी का पहला स्थान महावन गोकुल था वहाँ कंस के असुरों

---

१. "श्री हरि जब कंकर लियौ, श्री प्यारी पग देत।
तब ते देख्यौ आइ बट पिय प्यारी संकेत ॥" —जगत नन्द

का उत्पात देख गोपों के डेरे बृन्दावन में डाले गये, वहाँ से गिरिराज तलहटी में और वहाँ इन्द्र का उत्पात होने से श्री वृषभान राय जी के परामर्श से नन्द जी ने इस पर्वत के ऊपर नन्द ग्राम नाम से अपना स्थान बसाया। नन्द ग्राम पर्वत के ऊपर बसा हुआ गाँव है। यह पर्वत शिव स्वरूप है। ऐसी मान्यता है कि ब्रज के चार पर्वत चार देवों के स्वरूप हैं इनमें नन्दग्राम पर्वत शिव स्वरूप, बरसाना पर्वत ब्रह्मा-स्वरूप, श्री गिरिराज पर्वत विष्णु-स्वरूप, और चरण पहाड़ी पर्वत शेष-स्वरूप है।

नन्द गाम की जलवायु बहुत ही स्वास्थ्य प्रद और बलवर्द्धक है। यह कृष्ण का धाम होने से पुरुषार्थ प्रधान पुरुष रूप और बरसाना राधा जी का धाम होने से सौन्दर्य-प्रधान नारी-स्थल रूप है; ऐसा प्रत्यक्ष देखने में आता है। यही कारण है कि नन्दगाँव की स्त्रियाँ भी पुरुष जैसी सुदृढ़ अंग वाली और बरसाने के पुरुष भी महिला सुलभ कोमलता और मधुर स्वभाव वाले होते हैं। नन्दगाँव के आस-पास पानी प्रायः खारा और भूमि कठोर और ऊँची है।

नन्द गाँव में पर्वत के ऊपर श्री नन्दराय जी का मन्दिर है जिसमें नन्द-यशोदा कृष्ण बलराम की सुन्दर प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। समीप ही श्री राधानन्द-नन्दन की अद्भुत मूर्ति है जिसमें राधा-कृष्ण दोनों स्वरूप एक ही प्रतिमा में गौर श्याम वर्ण आभायुक्त समाविष्ट हैं। यहाँ के दर्शन और तीर्थों में (१) गोर्धननाथ जी के दर्शन, (२) पावन सर उपनाम पान सरोवर, (३) मोती कुण्ड, (४) फुलवारी कुण्ड, (५) ईसुरा ग्वाल की पोखर, (६) साँस-की कुण्ड, (७) श्याम पीपरी, श्यामा गौ की बैठक, (८) टेर कदम्ब, (९) रूप सनातन जी की बैठक (जहाँ श्री राधा जी ने कंचन कटोरा में खीर लाकर प्रसाद दी), तथा ब्रजभाषा के एक कवि घनानन्द गोस्वामी की बैठक, (१०) आसकुण्ड, आसेश्वर महादेव, (११) विहार कुण्ड, (१२) मोर कुहुक कुण्ड, (१३) कृष्ण कुण्ड, (१४) माला धारी कृष्ण के दर्शन, (१५) छछियारी देवी, (१६) बहेंकन बन, (१७) जोगधूनी कुण्ड, (१८) झगरा कुण्ड, (१९) भंडार कुण्ड, (२०) लेड कुण्ड, (२१) अक्रूर की बैठक, (२२) वस्त्र बन, (२३) नन्द-वृषभान समागम बैठक, (२४) मोहन कुण्ड, (२५) उद्धव क्यार, (२६) ललिता-कुण्ड ललिता मोहन दर्शन, (२७) उद्धव कुण्ड, उद्धव जी की बैठक, (२८) यशोदा कुण्ड, (२९) हाऊ दर्शन, (३०) पद्म कुण्ड, (३१) नृसिंह भगवान्, (३२) मधु सूदन कुण्ड, (३३) यशोदा जी के प्राचीन माँट, (३४) बेल कुण्ड, (३५) पनिहारी कुण्ड, (३६) चांडोखर, (३७) रोहनी कुण्ड, (३८) मोहनी कुण्ड, (३९) गोपीनाथ ग्वाल की पोखर, और (४०) नन्द जी की गायों के खूँटा आदि दर्शनीय हैं।

आधुनिक नन्दग्राम, वास्तव में प्राचीनतम ग्रामों में से एक माना जाता है। जनसंख्या २,३४० है—और कोसीकलाँ से ८ मील दक्षिण में स्थित है।

करहला मड़ोई

सब ग्वालिनि सों हँस कहत, कान्ह चित्त के चोर।
जहँ फूलन के करहरा, भयौ 'करहला' ठौर॥ —जगतनन्द

कहा जाता है कि यह स्थान भगवान् की प्रिय सखी ललिता का स्थान है। इसकी जन-संख्या लगभग १,००० है। यहाँ श्री घमण्ड देव जी की भी समाधि है। करहला और मड़ोई ये दोनों ही गाँव एक दूसरे से मिले हुए हैं, जिन्हें एक ही माना जाना चाहिये। इस स्थल को व्रषभानु जी का उपवन माना जाता है।

यह भगवान् कृष्ण की 'दधि लीला' का स्थल कहा जाता है। यहाँ कंकण कुण्ड, इन्दुलेखा कुण्ड, रंगदेवी कुण्ड, सुदेवी कुण्ड तथा जलघड़ा कुण्ड हैं। सुदेवी कुण्ड पर द्वारकानाथ जी का दर्शन तथा रंगदेवी सुदेवी की बैठक तथा हिंडोला-स्थल व रास चौंतरा हैं। जलघड़ा कुण्ड पर श्री महाप्रभु जी की बैठक है। यहाँ पर श्री महाप्रभु जी व श्री नाथ जी की एक भावना की बैठक है तथा दूसरी गुसाइं जी व तीसरी गोस्वामी गोकुलनाथ जी की बैठक है। श्री गुसाईं जी ने रास पंचाध्यायी के ऊपर 'टिप्पणी' नामक ग्रन्थ की रचना यहीं की थी। गाँव के भीतर हवेली में पुराने मुकुट के तथा बाहर नये मुकुट के दर्शन हैं। यहाँ श्री ठाकुर जी को रास में कंकण पहनाया था जिसकी स्मृति में 'कंकण कुण्ड' स्थापित माना जाता है। ब्रज की रास लीला का केन्द्र होने के कारण करहला का महत्त्व बहुत अधिक है।

कमई

इस गाँव का सम्बन्ध विशाखा जी व कमई नामक एक सखी से बतलाया जाता है। यह करहला से दक्षिण ३ मील दूर है। यहाँ अश्वत्थ कुण्ड, सूर्य कुण्ड, बलभद्र कुण्ड, रेवती कुण्ड तथा दाऊ जी के दर्शन हैं। इसे मुचकुन्द क्षेत्र भी कहते हैं। यहाँ कदम खण्डी में मुचकुन्द ऋषि की गुफा तथा तप-स्थल है।

"मुचकुन्द स्वपित्यत्र दानवासुर पातनः।
अत्र कुण्डे नरः स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम्॥"
—वाराह ७ अ०, २८ श्लोक०

आँजनौक

"अंजपुरे समाख्याते सुभानुर्गोपः संस्थिताः।
वेवदानीति विख्याता गोपिनी निमिषसुता॥"

यह ग्राम नन्द गाँव से २½ कोस दक्षिण-पूर्वकोण में है जो विशाखा जी का स्थान माना जाता है। कहा जाता है यहाँ पर श्री कृष्ण ने राधिका जी के नेत्रों में स्वयं अंजन लगाया था। यहाँ रास-मण्डल और ग्राम के दक्षिण में 'किशोरी कुण्ड' है। कुण्ड के पश्चिमी तट पर 'अंजनी शिला' है।

पिसायौ

"गाय चरावत हरि कह्यौ, भयौ पियासौ ठाँउ।
ता दिन सें सुखरासि यह भयौ 'पियासौ' गाँउ॥" —जगतनंद

पिसायो करहला की कदम खण्डी से दाहिनी ओर १½ मील उत्तर में है। यहाँ कदम खण्डी में 'किशोरी कुण्ड', 'श्याम तलाई' व श्याम जी की बैठक हैं। यहाँ

स्वामिनी जी की गुप्त कुंज और हिंडोला झूला का चिन्ह है। कहा जाता है कि यहाँ ठाकुर जी को प्यास लगी थी तो राधिका जी सखियों के साथ जल लेकर आई थीं और ठाकुर जी ने जल पीकर प्यास बुझाई थी तथा वेणु से जल प्रकट किया था; अतः 'वेणु कुण्ड', तथा प्यास-निवृत्ति से 'प्यास कुण्ड' है। कदम के वृक्ष के नीचे स्वामिनी जी की बैठक है। समीप ही 'बलभद्र कुण्ड', 'रास-चौंतरा' दाऊ जी के दर्शन तथा ठाकुर जी की बैठक हैं। यह रास-रमण की ठौर है। ग्राम के निकट मनोहर कदम खण्डी है।

खादिर वन (खायरो)

"खादिरन्तु वनं देवी सप्तमं यत्र मानवः।
स्नान मात्रेण लभते तद्विष्णो परमं पदम्॥"

—वृ० ना० पु० ७६।१३

ब्रज के १२ वनों में से यह सप्तम वन है। यहाँ कृष्ण-बलराम ने शंखचूड नामक असुर का वध किया है। यहाँ बलभद्र कुण्ड, दाऊ जी तथा गोपीनाथ के दर्शन हैं।

कुण्डल वन

शंखचूड़ के भय से गोपियों के कर्ण कुण्डल तथा चीर यहाँ गिरे बतलाये जाते हैं। इसलिए इसे कुण्डल वन कहते हैं। यहाँ पर कुण्डलाकार 'कुण्डल-कुण्ड' भी है। कदाचित् इसलिए इसे कुण्डल वन कहा जाता हो। कुछ लोग इस कुण्डल वन को 'मनिहारी-लीला' का स्थल भी बतलाते हैं। यहाँ कुण्डल कुण्ड के साथ 'चीर तलाई' भी है।

जाव

यहाँ चीर कुण्ड, बलभद्र कुण्ड, धर्म कुण्ड, महावर कुण्ड, किशोरी कुण्ड हैं। किसोरी बट वृक्ष के टूट जाने से वहाँ हिंडोला चौंतरा बना दिया गया है। ग्राम के अन्दर राधिका जी का तथा एक टीले पर मदन मोहन जी का मन्दिर है।

जाव के विषय में कथा प्रचलित है कि यहाँ भगवान् कृष्ण ने शरद निशा में मुरली-वादन कर ब्रजाङ्गनाओं को रास के लिए बुलाया था और उनके आ जाने पर उनसे कहा था कि तुम 'जाव' तुम ऐसी रात्रि में क्यों आई हो, इसी से इसका नाम जाव पड़ा है।[1] एक दूसरे मत के अनुसार यहाँ भगवान् ने श्री राधिका जी के महावर लगाई थी। 'यावक' शब्द ब्रज भाषा में 'जाबक' हो जाता है, जिससे गाँव का नाम 'जाव' हो गया।

गाँव के बाहर पश्चिम में 'पाडर कुण्ड' है। इस कुण्ड के सम्बन्ध में लोकोक्ति है कि यहाँ भगवान् नट वेष धारण कर नन्द ग्राम से आये थे और 'नट-लीला' द्वारा राधिका जी को मुग्ध किया था। उन्हें राधिका जी ने पहिचाना था। उस समय

---

१. रजन्येषा घोर रूपा घोर सत्वनिषेविना।
प्रतियात व्रजंनेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमा॥ —भा० द० २६ अ० १६ श्लो०

एक भैंसा को इस कुण्ड पर जल पिलाया गया था इससे उसे 'पाडर कुण्ड' कहते हैं। यहाँ 'नट कुण्ड' और नटवर जी की बैठक है। यहाँ की जनसंख्या पिछली गणनानुसार १,५७५ है।

दक्षिण दिशा में कुण्ड पर महाप्रभु जी की बैठक है। उस कुण्ड को 'कृष्ण कुण्ड' कहते हैं। पश्चिम में 'पनिहारी कुण्ड' तथा 'सूरज कुण्ड' हैं। यहाँ होरी-लीला की भी निकुंज है।

यहाँ पर होरी के ऊपर बड़ा भारी मेला होता है और झण्डा रोपा जाता है। इस झंडे को रोपने के ऊपर जाव की स्त्री और बठैन के ब्रजवासियों का आपस में काफी वाद-विवाद होता है।[1]

कोकिला वन

"एवं कृष्णो भद्रवनं खादिराणाम् वने महत्।
बिल्वानानुच वनं पश्यन् कोकिलाख्यं वनं गतः॥" —ग० वृ० १८।२०

यह 'जाव' के पश्चिम में एक मील दूरी पर है और नन्दगाँव के पूर्व में है। महारास के अवसर पर भगवान् राधा के साथ अन्तर्ध्यान होकर कोकिला वन में आये थे, किन्तु राधिका जी के मन में अभिमान होने से भगवान् यहाँ उन्हें छोड़ गये, तब यहीं विलाप करती हुईं राधिका को ढूँढतीं सखियाँ उन्हें मिलीं।

विष्णु पुराण में इसका वर्णन कहा है "कोकिला स्वर भूषण:"। यहाँ 'कोकिला विहारी' के दर्शन और प्रसिद्ध भक्त चतुरा नागा की बैठक है।

बैठान (बठैन)

ये दो बठैनों के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है यहाँ पर कृष्ण बलराम ने गायों को दो भागों में विभक्त कर उन्हें पृथक्-पृथक् बैठ कर चराया था। अतः दाऊ जी के गौ-चारण-स्थल को 'बड़ी बठैन' और कृष्ण जी के स्थल को 'छोटी बठैन' कहते हैं।

यहाँ 'बलभद्र कुण्ड', दाऊ जी का मन्दिर और गायों के खिरक दर्शनीय हैं। 'रेवती कुण्ड', 'मोहन कु० ' को पार कर छोटी बठैन को जाते हैं। वहाँ 'कृष्ण कुण्ड' तथा कुण्ड के ऊपर जैसे भगवान् गायों को चराने बैठे हैं उस स्वरूप के दर्शन हैं। पीछे कदम खण्डी है उसमें एक कुण्ड है जिसका जल खारी है; किन्तु उसके एक भाग में एक चौंतरा पर कदम का वृक्ष है। वहाँ की भावना है कि भगवान् जब गाय चराने आये थे तब राधिका जी ने उन्हें सामग्री बना कर छाक (भोग) दी थी अतः उतने भाग का जल मीठा है, इसे स्वामिनी जी की छाक का गुप्त-स्थल कहा जाता है। आगे 'गोपाल कुण्ड' होकर 'चरण गंगा' जाते हैं।

---

१. जुवती झण्डा कैसे लेहौ जू।

२. पश्यन्कस्त पाद पद्मं कोकिलाख्यं वनं गताः॥ —ग० वृ० १८।२८

× × ×

मिलको स्मोद राजेन्द्र कोकिलाख्ये वने परे॥ —ग० वृ० १८।३७

बड़ोस्त्रोर (बैन्दोखर)

यह बठैन के पश्चिम में हैं। इसका वर्तमान नाम बैन्दोखर है यहाँ पर राधा-कृष्ण ने कुंज के द्वार रोक कर विलास किया बतलाते हैं। यहाँ पौढ़ानाथ जी का दर्शन और गायों का खिड़क है।

चरण पहाड़ी

यह पर्वत बठैन के ईशान में है। यहाँ पर श्री कृष्ण गायों के बुलाने के लिए त्रिभंगी रूप होकर बंशी बजाते थे। यहाँ पर जहाँ-तहाँ श्री कृष्ण के चरण चिह्नों का होना बतलाया जाता है। पास ही में 'कृष्ण कुण्ड' और 'चरण गंगा' है।

पाई गाँव

यहाँ पर राधिका जी ने सखियों की सहायता से कृष्ण को खोज निकाला था, अतः इसका नाम पाई ग्राम पड़ा।

दहो ग्राम (दहगाम)

यहाँ 'दधि कुण्ड' 'दधि चोरी देवी' तथा 'व्रज भूषण' जी के मन्दिर के दर्शन हैं। इससे आगे 'भामिनी कुण्ड' तथा कदम खण्डी में कदम के वृक्ष में मुकुट व वेणु के चिह्न हैं।

कामर

कहा जाता है कि यहाँ भगवान् कृष्ण, बलराम जी के साथ गाय चराने आये तब उनकी बरसाने से लाई हुई कामरी खो गई थी तो भगवान् ने उसे 'कामर कामर' कह कर ढूंढा था। इसी से इस गाँव का नाम कामर पड़ गया है। यहाँ मोहन कुण्ड, चन्द्रभागा कुण्ड, दुर्वासा कुण्ड, कामरी कुण्ड तथा कदम चौक हैं। स्वामिनी जी की बैठक, राधा-कृष्ण का गुप्त मिलन-स्थान, गोपीनाथ के दर्शन तथा गोपी कुण्ड हैं। मोहन कामर के लिए माता जसोदा के पास जाकर रोए थे इसलिए यहाँ मोहन कुण्ड, 'रोमना ठाकुर' के दर्शन तथा जिस गोपी ने कामरी चुराई थी उसके नाम से कामरी कुण्ड है और उसका नाम कामरी सखी पड़ा है।

कहा जाता है कि यही वह स्थल है जहाँ भोजन कर चुकने के बाद पाण्डवों के वनवास काल में दुर्योधन द्वारा प्रेषित मुनि दुर्वासा आये थे किन्तु भगवान् ने भोजन बिना ही मुनि को ऐसा तृप्त किया कि उनकी रुचि भोजन की न रही और मुनि ने यहाँ चतुर्मास निवास किया, अतः उनके नाम से यहाँ दुर्वासा कुण्ड है, और दुर्वासा जी का मन्दिर है।

आधुनिक कामर ग्राम २,९४३ की जनसंख्या वाला एक बड़ा ग्राम है; तथा यहाँ श्याम कुण्ड, जसोदा कुण्ड, हिंडोला तथा रास-चौंतरा आदि प्राचीन दर्शनीय स्थल हैं।

रासौली

कहा जाता है भगवान् कृष्ण ने यहाँ रास किया था और वेणु-वादन कर गायों को बुलाया था। यहाँ रास कुण्ड और रास चौंतरा हैं। गुसाईं श्री गोकुल नाथ

जी भी यहाँ ६ महीना विराजे थे और कल्याण भट्ट को सुबोधिनी जी का भ्रमर गीत प्रसंग श्रवण कराया था।

कोटरवन (कोटवन)

यहाँ जलघड़ा कुण्ड पर श्री नाथ जी की बैठक है और श्याम-तमाल के वृक्ष में श्री नाथ जी के चरण-चिह्न हैं तथा 'सीतल कुण्ड' है। कहा जाता है कि यहाँ भगवान् कृष्ण ने लता-पताओं का कोट बनाया था इससे इसे कोटवन कहते हैं। यहाँ गुसाईं जी की बैठक और दरवाजे के बाहर 'सूरज कुण्ड' है। आधुनिक कोटवन १,५४३ की जनसंख्या वाला एक प्राचीन ग्राम है।

कोसी

कोसी भगवान् की द्वारका लीला का स्थल माना जाता है। यहाँ 'गोमती-कुण्ड' नामक तालाब है। उसके घाट पर गिरिराज जी विराजते हैं, गाँव में दाऊ जी का मन्दिर है। इसे नन्द बाबा का कोष-स्थल भी कहा जाता है। यहाँ श्री पुरुषोत्तम लाल जी महाराज की बैठक है। सर्वप्रथम उन्होंने ही अपनी यात्रा का मुकाम कोसी में किया था। यहाँ 'लक्ष्मण सागर' भी है। आधुनिक कोसी एक छोटा सा शहर है। जनसंख्या १०,००० के लगभग है। यह व्यापार की एक प्रसिद्ध मण्डी है।

चमेलीवन

यह होडल स्टेशन से एक मील पहले है जो 'चमेली' सखी का वन कहा जाता है।

शेषशायी

"क्षीर सरोवर द्रुम ललित, थलता रही चहुँ ओर।
किरन दिनेश न आवहीं 'शेष शयन' की ठौर॥"—जगतनंद

कहा जाता है यहाँ भगवान् ने नन्द-जसोदा को प्रलय लीला के दर्शन कराये थे। यहाँ श्री बल्देव जी ने शेष तथा श्री कृष्ण ने विष्णु रूप धारण करके माता-पिता को चकित किया था।

यहाँ 'क्षीर सागर कुण्ड' व शेषशायी भगवान् के दर्शन हैं। यहाँ हिंडोला झूला का चिह्न भी है। आगे नन्दनवन चन्दनवन आता है। यहाँ नन्द जी के भाई चन्दन नन्द रहते थे।

"गोपाल मण्डल सरोवर कंज मूर्ते गोपाल चन्दन वने हंस मुख।"
—गा० वृ० १६। ४

पैंगाम

"पय पी गयो मोहन पय पय पय मुख मटकाय।
बाँकी चाल चलाय पी गयो मोहन पय पय पय॥"

यह गाँव कोसी से ६ मील पूर्व में है। पैंगाम में प्रवेश करते ही 'गोपाल कुण्ड', 'भय कुण्ड, 'अभय कुण्ड', 'जय कुण्ड' तथा 'पय कुण्ड' हैं। 'पय कुण्ड' पर 'पय

बिहारी' के दर्शन तथा ग्राम में चतुर्भुज राम तथा दाऊ जी के दर्शन हैं। यहाँ की कदम खण्डी अति रमणीक है। कदम खण्डी में अनेकों चिह्न हैं, कहीं दाऊ जी, कहीं गिर्राज जी तथा कहीं हाथ में वंशी लिये बाँके बिहारी जी के दर्शन हैं।

फारेन

यह गाँव पैगाँव के निकट ही लगभग ३ मील है। वहाँ होली के दिन बड़ा प्रसिद्ध मेला होता है और पंडा जलती आग में होकर निकलता है। यहाँ 'प्रह्लाद-कुण्ड' दर्शनीय है।

अजानी ग्राम

यह पय ग्राम से ४ मील पूर्व में है। इस स्थान पर वंशी की ध्वनि सुन कर जमुना जी 'अजान' बहने लगीं, यह बतलाया जाता है।

शेरगढ़

स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः।
निजं वाक्य मना द्रव्य मत्त इत्यायगां बला॥
अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकार्य ह।
पादेत्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाहुता॥२४॥

—भा० द० पू० ६५ अध्याय

यहाँ 'रेवती कुण्ड', 'बलभद्र कुण्ड', 'राधा कुण्ड' हैं। श्री दाऊ जी, धर्म राज, गोपी नाथ जी, राधा रमण जी, मदन मोहन जी तथा साक्षी गोपाल के मन्दिर मुख्य हैं।

द्वारका से आकर यहीं श्री बल्देव जी ने रास के लिए सेहरा बाँधा था। कहा जाता है कि यहाँ आने के लिए यमुना जी को आमन्त्रित किया गया तो यमुना जी ने निषेध कर दिया ; तब यमुना जी का हल से बलराम जी ने आकर्षण किया था। इसी घटना के कारण भगवान् बलराम यहाँ 'संकर्षण' कहलाये थे।

राम घाट

यह स्थल भी बलराम जी के द्वारका से पधारने पर किये गये रास से सम्बन्धित है। उन्हीं के नाम से यह स्थल 'राम घाट' कहलाता है।

चीर घाट

"हेमन्ते प्रथमे मासे नन्द गोप कुमारिका।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥१॥
कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरिः।
नन्दगोप सुतं देवि पतिं मे कुरुते नमः॥४॥

—भा० द० पू० २२ अध्याय

यही वह स्थल है जहाँ गोपिकाओं ने कात्यायनी व्रत करके भगवान् को

पति रूप से प्राप्त करने की इच्छा की थी और भगवान् ने गोपियों का चीर-हरण किया था। यहाँ श्री गोसाईं जी ने 'व्रत-चर्या' नाम का ग्रन्थ लिखा था।

नन्द घाट

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत्॥
तं गृहीत्वानयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम्।
अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्ट मुदकं निशि॥—भा० द० २८।१-८

यहाँ नन्द बाबा का मन्दिर है। यह घाट नन्दराय जी का स्नान-स्थल कहा जाता है। यहीं से वरुण के दूत श्री कृष्ण दर्शनोत्सुक कुबेर की आज्ञा से नन्दराय जी का हरण करके कुबेर-लोक ले गये थे।

बच्छवन (वत्सवन)

यहाँ श्री 'बच्छ बिहारी' के दर्शन हैं। टीले पर श्री महाप्रभु जी की बैठक, ब्रह्मकुण्ड तथा ठाकुर जी के विराट् स्वरूप के दर्शन हैं। पीछे रास-चौंतरा भी है। यहीं ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण के गाय-बछड़ों का हरण किया था, ऐसा बतलाया जाता है।

नरी सेमरी

लगभग दो हजार की जन-संख्या के यह दोनों ग्राम छाता से चार मील दूर रेलवे के किनारे बसे हुए हैं। इनका पुराना नाम "श्यामरी, किन्नरी" बताया गया है।

'नरी देवी', 'किशोरी कुण्ड', दाऊ जी का मन्दिर व सेमरी में सेमरी (श्यामला) देवी, और 'नारायण कुण्ड' दर्शनीय हैं।

राधिका जी का मान-भंग करने के लिए श्याम, सखी बन कर आये और "मैं स्वर्ग की किन्नरी हूँ" कह कर परिचय दिया। जिससे इसका नाम 'श्यामरी-किन्नरी' पड़ा। नरी में बलराम जी का स्थान है। नरी सेंमरी ब्रज की लोक देवी हैं, जो प्रतिवर्ष सहस्रों ब्रजवासियों द्वारा पूजी जाती हैं। सेमरी, नरी से एक मील की दूरी पर है। यहाँ यूथेश्वरी 'श्यामला' जी का गृह था।

चौमुहाँ (चतुर्मुख)

"स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुट कोटिभिरंघ्रि युग्मम्।
नत्वा मुदश्रु सुजलैर कृताभिषेकम्॥" —भा० द० १३।१६

यह ग्राम मथुरा से कोसी के रास्ते पर लगभग ४ कोस पश्चिम में है। एक वर्ष बाद व्यामोह दूर होने पर चतुर्मुख ब्रह्मा ने यहाँ श्री कृष्ण की स्तुति कर उन्हें संतुष्ट किया था।

इस ग्राम के निकट इसी नाम से रेलवे स्टेशन भी है। इसी के सन्निकट, 'आभई' है जहाँ ब्रह्मा जी के दर्शन हैं।

तरौली

यह गाँव छाता से ४ मील पूर्व दिशा में स्थित है। यहाँ 'बूढ़े बाबा' का प्रसिद्ध मन्दिर और 'स्वामी का तालाब' है, जिसमें चर्म-रोगों से मुक्ति पाने के लिए दूर-दूर से स्नानार्थी आते हैं। यहाँ कार्तिक शुक्ला १२-१३ को मेला होता है, जिसमें भारी संख्या में नर-नारी उपस्थित होते हैं।

छत्रवन (छाता)

"खेलत ब्रज को छत्रपति, मनु नक्षत्र-पति साँझ।
बरस-नछत्र निकर लिये, सखा 'छत्रबन' माँझ॥" —जगतनन्द

छाता ग्राम मथुरा दिल्ली मार्ग पर सड़क के किनारे बसा हुआ प्रसिद्ध गाँव है जो आजकल एक तहसील है। कहा जाता है यहाँ भगवान् ने 'छत्र धरण लीला' की थी। सन् १८५७ में जो स्वतन्त्रता-संग्राम हुआ था छाता ने भी उसमें खुल कर भाग लिया था।

यहाँ के प्राचीन स्थलों में 'सूर्य कुण्ड', 'चन्द्र कुण्ड' तथा चतुर्भुज भगवान् के मन्दिर आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ शेरशाह सूरी की बनवाई हुई एक लाल पत्थर की पुरानी सराय भी है, जिसमें आजकल दुकानें लगती हैं।

वृन्दावन

"संभाव्य भर्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तर पुष्पशय्ये।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने, निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः॥"—रघुवंश; ६,५०

कवि कुल-गुरु कालिदास के वर्णन के अनुसार कुबेर के चैत्ररथ नामक वन जैसा यह जगत्-वंद्य सुरम्य वृन्दावन वर्त्तमान में मथुरा से ६ मील उत्तर की ओर बसा है। कंस के भय से गोकुल छोड़ देने के उपरान्त वृन्दावन ही नन्दराय जी का निवास-केन्द्र रहा था। तुलसी वृक्षों के आधिक्य के कारण ही कदाचित् यह वन वृन्दावन कहलाया।[1] वृन्दावन भगवान् श्री कृष्ण की रास-स्थली है, और यह स्थल ब्रज के सभी वनों में श्रेष्ठ माना गया है।[2] संस्कृत-साहित्य और भक्ति-काव्य में वृन्दावन की महिमा भरी पड़ी है। किसी समय इस वृन्दावन का विस्तार बीस कोस था।[3]

वर्तमान वृन्दावन की ओर गौड़िया-सम्प्रदाय के भक्तों का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट हुआ। गौरांग महाप्रभु इसकी शोभा को देख कर बड़े प्रभावित हुए और यहाँ बाद में उनके शिष्य वर्गों के द्वारा गोविन्द देव व मदन मोहन जी जैसे देव-विग्रहों की स्थापना हुई जिनके मन्दिर आज भी स्थापत्य-कला की अमर-कृति मानी जाती है। आज वृन्दावन ब्रज की भक्ति-संस्कृति के समग्र रूप का स्वयं प्रतिनिधि

---

१. "माई री मोय लगत वृन्दावन नीकौ।
घर-घर तुलसी, ठाकुर-सेवा, दर्शन श्री पति जू कौ॥"
२. "वनेभ्यस्तत्र सर्वेभ्यो वनं वृन्दावनं वरम्।" —गा० वृ० १ अ०, १४ श्लोक
३. "बीस कोस वृन्दा-विपन प्रिय-प्यारी को धाम।"

है, यह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। हित हरिवंश, हरिदास, नागरी दास, हरिराम व्यास, घनानन्द और बाद में ललित किशोरी जैसे अनेक भक्त-कवियों की वाणी यहाँ झंकृत हुई। वृन्दावन की इस भूमि पर जितने संस्कृत और हिन्दी के भक्ति-ग्रन्थ लिखे गये, उतने शायद ही कहीं अन्यत्र लिखे गये होंगे, जिनके पुराने बस्ते आज भी वृन्दावन में सर्वत्र भरे पड़े हैं। भारत का कोई ऐसा भक्ति-सम्प्रदाय नहीं जिसका केन्द्र वृन्दावन में न हो। यहाँ के प्रमुख स्थलों का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

श्री कृष्ण लीला-स्थल—भगवान् श्री कृष्ण के लीला-स्थलों के रूप में यहाँ यमुना-तट पर काली-दह, वंशीवट, रास-चबूतरा, केसी घाट, राधा बावड़ी, दावानल कुण्ड, ब्रह्म-कुण्ड व धीर-समीर घाट विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मन्दिर—वृन्दावन के सम्बन्ध में वैसे यह कहा जाता है कि यहाँ जितने घर हैं, उतने ही मन्दिर हैं, अतः उनकी कोई संख्या नहीं दी जा सकती परन्तु यहाँ के कुछ प्रमुख मन्दिरों का उल्लेख आवश्यक है—

गोविन्द देव जी—यह मन्दिर अकबर के शासन-काल में स्थापित हुआ था। यह लाल पत्थर का बना है। यह वृन्दावन के प्राचीन मन्दिरों में से है, और इसकी स्थापत्य-कला अद्वितीय है। इस मन्दिर का पुराना देव-विग्रह आजकल जयपुर में विराजमान है।

मदन मोहन जी—यह मन्दिर भी १६वीं शताब्दी की एक मनोरम कृति है। मदन मोहन जी की मूर्ति भी अब करौली में विराजती है।

रंग जी का मन्दिर—यह मन्दिर मथुरा के सेठों ने 'श्री रंगम्' की अनुकृति पर बनवाया था। यह रामानुज सम्प्रदाय का बड़ा विशाल मन्दिर है, जिसके सात परकोटे हैं। मन्दिर में एक तालाब व सोने का ऊँचा खम्भा है। मन्दिर के निकट गौड़ीय भक्तों का एक उल्लेखनीय 'समाधि-स्थल' है। इससे अनेक प्रसिद्ध भक्तों और साहित्यकारों की स्मृति जुड़ी है।

बाँके बिहारी जी— बाँके बिहारी जी स्वामी हरिदास जी के उपास्य देव हैं। आजकल बिहारी जी के मन्दिर की मान्यता और लोक-प्रियता बहुत अधिक है, और दूर-दूर से भक्त-वृन्द बिहारी जी के दर्शन को आते हैं।

सेवा-कुंज—यहाँ की वन शोभा दर्शनीय है। हित हरिवंश जी का इस स्थान से निकट का सम्पर्क था। भक्तों का विश्वास है कि यहाँ आज भी प्रतिदिन रात्रि को प्रिया-प्रियतम 'नित्य-रास' करते हैं। अनेक किंवदंतियाँ इस स्थल से जुड़ी हैं। यहाँ चित्र-सेवा की जाती है।

गोपेश्वर महादेव—यह मन्दिर महादेव जी का है जो भगवान् के रासोत्सव में सम्मिलित होने के लिये गोपी-वेष धारण करने को बाध्य हुए थे।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त वृन्दावन में हित हरिवंश जी के सेव्य राधा-वल्लभ तथा राधा रमण जी के मन्दिरों के साथ ब्रह्मचारी जी का मन्दिर, लाला बाबू का मन्दिर, जयपुर राज्य का मन्दिर, गोपीनाथ जी का मन्दिर, मुंगेर राज्य

का मन्दिर, काठिया बाबा का मन्दिर, टिकारी वाली रानी का मन्दिर, अष्टसखी मन्दिर तथा ज्ञान-गूदड़ी में अनेक महात्माओं के बनाये मन्दिर हैं। इसके अतिरिक्त बिजावर के राज्य द्वारा निर्मित काँच का बना सामन्त-बिहारी का मन्दिर, सवा मन के सालिगराम का मन्दिर, आदि हैं। यहाँ लखनऊ के शाह कुन्दनलाल फुन्दनलाल जिन्होंने कि 'ललित किशोरी' और 'ललित-माधुरी' उपनाम से सरस काव्य रचना की है—का बनवाया हुआ संगमरमर का शाह बिहारी का मन्दिर भी अपने ढंग का निराला है जिसके टेढ़े खम्भ दर्शनीय हैं।

निधिवन—मन्दिरों के अतिरिक्त वृन्दावन में और भी ऐसे अनेक स्थल हैं जिनका महत्त्व बहुत अधिक है। इन स्थलों में स्वामी हरिदास के निवास निधिवन की प्राकृतिक शोभा उल्लेखनीय है। यही स्वामी हरिदास के साथ-साथ उनके शिष्य वर्ग का भी संगीत व काव्य-साधना का केन्द्र था। स्वामी जी के साथ-साथ यहाँ बिट्ठल-विपुल, भगवत् रसिक आदि कई भक्त कवियों की समाधि हैं। दूसरा केन्द्र "मोहिनी दास जी की टट्टी", स्वामी हरिदास जी के सम्प्रदाय के विरक्त भक्तों का प्रमुख केन्द्र है।

अन्य स्थल—यहाँ के अन्य स्थलों में महाप्रभु बल्लभाचार्य, गुसाईं बिट्ठल-नाथ जी, गोकुल नाथ जी और दामोदर दास हरसानी की पास-पास बनी हुई बैठकें, यहाँ की चार मुख्य कुञ्ज-गली, अद्वैत स्वामी की तपोभूमि अद्वैत बट, चार सम्प्रदायों की छावनी और वर्त्तमान समय में भक्ति-रस का केन्द्र उड़िया बाबा का आश्रम भी उल्लेखनीय है। वृन्दावन में आर्य-समाज का भी गुरुकुल है। यहाँ अनेक साहित्य-कार भक्तों के भी स्थल हैं जैसे हरिराम व्यास जी की समाधि, रूप सनातन जी की भजन कुटी, चन्द्र सखी की कुञ्ज, ग्वाल जी की हवेली और गोस्वामी राधा-चरण जी का बन्द पुस्तकालय आदि आदि।

इस प्रकार वर्त्तमान वृन्दावन सभी दृष्टियों से एक छोटा सा सुन्दर नगर और बहुत महत्वपूर्ण स्थल है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार यहाँ की आबादी २२,७१७ थी। यह धर्मशाला, आश्रमों और संकीर्त्तन-भवनों का एक ऐसा रमणीक स्थल है जहाँ प्रति-क्षण 'श्री राधे, जै राधे राधे' की ध्वनि प्रतिध्वनित होती रहती है।

अक्रूर घाट (ब्रह्म ह्रद)

यह स्थान मथुरा वृन्दावन के कच्चे मार्ग में मध्य में आता है। कहा जाता है कि भगवान् ने यहाँ ब्रजवासियों को बैकुण्ठ दर्शन कराया था और मथुरा जाते समय अक्रूर को यहीं भगवान् ने यमुना-स्नान के समय अपना वैभव दिखाया था। यहाँ महाप्रभु कृष्ण चैतन्य देव ने भी अपने ब्रजवास काल में निवास किया था।

यज्ञ-स्थल—अक्रूर घाट के निकट ही यह वह स्थल है जहाँ अङ्गरादि ऋषियों ने यज्ञ किया था और भगवान् कृष्ण का संदेश आने पर अपनी पत्नियों को उन्हें भोजन पहुँचाने से रोका था।

भतरौंड़—यहाँ कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन भगवान् ने यज्ञ करने वाले ऋषि-

पत्नियों द्वारा लाई गई भोजन-सामग्री आरोगी थी। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर भी है। यह स्थल भी अक्रूर घाट के निकट ही है।[1]

मुंजाटवी (मडयारी ग्राम)

मुंजाट्यां भ्रष्ट मार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम्।
सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्ता स्ततस्ते संन्यवर्तयन्॥ —भा० द० २१।५

कहा जाता है यहाँ कभी मूँज का वन था, जिसमें दावाग्नि लग जाने से गौ-वत्स सभी संकट में पड़ गये थे और भगवान् श्री कृष्ण ने उनका उद्धार किया था।

भद्रवन (भदनवारौ)

"अस्ति भद्रवनं नाम षष्ठं स्नातोऽत्र मानवः।
कृष्णदेव प्रसादेन सर्व भद्राणि पश्यति॥" —वृ० ना० पु० ७९ अ०

यह नन्दघाट के अग्निकोंण में २ मील, यमुना के दूसरे तट पर स्थित है। यहाँ बट-वृक्ष के नीचे 'झाड़खण्डेश्वर महादेव' तथा हनुमान जी के दर्शन हैं। यह भी भगवान् श्री कृष्ण के गौ-चारण के स्थलों में से है।

भांडीरवन

"भांडीरे यमुनातीरे बाल लीलाञ्चकार ह।"

यह स्थल भद्रवन से लगभग २ मील है। भांडीरवन में श्री बलराम ने प्रलंबासुर का बध किया था।

उवाह तं प्रलम्बोऽसौ भांडीराद् यमुना तटम्॥१८॥"—ग० मा० २० अ०

यहाँ 'भांडीर कूप', जहाँ श्री दाऊ जी ने अपना मुकुट उतार कर श्रम दूर किया था, तथा दाऊ जी की बैठक और किंवदंती के अनुसार ब्रजनाभ द्वारा पधराया गया मुकुट दर्शनीय है। दाऊ जी के दर्शनों के पश्चिम में बिहारी जी तथा वायव्य में श्री राधा-कृष्ण जी का भी मन्दिर है। श्याम-तमाल वृक्ष के नीचे यहाँ श्री महाप्रभु जी की गुप्त बैठक भी बतलाई जाती है।

माँट ग्राम

यह गाँव भाँडीर वन से २ मील दक्षिण में है। माँट मथुरा जिले की एक तहसील है। कहा जाता है कि यहाँ भगवान् ने माता यशोदा के पुराने माँट फोड़ दिये थे। माँट और इसके आस-पास लोक-गीतों व जिकड़ी के भजनों के गायन का अच्छा प्रचार है। ब्रज के प्रसिद्ध भक्त-लोक-गायक सनेही राम यहीं के थे।

बेलवन

"बिल्वारण्यमिह दशमं तु यत्र स्नातः सुमध्यमे।
शैवं वा वैष्णवं वापि याति लोकं निजेच्छया॥" —वृ० न० पु० ७९ अ०

---

१. "गाय चरावत ग्वाल संग, भूख लगी हिय ओड़।
यज्ञपत्नी ओदन दियौ, भयौ तबै भतरौड़॥" —जगतनन्द

माँट से दो मील दूर यह ग्राम बसा हुआ है। जो बिल्ववन के नाम से प्रख्यात वन है। किसी समय यहाँ बेल के वृक्षों का आधिक्य था और श्याम सुन्दर को वे फल पसन्द थे। गेंद के रूप में भी वे इन फलों का उपयोग करते थे। कूप के समीप लक्ष्मी जी का मन्दिर है। उसके सामने 'बेल वृक्ष' है। कहा जाता है यहाँ श्री लक्ष्मी जी ने तप किया था। उसके उत्तर में गुसाईं जी की बैठक है।

मान सरोवर

"जहँ तरुवर अति सघन बन, घटा सरोबर लेख।
श्री राधावर खेलते, मान सरोवर पेख॥"—जगतनन्द

यह स्थल बेलवन से ३ मील पूर्व में है। यह राधिका रानी के मान का स्थल है और यहाँ केवल उनके नेत्रों के ही दर्शन हैं। मान सरोवर में दो सम्मिलित कुण्ड हैं जो 'मान कुण्ड' व 'कृष्ण कुण्ड' कहलाते हैं। कहा जाता है कि मान सरोवर राधा रानी के मान में प्रवाहित अश्रुबिंदों से निर्मित है। यह स्थान बहुत ही रमणीय है। जब हित हरिवंश जी वृन्दावन वास करते थे। तब वे यहाँ प्रतिदिन आया करते थे। यहाँ वल्लभाचार्य जी व गुसाईं जी दोनों की बैठकें हैं। कुण्डों के निकट बसे गाँव को आजकल एक प्राचीन पीपल वृक्ष के आधार पर 'पिपरौली' कहा जाता है।

"पिपरौली सोभित महा, तरु पीपर के नाम।"

लोहवन

"लोह-जंघन्तु नवमं वनं यत्राप्लुतो नरः।
महाविष्णु प्रसादेन भुक्ति मुक्तिञ्च विन्दति॥" —वृ० ना० पु० ७६।१५

कहा जाता है यहाँ भगवान् ने 'लोहजंघ' दैत्य को मारा था। यहाँ कृष्ण कुण्ड, गोपी नाथ जी के दर्शन तथा लोहासुर की गुफा दर्शनीय स्थल हैं। यह स्थान मथुरा से लगभग दो मील दाऊ जी वाली सड़क के समीप स्थित है। यह ग्राम ब्रज के लोक गीतों का अच्छा केन्द्र रहा है।

आनन्दी बनन्दी

"मनों गयंदी देखि कैं, स्वच्छंदी सब सेव।
सोभित बंदी परम रुचि, और अनन्दी देवि॥"—जगतनन्द

लोहवन के निकट ही आनन्दी व बनन्दी दो देवियों का स्थान है। ये नन्दराय जी की कुल-देवी कही जाती हैं जिनकी उन्होंने पूजा की बतलाई जाती है। कहा जाता है कि यह देवियाँ श्री कृष्ण-दर्शनार्थ गोबरहारी बनकर नन्द-भवन में गोबर थापने जाया करती थीं।

दाऊ जी (रीढ़ा ग्राम)

"ब्रज पैड़नि कों देखिये, मेंड़िन खेत सुभेव।
ये डाली ये रेबती, रेढ़ा में बलदेव॥" —जगतनन्द

बल्देव गाँव जिसे 'दाऊ जी' भी कहा जाता है ब्रज का एक प्रमुख कस्बा है।

इसका प्राचीन नाम 'रीढ़ा गाँव' है। यह गाँव अपने प्रसिद्ध बल्देव मन्दिर के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है। दाऊ जी का यह मन्दिर बड़ा प्रसिद्ध है जिसमें बल्देव जी की श्याम वर्ण की मानवाकार प्रतिमा व रेवती जी के दर्शन हैं। दाऊ जी ग्राम के दक्षिण में 'रेवती कुण्ड', और मन्दिर के उत्तर में 'क्षीर-सागर कुण्ड' है। गाँव में प्रवेश करते ही 'दान बिहारी' का मन्दिर है।

ब्रज में हर पूर्णिमा के दिन दाऊ जी के दर्शन करने की परम्परा रही है। दूर-सुदूर से भक्तजन यहाँ पूर्णिमा के दर्शनों को आते हैं। फाल्गुन मास में होने वाला दाऊ जी का हुरंगा प्रसिद्ध है। दाऊ जी का माखन-मिश्री का भोग लगता है। यहाँ की मिश्री व मिट्टी के बर्तन प्रसिद्ध हैं।

बल्देव गाँव के निकट ही एक दूसरा हतोड़ा गाँव है जहाँ नन्द जी की अथाई (बैठक) बतलाई जाती है।

देवनगर

दाऊ जी से पाँच कोस उत्तर में ब्रह्माण्ड घाट के निकट दिवस्पति गोप का यह ग्राम है। इस गोप ने यहीं गोवर्धन पूजन किया था। यहाँ गोवर्धन पर्वत (जो वास्तव में गोशर्धन पर्वत है) एवं 'राम ताल' हैं।

कोइलो घाट

महावन से एक मील दूर यमुना की दूसरी ओर कोइलो घाट है। कहा जाता है कि जब नन्दराय शिशु कृष्ण को गोकुल लाये तो इस स्थान पर यमुना पार की। यमुना जी, जब कृष्ण भगवान् के चरण-स्पर्श करने को ऊँची उठीं तो वसुदेव जी डूबने लगे और शिशु कृष्ण को बचाने के लिए चिल्ला उठे कि 'कोई लो।' तभी से इसका नाम 'कोइलो' पड़ा। इसी नाम का एक ग्राम भी इस घाट के पास बसा है।

कर्णावल

कोइलो ग्राम के पास ही यह कर्णावल गाँव है जो भगवान् कृष्ण-बलराम के कर्ण-छेदन का स्थल माना जाता है। यहाँ 'कर्ण-बेध कूप,' 'रतन चौक' तथा 'मदन मोहन' व 'माधव राय' के मन्दिर हैं।

ब्रह्माण्ड घाट

"ग्वाल सहित गोपाल जू, माँटी खात प्रचण्ड।
तीन लोक-जसुमति लखे, भयौ घाट ब्रह्माण्ड॥" —जगतनन्द

महावन से एक मील दूर, यमुना के किनारे यह घाट बना हुआ है। यहाँ भगवान् कृष्ण ने माता यशोदा जी को 'मृतिका-भक्षण' के बहाने विश्व का दर्शन मुख में कराया था। यहाँ 'ब्रह्माण्ड बिहारी' के दर्शन 'ब्रह्माण्डेश्वर महादेव' तथा एक छोटी कोठरी में माँटी खाये हुए कृष्ण व माता की श्री दामा सखा आदि के साथ 'विश्व-दर्शन' की छवि है। यह स्थान बड़ा ही रमणीक है और यहाँ एक सुन्दर बाग भी

है। यहाँ से महावन जाते समय मार्ग में यमुलार्जुन नामक वृक्षों की मोक्ष का स्थान आता है। इसके सामने 'नन्द कूप' है। ब्रह्माण्ड घाट से पूर्व में कुछ दूरी पर 'चिन्ता हरण' महादेव हैं।

महावन

"जस पावत नन्दराय जू, गावत डोलत भूप।
मनभावत गोविन्द लख्यौ, इहै महावन ओप॥" —जगतनन्द

वर्त्तमान महावन मथुरा से लगभग ३ कोस और वृन्दावन से लगभग ६ कोस अग्निकोण में है। यह महावन ही नन्दराय जी का पुराना निवास-स्थल है जो बृहद्-वन के अन्तर्गत था। वसुदेव यहीं शिशु-कृष्ण को छोड़ गये थे। महावन का वर्णन महाभारत में भी आया है। वनवास काल में पाण्डवों ने भी यहाँ कुछ समय निवास किया था।

यहाँ नन्द-भवन है जिसमें ८४ खम्बा हैं तथा बल्देव जी के दर्शन हैं। भगवान् बल्देव का जन्म-स्थल यही माना जाता है। यहाँ इस समय कृष्णकालीन निम्न स्थल उल्लेखनीय कहे जाते हैं—'दन्तधावन टीला', 'गोपियों की हवेली', पूतना, शकट, तथा तृर्णावर्त्त के वध-स्थल, 'छटी पूजन-स्थल', 'ब्रजराज गौशाला' (नामकरण स्थल)।

मुगलकाल में महावन का राजनीतिक महत्त्व था और यहाँ बादशाह का सूबेदार रहा करता था। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि सुरति मिश्र भी यहीं हुए थे। इस समय यह एक टाउन एरिया है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार यहाँ की जन-संख्या ५,५२३ थी।

रमण रेती

"रमन रेति सुख देत है, केतिक बरनौं ताहि।
ग्वाल हेत भरि लेत हैं, बल समेत हरि ताहि॥" —जगतनन्द

गोकुल और महावन के मध्य रमण रेती नाम का एक शान्त स्थल है जहाँ ब्रज के साधु-महात्मा निवास करते हैं। यहाँ रमण विहारी जी का मन्दिर है। ब्रज-भाषा के कवि रसखान व कवयित्री ताज की समाधियाँ भी यहीं टूटी-फूटी पड़ी हैं। अलीखान की समाधि भी यहाँ से पास ही है। रमण रेती में बसंत पंचमी को मेला लगता है। कहा जाता है वहाँ दुर्वासा ऋषि ने गो-चारण करते हुए गोपाल कृष्ण के दर्शन किये थे।

गोकुल

"श्रीमद् गोकुल सर्वस्वं, श्रीमद् गोकुल मंडनम्।
श्रीमद् गोकुल दक्तारा, श्रीमद् गोकुल जीवनम्॥"—गुसाईं विट्ठलनाथ

महाप्रभु द्वारा स्थापित वर्त्तमान गोकुल ब्रज में पुष्टि सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है। भक्ति-युग में इस स्थान का बड़ा महत्व था और यहाँ ब्रज-भाषा काव्य-माधुरी के सृजन और 'वार्त्ता-साहित्य' के निर्माण का भी महत्वपूर्ण कार्य हुआ। यहाँ आज

भी पुष्टि सम्प्रदाय की २४ हवेली हैं जो सभी किसी न किसी रूप में प्राचीन भक्तों और आचार्यों से सम्बन्ध रखती हैं। औरंगजेब के समय तक यहाँ नवनीत प्रिय जी के साथ पुष्टि सम्प्रदाय के सभी सेव्य ठाकुर विराजते थे और दूर सुदूर के कृष्ण भक्तों को गोकुल की ओर आकर्षित करते थे।

गोकुल के वर्त्तमान दर्शनीय स्थलों में आचार्य महाप्रभु की भीतरली व बाहरली बैठक, दामोदर हरसानी की बैठक, गुसाईं गोकुल नाथ जी की बैठक, प्राचीन देव-विग्रहों के विराजने के स्थल, ठकुरानी घाट, गोविन्द घाट, वल्लभ घाट, गोकुल नाथ जी का मन्दिर, मोर वाला मन्दिर, ब्रजराय जी का मन्दिर, अहमदाबाद वाले व नडियाद वाले गोस्वामियों के मन्दिर तथा बाल कृष्ण जी के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। यहाँ के प्राचीन स्थलों में श्री गोकुल नाथ जी का बाग, बरजन टीला, सिंहपौर आदि प्रमुख हैं। आधुनिक गोकुल लगभग २,३४३ जनसंख्या का एक छोटा-सा सुन्दर टाउन एरिया है।

रावल

"जहाँ बसत वृषभानु जू, श्री राधा चित लाय।
ज्यों अलकावलि देखिये, त्यों रावल सरसाय।।" —जगतनन्द

यह राधा जी के पिता, वृषभानु महाराज का पूर्व निवास-स्थान है। यहीं श्री राधिका जी का जन्म-स्थान माना जाता है। यहाँ शिखरदार मन्दिर में राधिका जी के दर्शन हैं। दर्शनीय स्थल 'राधा घाट' है। श्री राधा रानी जी के जन्मोपलक्ष्य में यहाँ भाद्र शुक्ला अष्टमी के दिन मेला लगता है।

With the Compliments of

TOOLSIDASS JEWRAJ

15-B CLIVE ROAD

CALCUTTA-1